ॐ

ISSN :- 0976-4321

वास्तुशास्त्र अध्ययन माला – द्वितीय पुष्प

वास्तुशास्त्रविमर्श

सन्दर्भित एव मूल्याङ्कित शोधपत्रिका

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016
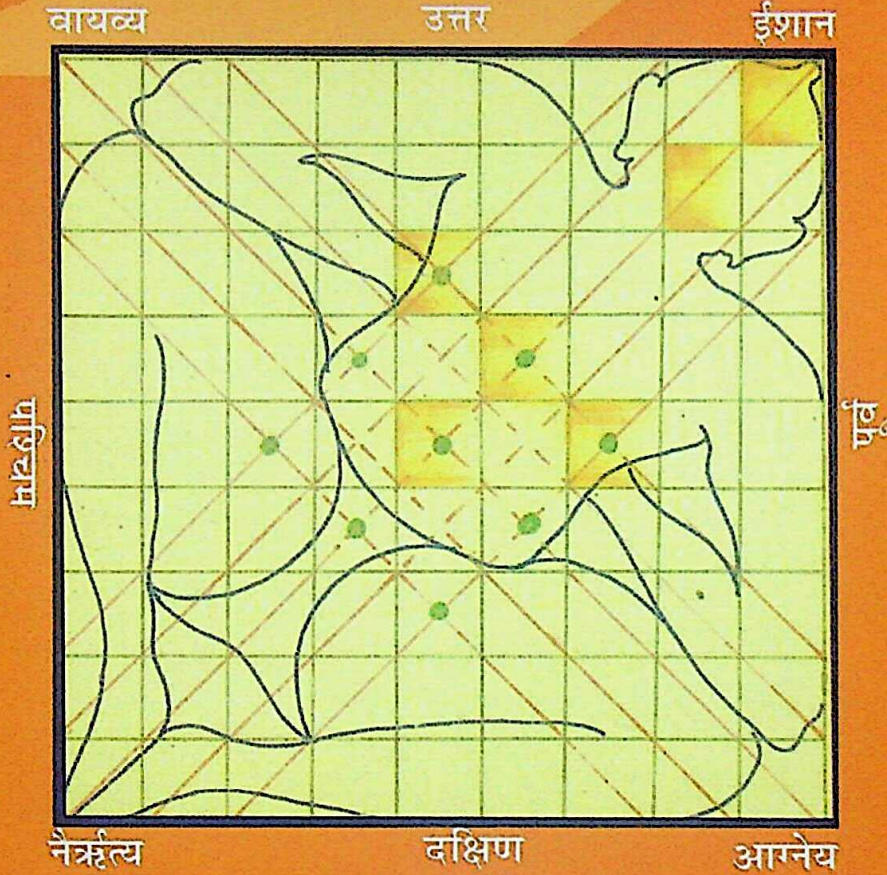
द्वितीय पुष्प

वास्तुशास्त्रविमर्श

प्रधान सम्पादक
प्रो० वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति

सम्पादक

प्रो० प्रेमकुमार शर्मा
अध्यक्ष
ज्योतिषविभाग
संकाय-वेदवेदाङ्ग

प्रो० देवीप्रसाद त्रिपाठी
संयोजक
वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-११००१६

पुरोवाक्

वास्तुशास्त्र भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अङ्ग है जहाँ चेतन-अचेतन का समिश्रण दिखाई देता है। हम गृह में रहते हैं, गृह पाषाण मात्र निर्मित भवन नहीं है। गृह का निर्माण एक सुदृढ़ परम्परा एवं उदात्त आदर्श भावनाओं से होता है जबकि भवन के निर्माण में भौतिक पदार्थों का सम्मिश्रण दिखाई देता है। बिना आदिदैविक एवं आध्यात्मिक चिन्तन के कोई भी परम्परा उच्च आदर्श को प्राप्त नहीं कर सकती है। सम्पूर्ण सृष्टि मात्र तीन धाराओं का मेल है। जिसमें प्रथम आदिभौतिक, द्वितीय आदिदैविक एवं तृतीय आध्यात्मिक है। बिना आदिभौतिक के आदिदैविक एवं आध्यात्मिक की व्याख्या करना एक कठिन कार्य ही नहीं अपितु दुष्कर भी है। आदिदैविक एवं आध्यात्मिक स्थिति को समझने के लिए आदिभौतिक की नितान्त आवश्यकता होती है। भौतिक तत्त्व में ही अविभाज्य रूप से आदिदैविक एवं आध्यात्मिक स्वरूप निहित होता है।

आज का विज्ञान भौतिक चिन्तन मात्र को ही प्राथमिकता देता है जबकि समग्र कार्य का मूल कारण आदिभौतिक नहीं अपितु आदिदैविक एवं आध्यात्मिक है। गृह में वास्तुपुरुष का देवत्व ही एक चेतन वास्तु है, जो हमारे सुख दुःख का मूल कारण माना जाता है, नहीं तो पत्थर, ईट, बजरी, गारा, लोहा एवं लकड़ी से बना हुआ कोई भी पिण्ड हमको शुभ एवं अशुभ फल प्रदान कैसे कर सकता है। ऋग्वेद के एक वर्णन में वास्तोष्पति से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे वास्तोष्पते! तुम हमको समझो, हमारे घर को निरोग करने वाले हो ओ। जो धन हम आपसे मांगे, हमें दे दो। हमारे द्विपद एवं चतुष्पदों के लिए कल्याणकारी हो ओ। यथा–

> वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
> यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।[1]

आधुनिक विज्ञान एवं कला के सौजन्य से बने विशाल भवनो में मात्र स्वार्थ एवं स्वोत्कर्ष के लिए संघर्ष करने वाली मानवाकृति निवास करती है, जो संसार में **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना प्रसारित नहीं कर सकती है।

---

१. ऋग्वेद ७:५४:०१

भारतीय परम्परा में कला और विज्ञान दर्शन से पृथक् कुछ भी नहीं है। जो विज्ञान अथवा कला दर्शन से अनुप्राणित नहीं हैं उससे मानव जीवन के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती अपितु वह मानव को दिग् भ्रमित करते हुए आसुरी सम्पदा का दास अवश्य बना सकती है। हमारा ज्ञान आसुरी सम्पदा न बने इस लिए हमारे आचार्यों ने उसे सदा दैवत्व की भावना से अनुप्राणित रखा। जिससे वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, पर्जन्य, चन्द्र एवं सूर्य के समान जीवन के मंगल एवं रक्षण का विधान कर सके। ऊर्जाणुओं के वर्णनातीत और कालातीत व्यवहार को देख व समझकर यह स्वीकार किया जा सकता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक महती चेतना से व्याप्त है। अब तो नोबल सम्मान प्राप्त पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि मानवी शक्तियों और क्षमताओं के ऊपर एक ऐसी सत्ता और क्षमता है जो वैज्ञानिक नियमों और काल से परे है।

भारतीय चिन्तन ने समग्र विश्व को परमात्मा की कृति स्वीकार करते हुए भक्तिभाव से अनुकूल समाजिक, आर्थिक एवं भौतिक रचना की कामना के साथ, शान्त और सुरक्षित जीवन की आशा की है। यह तभी सम्भव है जब हमारे चिन्तकों ने यह मान लिया हो कि वह परमात्मा वर्णनातीत एवं कालातीत है। हमारी जीवन पद्धति का मूलाधार धर्म है, धर्म ही हमें धारण करता है। धर्म ईश्वर का वह स्वरूप है जिसे समग्र चेतना के रूप में देखा जा सकता है। नैसर्गिक नियमों से ही धर्म का अभ्युदय होता है। जैसे धरा (पृथ्वी) का धर्म धारण करना है। वह हमें गृह, नगर, ग्राम आदि रूपों के द्वारा अथवा किसी भी रूप में धारण करती है। अतः वह हमारी मातृ रूपा धरती है। यह हमारे सौर परिवार की एक सजीव इकाई है। जिसमें चतुर्दिक् जीवन फल-फूल रहा है। यह समग्र विश्व जिस महती चेतना से व्याप्त है तथा जो इसको संचालित, नियमित एवं नियन्त्रित करता है वही ईश्वर है। जिसकी पूजा हम वास्तु पुरुष के रूप में गृह से ब्रह्माण्ड तक करते हैं।

हमको आज एक ऐसे गृह की आवश्यकता है, जिसमें हम सर्वविध सुख का अनुभव कर सकें। इस प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति आज का विज्ञान तभी कर सकता है जब वह प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र से अनुप्राणित हो अन्यथा ऐसी कल्पना इस भौतिक युग में सम्भव नहीं है। पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि के लिए एक सद् गृहस्थ को गृह की आवश्यकता होती है, जिसमें रह कर वह अपने गृहस्थ आश्रम के दायित्वों का निर्वहन कर सके। सद् गृहस्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि जिसमें दया, श्रद्धा, क्षमा लज्जा, प्रज्ञा, त्याग एवं कृतज्ञता विद्यमान हो वही सद् गृहस्थ हो सकता है। जैसा कि वास्तुरत्नाकर में महर्षि व्यास के वचन को उद्धृत करते हुए कहा गया है। यथा–

दया श्रद्धा क्षमा लज्जा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता।
गुणा यस्य भवन्त्येते गृहस्थो मुख्य एव सः।।

वास्तुशास्त्र के व्यावहारिक एव जनोपयोगी होने के कारण विद्यापीठ ने स्वतन्त्र रूप से इस शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन कराने का निश्चय किया। सम्प्रति इस शास्त्र का अध्ययन ज्यौतिषविभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त इन्नोवेटिव प्रोग्राम के तहत चल रहा है। इसी के प्रतिफल के रूप इस **वास्तुशास्त्र विमर्श 'द्वितीय पुष्प'** को ज्योतिष विभाग के वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम के संयोजक प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी ने विभिन्न शोधपूर्व लेखों से सुसज्जित किया है। यह इनके निरन्तर कार्य करने का ही परिणाम है। अतः मैं इन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

यह विषय आज जितना लोकप्रिय है उतना ही शास्त्रीय भी है। इस शास्त्र के गूढ़ तथ्यों को जन-जन तक पहुँचाने और प्रचलित भ्रान्त धारणाओं के निराकरण में ज्योतिष विभाग द्वारा किया जाने वाला यह कार्य एक स्वच्छ एवं सुदृढ़ भूमिका का निर्वहन कर रहा है। मैं विभागीय सभी विद्वज्जनों को धन्यवाद देते हुए, इस **वास्तुशास्त्र विमर्श 'द्वितीय पुष्प'** को वास्तुशास्त्र प्रेमियों के अध्ययनार्थ समर्पित करते हुए हर्ष एवं गौरव का अनुभव कर रहा हूँ।

रंगपञ्चमी वि. सं. २०६४ — प्रो. वाचस्पति उपाध्याय

दिनाङ्क २७.३.२००८ — कुलपति

दो शब्द

भारतीय वास्तुशास्त्र की यह विशेषता है, कि इसका उद्‌गम वेद से हुआ है। अथर्ववेद के उपवेद स्थापत्यवेद में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का स्वतन्त्र रूप से चिन्तन किया गया है। वेद से लेकर वास्तुशास्त्र की यह शाश्वत परम्परा वर्तमान तक अनवरत चली आ रही है। इस प्रकार स्थापत्य वेद से लेकर वर्तमान तक वास्तुशास्त्र का विकसित स्वरूप भारतीय वास्तुशास्त्र के मानक ग्रन्थों में मिलता है, जिसमें कि भारतीय दार्शनिक पृष्ठभूमि पर पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पञ्चमहामूतों के सन्तुलन तथा गुरुत्वशक्ति, चुम्बकीयशक्ति एवं सौर ऊर्जा इन तीन प्रकार की शक्तियों के प्रबन्धन के सिद्धान्तों का विस्तार से विचार किया गया है। भारतीय वास्तुशास्त्र की यह विशिष्टता है कि इसमें दिक् देश और काल को विशेष महत्त्व दिया गया है। वैदिक विद्याओं में वास्तुशास्त्र ही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आवासीय एवं अन्य कार्यों के लिए निर्मित भवनों में पञ्चमहाभूतों के सन्तुलन एवं तीनों प्रकार की शक्तियों के प्रबन्धन से उस भवन में रहने वाले मनुष्य के क्रियाकलापों में ऊर्जा, स्फूर्ति एवं सन्तुष्टि का सञ्चार होता है। आजकल के तथाकथित वास्तुशास्त्री, जिन्हें भारतीय वास्तुशास्त्र की मूलसंकल्पना एवं इसके आधारभूत सिद्धान्तों की जानकारी नहीं है, चीनी वास्तुशास्त्र फेंगभुई की भारतीय वास्तुशास्त्र में मिलावट करके हमारी वैदिक वास्तुशास्त्र की परम्परा को भ्रष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं।

भारतीय वास्तुशास्त्र पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश इन पञ्चमहाभूतो. के सन्तुलन को भवन निर्माण में सर्वोच्च प्राथामिकता देता है, जबकि फेंगभुई जल एवं वायु, इन दो महाभूतों को विशेष महत्त्व देता है तथा पृथ्वी, तेज एवं आकाश इन तीन महाभूतों का विशेष रूप से विचार नहीं करता। देशभेद से फेंगभुई चीनी विद्या होने के कारण वहाँ की जलवायु, संस्कृति एवं परम्परा के अनुरूप वास्तु का विचार करती है, जबकि भारतीय वास्तुशास्त्र वैदिक परम्परा के अनुसार वास्तु विचार करता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मनुष्य के रहने या किसी भी प्रकार के उपयोग में आने वाला आवासीय, धार्मिक, व्यावसायिक अथवा औद्योगिक भूखण्ड वास्तु कहलाता है तथा जिसमें इनके निर्माण के नियमों, सद्धान्तों एवं प्रविधियों का विवेचन किया जाता है, उसे वास्तुशास्त्र कहते है।

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत एवं पुराणों से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय वास्तुशास्त्र की अक्षुण्य परम्परा चली आ रही है। विश्वकर्माप्रकाश, समराङ्गणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, मयमतम् मानसार, प्रासादमण्डन, वास्तुरत्नाकर, वास्तुरत्नावली आदि भारतीय वास्तुशास्त्र के मानक ग्रन्थ हैं। जिसमें वास्तुशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय वास्तुशास्त्र की अक्षुण्ण परम्परा को देखते हुए विद्यापीठ के सम्मान्य कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी की सत्प्रेरणा एवं दिशानिर्देश से तथा ज्यौतिष विभागाध्यक्षचर प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी के निर्देशन में विभाग के प्रस्ताव पर यू.जी.सी. द्वारा प्रदत्त इन्नोवेटिव प्रोग्राम के अन्तर्गत सत्र २००४ से वास्तुशास्त्र में द्विवर्षीय पी. जी. डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया है।

यह पाठयक्रम इन्हीं दो लोगों की दूरदर्शिता एवं निरन्तर कार्यशीलता का ही परिणाम है। अतः मैं इन्हैं प्राणाम करते हुए मंगलकामना करता हूँ। इस प्रकाशन हेतु प्रकाशन समिति एवं वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम के संयोजक प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी तथा समिति के अन्य सभी विद्वान सदस्यों को साधुवाद देता हूँ। मुझे आशा है जिज्ञासु सुधीजन अवश्य इस प्रकाशक से लाभान्वित होंगे।

प्रो. प्रेमकुमार शर्मा
अध्यक्ष – ज्यौतिष विभाग

सम्पादकीय

वास्तुशास्त्र स्वयं में एक सम्पूर्ण एवं परिमार्जित विज्ञान है। इसके द्वारा अतीत में विकसित हुई भवनादि निर्माण प्रौद्योगिकी सुव्यवस्थित एवं दोष मुक्त है। वास्तुशास्त्रज़्की एक लम्बी परम्परा वैदिक काल से ही उपलब्ध होती है। इसी शास्त्र का अपर नाम स्थापत्य वेद भी है जो अथर्ववेद के उपवेद के नाम से जाना जाता है। वास्तुशात्र के प्राचीन ग्रन्थों जैसे-मानसार, मयमतम् समराङ्गणसूत्रधार, वास्तुविद्या, शिल्परत्न, विश्वकर्माप्रकाश आदि की विषय वस्तु पर यदि दृष्टिपात करें तो स्थापत्य के एक सुव्यवस्थित क्रम का बोध होता है।

प्राचीनवास्तु शास्त्र के आचार्यों ने इस शात्र को वास्तु-शिल्प-चित्र के रूप में परिभाषित किया है। इन तीनों का समवेत रूप ही वास्तुशास्त्र है। आज के वैज्ञानिक युग में सिविल इंजिनियरिङ्ग, आर्किटेक एवं इन्टीरियर डिजायनिङ्ग, ने बड़े-बड़े कीर्तिमान स्थापित कर मानव को सुखी एवं समृद्ध बनाने की पूर्ण कौशिश की है परन्तु फिर भी मानव सुख का अनुभव नहीं कर पा रहा है। आज का वैज्ञानिक चिन्तन मात्र भौतिकवादी चिन्तन है जिससे मानव जैसी आकृति को कभी भी सुख का अनुभव नहीं हो सकता है क्यों कि अनुभव करने वाला तो भौतिक पिण्ड में रहते हुए आदि दैविक एवं आध्यात्मिक नियमों के द्वारा संचालित होता है। जीवन को संचालित करने वाले बहुत से सिद्धान्त प्रकृति में बहुत सूक्ष्मरूप में विद्यमान रहते हैं, जिन्हें हमारी कोई भी प्रयोगशाला प्रमाणित नहीं कर सकती है। इसी प्रकार के बहुत से नियमों एवं सिद्धान्तों का परीक्षण एवं अनुभव कर त्रिकालदर्शी ऋषियों ने बहुजन हितार्थ वास्तुशात्र की रचना स्थापत्यवेद के रूप में की क्योंकि भारतीय वास्तुशास्त्र ही तो पार्थिव-अपार्थिव का संगम स्थल है। अगर गृह पार्थिव-अपार्थिव का संगम स्थल न हो तो मानव कहीं भी सुख का अनुभव कर सकता है परन्तु यह दृष्टिगोचर नहीं होता है। इस त्रि-आयामी जगत में मात्र भौतिकता से सब कुछ प्राप्त हो ऐसा सम्भव नहीं है।

ज्योतिषशास्त्र अपने अङ्गी वेद के उद्देश्य की पूर्ति में सर्वाधिक सफल एवं अग्रणी वेदाङ्ग है। यह वेदाङ्ग ज्योतिष्मान् पिण्डों की भौतिक गणना के द्वारा इस संसार के व्यष्टिगत एवं समष्टिगत जीवनधारियों का पृथक्-पृथक् चिन्तन करता है। व्यष्टिगत विचार से ज्यौतिष के होरा विभाग का तथा समष्टिगत विचार से संहिता विभाग का विकास हुआ। इसी संहिता के अन्तर्गत वास्तुशास्त्र का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। ज्योतिष के मुख्य विचार बिन्दु दिग्-देश एवं काल के कारण ही वास्तुशास्त्र का समावेश ज्योतिशास्त्र के अन्तर्गत हुआ है। आदि काल से ही मानवजीवन के विविधपक्षों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार करने में ज्योतिष शास्त्र ही सर्वाधिक सफल रहा है। वास्तुशास्त्र में भी मूलतः दिग्-देश एवं काल का ही विचार किया जाता है। अगर वास्तविक रूप में देखा जाय तो यह पाया जाता है कि ये तीनों

एक दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। यह भी कर सकते हैं कि दिग् और काल, देश (स्थान) सापेक्ष होते हैं, बिना एक के दूसरे का ज्ञान सम्भव नहीं है। वास्तुशास्त्र को वातावरण का विज्ञान कहते हैं किसी भी वातावरण को समझने में दिग् एवं काल की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। इसीलिए वास्तुशास्त्र के आदि प्रणेता विश्वकर्मा ने काल के परीक्षण को अधिक महत्व दिया और साथ ही यह भी कहा कि काल का अतिक्रमण करना बहुत बड़ा दोष है क्योंकि काल देश भेद से भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए शुभ काल का उल्लङ्घन कदापि नहीं करना चाहिए। यथा-

आदौ कालं परीक्षेत सर्वकार्यार्थसिद्धये। कालो हि सर्वजीवानां शुभाशुभफलप्रदः॥
कालातिक्रमणे दोषो द्रव्यहानिश्च जायते। देवानामपि देवीनां विप्रादीनां विशेषतः॥
प्रसादभवनारम्भे स्तम्भस्थापनकर्मणि। द्वारस्थापनवेलायां भवनानां प्रवेशने॥
वापीतटाकनिर्माणे गोपुरारम्भकर्मणि। विमानमण्डपारामगर्भगेहोद्धतो तथा॥
कालं शुभं परीक्षेत मङ्गला वाप्ति साधकम्। देशभेदेन कालोऽपि भिन्नतां प्रतिपद्यते॥
इष्टिकान्यसनं शस्तं शुभकाले विशेषतः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभं कालं न लङ्घयेत्॥[१]

देश के सापेक्ष काल निर्धारण के पश्चात् दिग् ही एक महत्वपूर्ण अवयव है जो वास्तु के लिए सर्वाधिक उपयोगी है; विना दिङ्निर्धारण के आचार्यों ने कुलनाश तक की सम्भावना व्यक्त की है, इस सन्दर्भ में वृद्धनारद कहते है कि-- **दिङ्मूढ़ं कुलनाशः स्यात् तस्मात् संसाधयेद्दिशः।**[२]

वास्तुशास्त्र के स्रष्टा कमलासन में विराजमान चतुर्मुख ब्रह्मा ही माने जाते हैं। इस विश्व को सुनियोजित एवं सुसज्जित करने के लिए ब्रह्मा ने अपने पूर्व में स्थित विश्वभी मुख से विश्वकर्मा की, दक्षिण में स्थित विश्वविद् मुख से मय की, पश्चिम में स्थित विश्व स्रष्टा मुख से मनु की तथा उज़र में स्थित विश्वस्थ मुख से त्वष्ट्रा की उत्पति की। यथा--

विश्वभूरिति नामैतत्पूर्ववक्त्रं प्रकीर्तितम्। दक्षिणे विश्वविद्वक्त्रं विश्वस्थं च तथोज़रे।
पश्चिमे विश्वस्त्रष्टाज्यं वक्त्रमेवं चतुर्विधम्। एतेज्यः प्रथमं जातं विश्वकर्मचतुष्टयम्।
पूर्वानने विश्वकर्मा जायते दक्षिणे मयः। उज़रस्थ मुखे त्वष्ट्रा पश्चिमे तु मनु स्मृतः॥[३]

इस ब्रह्माण्ड के कार्य को विधिवत् पूर्ण करने के लिए इन चारों ने क्रमशः स्थपति, सूत्रग्राही, तक्षक एवं वाधकि नामक पुत्रों को जन्म दिया। इनके इन चारों पुत्रों के कार्य पृथक्-पृथक् निश्चित किये गये, जिससे परस्पर कोई विसंगति उत्पन्न न हो। मत्स्यपुराण[4] के अनुसार वास्तु शात्र के 18 आचार्य प्रसिद्ध हैं। अन्यत्र 25 आचार्यों का भी वर्णन मिलता है। इन 18 एवं 25 आचार्यों में से प्रायः

---

1. विश्वकर्मा वास्तुशास्तरम्, पृ. 13-14
2. वृहद्वास्तु माला, पृष्ठ 42
3. वास्तुसारसंग्रह प्राक्कथन, पृष्ठ 8
4. मत्स्यपुराण अध्याय 251-252

सभी वैदिक कालीन ऋषि एवं प्रख्यात देवपुरुष हुए हैं। इनमें से विश्वकर्मा और मय समकालीन प्रतिद्वन्दी माने जाते हैं। आज भी दानव शिल्पी मय का **मयमतम्** तथा देवशिल्पी विश्वकर्मा का **विश्वकर्माप्रकाश** और **विश्वकर्मावास्तु** नामक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। ये दोनों अपने-अपने क्षेत्र में सर्वाधिक प्रख्यात आचार्य माने जाते हैं। कह सकते हैं कि विश्वकर्मा और मय दोनों वास्तुशात्र की सुदृढ़ परम्परायें थी। जो वैदिक काल से मध्यप्राचीन युग तक निर्बाध गति से चलती रही। महाभारत काल तक ये परम्परायें दृष्टिगोचर होती है।

वास्तुशास्त्र की एक विस्तृत परम्परा एवं वर्तमान में इसके स्वरूप को देखते हुए हमारे यशस्वी कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी ने जुलाई 2004 में पूर्व संकाय प्रमुख एवं ज्योतिष विभागाध्यक्ष प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी के सहयोग से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत इन्नोवेटिव प्रोग्राम के अन्तर्गत विद्यापीठ ने इस विषय का पठन-पाठन प्रारम्भ किया। जो सम्प्रति पी.जी.डिप्लोमा पाठ्यक्रम के रूप में सफलतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस प्रोग्राम के अन्तर्गत प्रतिवर्ष देश के विशिष्ट विद्वानों द्वारा विजिटिंग फैकल्टी के अन्तर्गत विशिष्ट व्याख्यान होते हैं। प्रति वर्ष इस पाठ्क्रम के तहत अध्येता छात्रों को आचार्यों के निर्देशन में एक विशिष्ट विषय प्रायोगिक अध्ययन के रूप में दिया जाता है। इन अध्ययनों में से समिति द्वारा उपयुक्त पाये गये निबन्धों को एवं विशिष्ट विद्वानों के व्याख्यानों को ज्योतिषविभाग **वास्तुशास्त्र विमर्श** के रूप में प्रकाशित करता है।

सर्वप्रथम एतदर्थ में संस्कृत उन्नायक परमश्रद्धेय कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी के चरणकमलों में प्रणाम करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं; जिनकी सत् प्रेरणा एवं दृढ़संकल्प से यह योजना निर्बाधगति से अपना कार्य कर रही है। इस योजना को कार्य रूप में परिणत करने एवं सम्यक् निर्देशन के लिए अवकाश प्राप्त ज्योतिष विभागाध्यक्ष प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी के हम कृतज्ञ हैं। इस प्रकाशन कार्य में उत्साहवर्द्धन करने वाले हमारे कुशल प्रशासक कुलसचिव डॉ. बी.के. महापात्र जी तथा शोध एवं प्रकाशन विभागाध्यक्ष प्रो. रमेशकुमार पाण्डेय जी का सराहनीय योगदान रहा है। अत: मैं इन्हें हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। इसी सन्दर्भ में प्रकाशन समिति एवं ज्योतिषविभाग के अध्यक्ष प्रो. प्रेमकुमार शर्मा जी व अन्य सभी सदस्यों को हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ। जिनके सत् परामर्श से **वास्तुशास्त्र विमर्श** '**द्वितीयपुष्प**' का प्रकाशन हो सका। मुद्रण कार्य के लिए अमर प्रिंटिंग प्रेस एवं अन्य सभी सहयोगी सुहृद जनों का, जिनका सहयोग इस प्रकाशन कार्य में प्राप्त हुआ, हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। शमिति।

प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी
संयोजक
वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम

शोध एवं प्रकाशन समिति

१.	प्रो. प्रेमकुमार शर्मा	अध्यक्ष
२.	प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी	संयोजक
३.	डॉ. विहारीलाल शर्मा	सदस्य
४.	डॉ. विनोदकुमार शर्मा	सदस्य
५.	डॉ. नीलम ठगेला	सदस्य
६.	डॉ. दिवाकरदत्त शर्मा	सदस्य
७.	डॉ. परमानन्द भारद्वाज	सदस्य
८.	डॉ. सुशीलकुमार शर्मा	सदस्य
९.	डॉ. फणीन्द्रकुमार चौधरी	सदस्य
१०.	डॉ. रश्मि चतुर्वेदी	सदस्य

विषयानुक्रमणिका

भारतीय वास्तुशास्त्र का ऐतिहासिक विकास

डॉ० शैलजा पाण्डेय

वास्तुविद्या उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव-सभ्यता। भारतीय वास्तु-विद्या के निदर्शन वेद से ही प्राप्त होने लगते हैं, किन्तु इसका स्वरूप वेदाङ्गों में स्थिर, पुराणों तथा आगमों में पल्लवित होता है। षड् वेदाङ्गों में ज्योतिष एवं कल्प से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है तथा शुल्बसूत्रों में प्रतिपादित वेदी-प्रकल्पन भारतीय वास्तु विद्या की आधार शिला है।

वास्तुपद का अर्थ

वास्तु शब्द 'वस् निवासे' धातु से उत्पन्न है तथा यह निवास योग्य भूखण्ड तथा गृह का बोधक है।[१] वेदों में वास्तु पद का अर्थ प्राय: निवास एवं गृह प्राप्त होता है। 'सुवास्तु' शब्द शोभन गृह के अर्थ में[२] तथा 'अवास्तु' पद गृहाभाव के अर्थ में[३] प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेदीय संहिताओं[४] में वास्तु शब्द का अर्थ यज्ञ वास्तु है। सूत्रग्रन्थों में वास्तुपद का अर्थ सामान्यतया आवास है[५] किन्तु कौशिकगृह्यसूत्र में वास्तु शब्द मृतकों के संस्कार-स्थल का बोधक है।[६] इस प्रकार वैदिक साहित्य में वास्तु पद के विविध अर्थ प्राप्त होते हैं।[७]

---

१. वाचस्पत्यम् - भाग ६, पृ. ४८८८, हलायुध - पृ. ६०६, अमरकोश - २.२.१९, आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृ. ९२३, मोनियर विलियम्स, ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी - पृ. ९४९

२. ऋग्वेद, ८.१९.३६

३. अथर्ववेद, १२.७.७

४. मैत्रायणी० १.५.११३, तैत्तिरीय० ३.१.१०.३, वाजसनेयी० १६.३९

५. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ६.२८.६, पारस्कर गृह्यसूत्र ३.४८ आदि

६. कौशिकगृह्यसूत्र ५.२.१३

७. राम गोपाल - वैदिक टर्म वास्तु एण्ड इट्स डिरीवेटिस, पृ. ३७-३९, भारतीय विद्या (शोध पत्रिका) म. म. जे. एच. दवे अभिनन्अन ग्रन्थ।

वाल्मीकि रामायण[१] तथा **महाभारत**[२] में वास्तु पद भवन-निर्माण का बोधक है। पुराणों में, विशेषतया **मत्स्य पुराण**[३] में सभी देवों का जहाँ आवास हो, उसे वास्तु कहा गया है। **अर्थशास्त्र** में वास्तु गृह, क्षेत्र, आराम, सेतुबन्ध एवं तड़ाग तथा इनकी आधार भूमि का बोधक है।[४] वास्तु शब्द का अर्थ **कामिकागम** में विमान, प्रासाद आदि भवन[५], **अपराजितपृच्छा** में ग्राम तथा नगर आदि[६], **मयमत** में प्रधान रूप से भूमि[७] तथा **मानसार**[८] में देव एवं मनुष्यों का भवन, भूमि, भवन तथा पर्यङ्क आदि प्रकल्पन वर्णित है।

इस प्रसङ्ग मे अर्वाचीन विचारकों का मत भी द्रष्टव्य है। डॉ० प्रसन्न कुमार आचार्य ने वास्तुशब्द से हर्म्य, (प्रासाद, मण्डप, सभा, शाला, प्रपा, रङ्ग आदि) यान (स्यन्दन, शिविका, रथ) पर्यङ्क, ग्राम, पुर, दुर्ग, पत्तन, भूमि एवं भवन का परिगणन किया है। इसके अतिरिक्त मूर्तिनिर्माण एवं प्रस्तरकर्म भी इसके अन्तर्गत आते हैं।[९] फ्रेडरिक महोदय ने वास्तु पद से शरण अथवा छादन अर्थ ग्रहण किया है।[१०] **इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** कोश में इसका अर्थ भवन-निर्माण-विद्या किया गया है।[११] एलिए बोनर ने भी इसका अर्थ यही किया है।[१२] इस प्रकार वास्तु शब्द का प्रथम अर्थ भूमि एवं भवन है। कालान्तर में इसके अर्थ का विकास होता गया तथा वास्तु के अन्तर्गत शिल्प भी समाहित हो गया।

वास्तुशास्त्र का इतिहास

वेदों में वास्तुशास्त्र–संस्कृत वाङ्मय में सर्वप्रथम वास्तु-वर्णन वेद से ही प्राप्त होता है। **ऋग्वेद** में गृह के अर्थ में वास्तु, शरण, शर्म, क्षय, वरुथ्य, सदन तथा दुरोण आदि पदों का प्रयोग

---

१. वाल्मीकि रामायण, १.२३, ३३, ५६
२. महाभारत, २.१८
३. निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते। मत्स्य पुराण २५१.१४
४. अर्थ शास्त्र, ३.८.२
५. कामिकागम, २०८-२१०
६. अपराजितपृच्छा, २.१७
७. भूमिप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम्।
भूरेव मुख्यवस्तु स्यात् तत्र जातानि यानि हि॥ मयमत, २.१
८. मानसार, २.२-३
९. प्रसन्न कुमार आचार्य - डिक्शनरी आफ हिन्दू आर्किटेक्चर, पृ. ४५६
१०. फ्रेडरिक - आर्ट एंड हिस्ट्री आफ पेन्टिग,
स्कल्पचर, आर्किटेक्चर, खंड १, पृ. १३
११. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, खंड २, पृ. ३०९
१२. एलिस बोनर - इन्ट्रोडक्शन टू वास्तुसूत्र उपनिषद्, पृ. ९

प्राप्त होता है।[1]

यजुर्वेद में वास्तु का प्रयोग प्रायः यज्ञपरक है यथा यूप निर्माण[2] स्तूप निर्माण[3] एवं आसन्दी पर्यंक आदि का निर्माण।[4] अथर्ववेद[5] के शालासूक्तों में भवन-निर्माण-परक वर्णन अपेक्षाकृत आधिक स्पष्ट हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यूप, वेदी एवं श्मशान आदि की संचना में शिल्प-सौष्ठव प्रतिबिम्बित होता है। **शतपथ ब्राह्मण** में यज्ञादि के प्रसंग में चिति वर्णन[6], इष्टका निर्माण[7] तथा इष्टका के प्रमाण एवं प्रकारों[8] का विस्तार से वर्णत किया गया है।

सूत्र साहित्य में श्रौत, शुल्ब तथा गृह्यसूत्रों में वास्तु-प्रयोग प्राप्त होता है। यज्ञवेदियों के निर्माण में शुल्बसूत्र ग्रन्थों का विशेष स्थान है। शुल्ब शब्द का अर्थ मापन कर्म में प्रयुक्त सूत्र अथवा रज्जु है। वेदी-निर्माण हेतु वेदी की आकृति के अनुसार क्षेत्र मापन, इष्टकामापन एवं उनकी आकृति तथा संख्या का निर्धारण शुल्ब सूत्रों का विषय है। इस प्रसंग में **बौधायन** तथा **आपस्तम्ब शुल्बसूत्र** उल्लेखनीय हैं।

गृह्यसूत्रों में भूमिचयन, भूशोधक तथा पूजन आदि का वर्णन प्रतिपादित है जो कि वास्तुशास्त्र के अनुकूल है। **शांखायन, पारस्कर** तथा **आश्वलायन** गृह्यसूत्र इस कोटि में आते हैं।[9]

वेदों में वास्तुविद् देवगण

यह सम्पूर्ण सृष्टि स्वयमेव स्थापत्य का अद्भुत निदर्शन है। सृष्टि प्रक्रिया में सभी देव सहायक हैं अतः सभी शिल्पी है किन्तु उनमें कुछ देवता प्रमुख हैं-

क संज्ञक प्रजापति - क प्रजापति प्रथम वास्तु देव हैं। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त[10] में क प्रजापति द्वारा अन्तरिक्ष तथा द्यावापृथिवी के निर्माण की चर्चा की गई है।

---

१. ऋग्वेद, २.३.८, १.१५४.६, ६.१६.३३, १.१२१.२, ४.५३.६, ८.१०१.५, १०.११.९ ७.९२.३ आदि
२. तैत्तिरीय संहिता, १.३.६.३
३. वाजसनेयी संहिता ३५
४. वही, १९.८६, २०.१
५. अथर्ववेद, ३.१२, ९.३
६. शतपथ. ७.१.२०, ८.१-५
७. वही, ६.१.२.२२, २३, २९ आदि
८. वही, ८.७.२.१७
९. शांखायन० ३.४.५, १, २ पारस्कर० ३.४, आश्वलायन० २.९, १०
१०. ऋग्वेद हिरण्यगर्भ सूक्त १०.१२१

विश्वकर्मा - विश्व का कर्तां होने के कारण विश्वकर्मा कहे जाने वाले देव प्रजापति से सम्बद्ध हैं।[१] ये त्वष्टा देव के साथ समीकृत हैं।[२] निरुक्तकार यास्क ने इन्हें 'विश्वकर्मा भौवन'[३] तथा 'सर्वस्य कर्ता'[४] कहा है। शौनक ने विश्वकर्मा का अर्थ **'विश्वस्य कर्म जनयन् स विश्वकर्मा'** किया है।[५] इनके पश्चात् कृत्य ब्रह्माण्ड की सृष्टि, जल-निर्मिति[६], सभी जीवों[७] तथा द्यावापृथिवी के निर्माण[८] आदि हैं।

त्वष्टा - तक्षण कर्म से सम्बद्ध वैदिक देवता त्वष्टा वस्तुओं के रूप का निर्माण करते हैं एवं छील-काट उन्हें प्रकाशमान बनाते हैं। यास्क के मतानुसार त्वष्टा शब्द त्विष् अथवा त्वक्ष् धातु से व्युत्पन्न है।[९] शौनक ने भी यास्क ने मत की पुष्टि की है।[१०]

लौहकुठार से युक्त सुन्दर हस्त वाले[११] वस्तुओं के रूप का निर्माण करते हैं[१२] तथा तक्षण कर्म से पदार्थों को भास्वर बनाते हैं।[१३] यह मनुष्य एवं पशु आदि के[१४] तथा गर्भस्थ जीवों के रूप का निर्माण करते हैं।[१५] वास्तु-शिल्पी त्वष्टा की प्रसिद्ध शिल्प रचनायें हैं- वाहन, आयुध, सबदुघा, धेन, दिव्य त्रिबन्धुर, रथ, हरि संज्ञक अश्व, अग्नि से कला प्रदर्शन, एक चमस से चार चमसों का

---

१. वाजसनेयि संहिता, १२.६१
२. अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजनमग्रे।। वही, ३१.१७
३. विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुह्वान्थकार।
स आत्मानमप्यन्ततो जुह्वाञ्चकार। निरुक्त १०.२६
४. वही, १०.२५
५. बृहद्देवता, २.५०
६. ऋग्वेद १०.८१.१, तैत्तिरीय संहिता, ७.१.५.१
७. ऋग्वेद १०.८१.५
८. वही, १०.८१.२-४
९. निरुक्त, ८.१३
१०. त्विषितस्त्क्षतेर्वा स्यात् तूर्णमश्नुत एव वा।
कर्मसूत्तारणो वेति तेन नामैतदश्नुते॥ बृहद्देवता ३.१६
११. मैक्डॉनल - वैदिक माइथॉलाजी (हिन्दी अनु. राम कुमार राय) पृ. २२०
१२. बृहद्देवता ३.२५
१३. निरुक्त, ८.१३
१४. ऋग्वेद, १.१८८.९
१५. वही, १०.१८४.१

निर्माण,[१] वज्र[२] तथा लौह कुठार का तीक्ष्णीकरण।[३] इस प्रकार प्रकार त्वष्टा निष्णात देव-शिल्पी कहे गये हैं।[४]

ऋभू देवगण - सुन्दर हस्त वाले दक्ष ऋभु गण सूधन्वा अंगिरी के पुत्र तथा त्वष्टा के त्वाष्ट्र कर्म कुशल शिष्य हैं। इन्होंने रथ, रथ का चक्र, चक्रधारा, वल्गा,[५] सहस्त्र रश्मियाँ[६] हरि संज्ञक अश्व,[७] माता के निधन के कारण दीन हुये गोवत्स के लिये चमड़े से मातृ रूपा धेनु का निर्माण किया तथा वृद्ध माता-पिता को पुनर्यौवन से युक्त किया।[८]

वास्तोष्पति - यद्यपि इस देवता का वास्तु अथवा वास्तु-परक शिल्प कार्य में काई योगदान नहीं है तथापि ये गृह के पालक एवं रक्षक देवता हैं।[९] बृहद्देवता में इन्हें त्वष्टा के सदृश शिल्पी कहा गया है।[१०]

रामायण तथा **महाभारत** में वास्तु-निदर्शन भूरिशः प्राप्त होते हैं। दोनों ग्रन्थों में उत्तरभारतीय नागर परम्परा एवं दक्षिण भारतीय द्राविड परम्परा के अनेकों उदाहरण दृष्टिगत होते हैं। रामायण में विविध पुरियों का वर्णन मिक्ता है।[११] किष्किन्धा क्षेत्र में वर्णित विचित गुहा मय के शिल्पकौशल का अद्वितीय निदर्शन है।[१२] इनके अतिरिक्त विविध उद्यानों का वर्णन[१३] एवं पुष्पक विमान,[१४] आदि वास्तुशिल्प के अप्रतिम उदाहरण हैं। इसीप्रकार महाभारत में पुरियों का

---

१. बृहद्देवता, ३.८५-८७
२. ऋग्वेद, १.३२.२
३. वही, १०.५.९
४. बृहद्देवता, ३.८४
५. ऋग्वेद १.१८०.१, ८.५.२९, २२.५
६. वही, १.११९.१
७. वही, १.११.१, १६१.३ तु. बृहद्दवता ३.८३-९०
८. ऋग्वेद, १.११०.८
९. निरुक्त १०.१७
१०. बृहद्देवता २.४४
११. वाल्मीकि०, अयोध्यापुरी १.५.५-२३, किष्किन्धापुरी-किष्किकन्धा० ३३.४-१७, लंका पुरीसुन्दर० ३.२-२१, ४.४.३० आदि
१२. वाल्मीकि०, किष्किन्धा० ५०.२.४१, ५१.१०-१८
१३. वही, सुन्दर० ७.१४-३४, उत्तर० ४२.१-१७
१४. वही, सुन्दर० ९.११

वर्णन,[१] शिविर,[२] सभा,[३] लाक्षागृह[४] तत्कालीन वास्तु के उदाहरण हैं।

पुराणों में वास्तु शास्त्र का शास्त्रीय स्वरूप प्रमुखतः **मत्स्यपुराण** (२५२-२६० अ.), **अग्निपुराण** (१०५, २४७ अ.) **स्कन्दपुराण** (माहेश्वर खण्ड) तथा **गरुड़पुराण** (४३-४९ अ.) में प्राप्त होता है। उपपुराणों में **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** (३.८६-८७) उल्लेखनीय है।

वास्तुविद् पौराणिक देवता

वैदिक देव परिवार में मुख्यतया उपर्युक्त देवता वास्तुकर्म से सम्बद्ध तो हैं किन्तु उनका वास्तुशास्त्र से साक्षात् सम्बन्ध उल्लिखित नहीं है। पुराणों में त्रिमूर्ति का वास्तु शास्त्र के उपदेष्टा के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है।

ब्रह्मा - सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा को स्थापत्य वेद अथवा वास्तुशास्त्र का प्रोक्ता कहा गया है।[५] **मानसार** के अनुसार ब्रह्मा के चार मुख विश्वकर्मा, मय, त्वष्टा एवं मनु हैं।[६] इनके मानस पुत्र नारद, भृगु, पुलस्त्य, प्रह्लाद, अत्रि एवं वशिष्ठ आदि वास्तुवेत्ता कहे गये हैं।[७]

विष्णु - भगवान् विष्णु ने अपने मत्स्य विग्रह से मनु को वास्तु शास्त्र का उपदेश दिया।[८] विश्वकर्मा ने उन्हीं से चित्रशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया।[९] वराह-विग्रह से विष्णु ने प्रथम वास्तु पृथ्वी का जलौघ से उद्धार किया।[१०]

शिव - महादेव शिव समग्र ज्ञानों के मूल-स्त्रोत हैं।[११] अपने दक्षिणामूर्ति विग्रह से यह भक्तों को विद्या प्रदान करते हैं। इन्हें भी वास्तु शास्त्र का उपदेष्टा कहा गया है।[१२] वास्तु मण्डल के

---

१. महाभारत, इन्द्रप्रस्थपुरी १.२०७.३०-४८, द्वारकापुरी - ३.१५.५-१८, मिथिलापुरी - ३.२०७.७-११
२. वही, ५.५११, १५६
३. वही, पाण्डव सभा - २.१.४-५, ४७, इन्द्रसभा - २.७, यम सभा - २.८, वरुण सभा २.९, कुबेर सभा २.१०, ब्रह्म सभा २.७-१४
४. वही, १.१४४, ८.११
५. स्थापत्यं चासृजद् वेदं क्रमात्पूर्वादिभिमुखैः। भागवत पुराण, ३.१२.३८
६. मानसार १.२
७. मत्स्यपुराण, २५२.२-४
८. संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणः। वही, २५२.४
९. विष्णुधर्मोत्तर० ३.३५.५
१०. वराह पुराण ११२.१
११. ईश्वरात् ज्ञानमन्वीच्छेत्। मत्स्य० ६८.४१
१२. मानसार १.२

अधिपति देवता वास्तु का जन्म शिव से ही हुआ है।[१]

वास्तुशास्त्र के आचार्य

वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों का उल्लेख पुराणों, वास्तुग्रन्थों तथा शिल्पग्रन्थों में प्राप्त होता है। **मत्स्य पुराण** में वास्तुशास्त्र के उपदेशक १८ आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है– भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति। किन्तु इस विद्या को सर्वप्रथम मत्स्यरूप धारी विष्णु ने मनु को प्रदान किया था।[२] **अग्नि पुराण** में २५ तन्त्र ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है।[३] इन ग्रन्यों के उपदेष्टा वास्तुशास्त्र के भी उपदेशक कहे गये हैं।

विविध आचार्य एवं उनके ग्रन्थ - वास्तु प्रोक्ता आचार्यों एवं उनके ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है–

गर्ग - उतथ्यपुत्र आचार्य गर्ग प्रथितयशस्क ज्योतिषशास्त्र के आचार्य थे। उन्होंने शेषनाग से ज्योतिर्विद्या का अध्ययन किया।[४] इन्हें वास्तुशास्त्र का आचार्य भी कहा गया है।[५] इनके द्वारा प्रोक्त गार्ग्यतन्त्र का उल्लेख **अग्नि पुराण** में प्राप्त होता है।

नारद - वास्तुशास्त्रज्ञ महर्षि नारद **नारदीय तन्त्र**[६] के प्रोक्ता कहे गये हैं। **नारद संहिता**, **नारदीय पाञ्चरात्र**, **नारद वास्तुविधान** आदि ग्रन्थों में वास्तु शास्त्र विषयक वर्णन प्राप्त होता है।

---

१. मत्स्य० ५.३०

२. भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः।।
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती।।
अष्टादशैते विख्याताः वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणः।। मत्स्य० २५२.२-४

३. अग्नि पुराण, ३९.१-५

४. प्राचीन चरित्र कोश, पृ. ५८८-५८९

५. मत्स्य० २५२.३

६. अग्नि० ३९.१-५

अत्रि - ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि **आत्रेयतन्त्र** के प्रोक्ता कहे गये हैं।[१] अत्रि **संहिता** तथा **अत्रिस्मृति** भी इनके ग्रन्थ हैं।[२]

शुक्र - भृगुपुत्र असुरकुलगुरु शुक्राचार्य विविध विधाओं के आचार्य थे। **शुक्रनीति** ग्रन्थ में इनके वास्तु विषयक विचार प्राप्त होते हैं। इनके पुत्र त्वष्टा[३] विख्यात तक्षक[४] थे।

बृहस्पति - देवगुरु बृहस्पति का परिगणन अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त शुक्र के साथ वास्तुशास्त्र के आचार्य के रूप में भी **मत्स्य पुराण** में प्राप्त होता है। इनकी बहन विश्वकर्मा की माता कही गयी हैं। **बृहस्पति स्मृति** तथा **बार्हस्पत्यशास्त्र** आदि इनके ग्रन्थ हैं।[५]

नग्नजित् - आचार्य नग्नजित् चित्रकर्म में कुशल कहे गये हैं। इनका ग्रन्थ **चित्रलक्षण** प्रसिद्ध है।

अन्य वास्तुविद्

वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड[६] में वास्तुविद् के रूप में नल एवं नील का उल्लेख प्राप्त होता है। नल कृताची के गर्भ से उत्पन्न विश्वकर्मा के पुत्र[७] अथवा अग्नि के पुत्र थे। ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है कि ऋतध्वज मुनि के शाप के कारण विश्वकर्मा को वानर योनि प्राप्त हुई थी।[८] नल भी विश्वकर्मा के ही समान वास्तुकर्म में कुशल थे।[९] इन्होनें सागर के ऊपर दश योजन चौड़े लम्बे सेतु का निर्माण किया था।[१०] विश्वकर्मा के ही अंश से उत्पन्न वानर नील भी इस कार्य में उनके सहायक थे।[११]

---

१. अग्नि पुराण, ३९.१-५
२. प्राचीन चरित्र कोश, पृ. १६
३. ब्रह्माण्ड. ३.१.७७-७१
४. ऋग्वेद १.३२.२, अथर्ववेद, १२.३.३३
५. प्राचीन चरित्र कोश, पृ. ७७६
६. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल - हिस्ट्री आफ हिन्दू आर्किटेक्चर, पृ. ६५
७. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, २२.४५, महाभारत, वन पर्व, २६७.४१
८. स्कन्द. ३.१.४२
९. वामन. ६२, मानसार, ६८.१-२
१०. वाल्मीकि रामायण, युद्ध. २२.५२
११. वही, २२.७३, महा., वन. २७४.२५, भागवत० ९.१०.१६, प्राचीन चरित्र कोश, पृ. ५७३

महाभारत के प्रख्यात वास्तुविद् पुरोचन लाक्षागृह के कर्ता थे। अग्नि दाह के कारण उसी लाक्षागृह में उनकी मृत्यु हो गयी।[१] **मानसार** – में वास्तु के आचार्यों का परिगणन इस प्रकार किया गया है– विश्वकर्मा, विश्वेश, विश्वेश्वर, प्रबोधक, वृत, मय, त्वष्टा, मनु, नल, मानवित्, मानकल्प, मानसार, प्रष्टा, मानबोध, विश्वबोध, नय, आदिसार, विशाल, विश्वकाश्यप, वासुबोध, महातन्त्र, वास्तुविद्यापति, पाराशरीयक, कालयूप, चैत्य, चित्रक, आवर्य, साधकसारसंहिता, भानु, इन्द्र, लोकज्ञ तथा सूर्य।[२] **बृहत्संहिता**[३] में स्थान स्थान पर गर्ग, मनु, वशिष्ट, पराशर, विश्वकर्मा, नग्नजित् तथा मय आदि वास्तुविदों के मतों का उल्लेख प्राप्त होता हैं। **वास्तुकौस्तुभ** में शौनक, राम, रावण, परशुराम, हरि, गालव, गौतम, शोभित, वैद्याचार्य, मयपुत्र, कार्तिकेय तथा च्यवन का उल्लेख वास्तुशास्त्रज्ञ के रूप में मिलता है।[४] **विश्वकर्माप्रकाश** में वास्तु-प्रवर्तकों के रूप में गर्ग, पराशर, बृहद्रथ एवं विश्वकर्मा उल्लिखित हैं।[५] इनके अतिरिक्त कश्यप ऋषि का **काश्यप शिल्प**, अगस्त्य ऋषि का **सकलाधिकार**, मरीचि ऋषि का **वैखानसागम** प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।[६] इन ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र एवं शिल्प का प्रतिपादन किया गया है। वास्तुविदों के प्रसंग में विश्वकर्मा एवं मय अग्रगण्य हैं। उनका परिचय इस प्रकार है–

विश्वकर्मा

देवशिल्पी विश्वकर्मा उत्तरभारतीय स्थापत्य के नागर परम्परा के प्रवर्तक हैं। इन्हें वास्तु एवं शिल्प का ज्ञान ब्रह्मा से प्राप्त हुआ।[७] वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित सृष्टि कार्य में प्रवृत्त देवता विश्वकर्मा हैं। ये ब्रह्म की मानसी दृष्टि को रूप प्रदान करते हैं। **शिल्पप्रकाश** में इन्हें विष्णु का अवतार कहा गया है। महा तेजस्वी विश्वकर्मा ६४ कलाओं के अधिपति, ऐरावत गज पर आरूढ़, उज्ज्वलवदन, आभूषणों से आभूषित, चतुर्भुज, शान्तवदन, पीतवसन तथा दोनों हाथों में

---

१. महाभारत, आदि., १३२.८-१३, प्राचीन चरित्र कोश, पृ. ४३६
२. मानसार, ६८.१-२
३. बृहत्संहिता, ५७, ५८ अ.
४. पी. ओ. सोमपुरा, वास्तुविद्या ग्रन्थ की प्रस्तावना, पृ. ६
५. विश्वकर्मा प्रकाश, १३.२५-२७
६. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल - भवन निवेश, पृ. ४
७. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल - भारतीय स्थापत्य, पृ. २७

मानसूत्र धारण किये हुये स्तूयमान हैं।[१] परवर्ती वाङ्मय में विश्वकर्मा मनुष्यों के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। विश्वकर्मा के जन्म के विषय में ग्रन्थों में अनेकशः वर्णन प्राप्त होता है। धर्म की दस पत्नियों में एक पत्नी दक्ष की पुत्री थी जिसने अष्ट वसुओं को जन्म दिया। सबसे छोटे प्रभास संज्ञक वसु विश्वकर्मा के पिता थे। प्रभास के पुत्र विश्वकर्मा शिल्प-विद्या-विशारद एवं प्रजापति हुये। उन्होंने प्रासाद, भवन उद्यान, प्रतिमा, भूषण, तडाग, आराम एवं कूपादि की रचना की। वह देव-वर्धकि भी बने।[२] यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि इनकी माता बृहस्पति की बहन थी।[३] **समराङ्गण सूत्रधार** ग्रन्थ में विश्वकर्मा को प्रभास का पुत्र एवं बृहस्पति का भागिनेय कहा गया है।[४]

इस प्रकार विश्वकर्मा वसु-पुत्र होने के कारण शिल्प-कर्म में निष्णात तथा वास्तुवेत्ता बृहस्पति के भागिनेय होने के कारण वास्तुविद् बनें। यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि विश्वकर्मा प्रजापति त्वष्टा के पुत्र थे।[५] अपराजितपृच्छा में विश्वकर्मा को महर्षि भृगु का भागिनेय कहा गया है। भृगु को धातु-कर्म में कुशल कहा गया है। इस प्रकार विश्वकर्मा जन्मजात शिल्पकर्म में कुशल थे।[६] विश्वकर्मा के पुत्रों की चर्चा पुराणों में प्राप्त होती है। **विष्णु पुराण** में अजैकपाद, अहिर्बुध्न, त्वष्टा एवं रुद्र विश्वकर्मा के पुत्र कहे गये हैं।[७] **वाल्मीकि रामायण**[८] एवं **महाभारत**[९] में नल को विश्वकर्मा का पुत्र कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में विश्वकर्मा के ९ शिल्पकार पुत्रों की चर्चा प्राप्त होती हें ये हैं– मालाकार, कर्मकार, शंखकार, कुविन्दक, कुम्भकार, कांस्यकार, सूत्रधार, चित्रकार

---

१. शिल्प प्रकाश, १.१-३
२. 'विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः। प्रासादभवनोद्यान-प्रतिमाभूषणादिषु। तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः।' (मत्स्य पुराण ५.२७-२८)
तु. विष्णु., १.१५.११८-१२८, ब्रह्म. १.१५६-१५८, वायु. २.५.२८-३०, ब्रह्मवैवर्त., श्रीकृष्णजन्म खण्ड, १४
३. विष्णु पुराण, १.१५.११८
४. समराङ्गणसूत्रधार – 'सुतः प्रभासस्य प्रभासस्य वसोः स्वस्रीयश्च बृहस्पतेः।, तु. द्विजेन्द्र नाथ शक्ल– भवन निमेश, पृ. ४, ५'
५. स्कन्द पुराण, ४.२.८६.३
६. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल – भवन निवेश, पृ. ४, ५
७. विष्णु पुराण, १.१५.११
८. वाल्मीकि रामायण, युद्ध. २२.४५, ५२
९. महाभारत, वन पर्व, १८९

एवं स्वर्णकार।[1] विश्वकर्मा के प्रत्येक पुत्र ने शिल्प की इन विधाओं का स्वतन्त्र विकास किया। इन पुत्रों के जन्म के प्रसंग में कथा इस प्रकार है कि विश्वकर्मा का प्रणय घृताची अप्सरा से हो गया। उसके प्रणय निवेदन को घृताची से तिरस्कृत कर दिया। इससे विषण्ण (खिन्न) होकर विश्वकर्मा ने घृताची को शूद्रा हो जाने का शाप दिया, जिसके प्रत्युत्तर में घृताची ने भी उन्हें शाप दिया। शापवशात् विश्वकर्मा कारु ब्राह्मण होकर तथा घृताची ने मदन गोप की पुत्री विद्या होकर पृथिवी पर जन्म लिया। इन्होंने ९ शिल्पी पुत्रों को जन्म दिया।[2]

अपराजितपृच्छा शिल्पग्रन्थ में विश्वकर्मा का कुल परिचय पुराण से पृथक् है। विश्वकर्मा का जन्म चाक्षुष् मनुवंश में हुआ था। जय, विजय, सिद्धार्थ एवं अपराजित ये चार उनके मानस पुत्र कहे गये हैं। इनमें जय तथा अपराजित वास्तुविद् थे। जय के वास्तुविषयक प्रश्न एवं विश्वकर्मा के उत्तर के रूप में **जयपृच्छा** संज्ञक ग्रन्थ तथा अपराजित के प्रश्न एवं विश्वकर्मा के उत्तर **अपराजितपृच्छा** संज्ञक ग्रन्थ के रूप में उपस्थित हैं। विजय संगीत के तथा सिद्धार्थ के ज्ञाता थे।[3]

धर्म की दृष्टि से विश्वकर्मा शैव थे। उन्होंने काशी में भगवान् आशुतोष को सन्तुष्ट कर अपने कर्म में नैपुण्य प्राप्त किया।[4] शिल्प-कौशल प्राप्त कर उन्होंने शिवलिङ्ग की स्थापना की एवं उनकी विधिवत् पूजा की। पूजा से सन्तुष्ट होकर सम्पूर्ण संसार के सभी कर्मों में कौशल का तथा अतिलोकोत्तर कर्मज्ञता का वर प्रदान किया। इसी से इनकी संज्ञा विश्वकर्मा हुई।[5]

विश्वकर्मा के गुरुकुल में निवास का वर्णन **स्कन्द पुराण** में प्राप्त होता है। एक बार अध्ययन काल में वर्षा ऋतु से पूर्व गुरु ने उनको कुटिया बनाने का आदेश दिया। गुरु पत्नी ने

---

१. ततो बभुवुः पुत्राश्च नवैतो शिल्पकारिणः।
मालाकारकर्मकार शंखकारकुविन्दका।।
कुम्भकारः कांस्यकारः षडेते शिल्पिनां वराः।
सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारः तथैव च।
पतितास्ते ब्रह्मशापाद् अयाज्या वर्णसङ्कराः॥ ब्रह्मवैवर्त पुराण १.१०.१९-२१

२. विश्वकर्मा च शूद्रायां वीर्याधानं चकार सः (ब्रह्मवैवर्त पुराण १.१०.१९) तु डॉ० सरकारशूद्राज इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृ. १८७

३. अपराजितपृच्छा, ३४.३-१४

४. स्कन्द०, ४.२.८६.१७-४९

५. अतिलोकोत्तरकर्म तत्सर्व वेत्स्यसि स्वयम्।
विश्वेषां विश्वकर्माणि विश्वेषु भूवनेषु च॥
यतो ज्ञास्यसि तन्नाम विश्वकर्मेति तेऽनद्य॥ स्कन्द० ४.२.८३-८४

उन्हें कञ्चुक रचना के लिये, गुरु-पुत्र ने चर्म बन्ध से युक्त सुखद पादुका के लिये तथा गुरु-पुत्री ने स्वर्णाभरण तथा गज-दन्त से निर्मित खिलौने के लिये कहा। इनके अतिरिक्त गुरु-परिवार ने उनसे मूसल, ऊखल, पीठ आदि गृहोपकरणों के निर्माण के लिये भी कहा। गुरु-पुत्री ने उनसे सूप-कर्म की शिक्षा के लिये प्रार्थना की तथा गुरु ने उनसे एक काष्ठ से निर्मित स्तम्भ से युक्त गृह के निर्माण के लिये कहा। साथ पढ़ने वालों ने भी उनसे विविध द्रव्य-रचना के लिए प्रार्थना की। विश्वकर्मा ने शिव के अनुग्रह से सभी के मनोरथों को पूर्ण किया।[१]

विश्वकर्मा शिल्प में विभिन्न हस्त कलाओं का परिगणन किया गया है। इनका उल्लेख इस प्रकार है[२]– सुवर्ण आदि धातु-कर्म, दारु-कर्म, दृषत्कर्म, मणिरत्नादिकर्म, पुष्पकर्म, वस्त्रकर्म, कर्पूरादिसुगन्धिद्रव्यकर्म, जलकर्म, कन्द मूलफलों का त्वक्-कर्म, सर्ववस्तुनिर्माणकर्म, सद्मदेवालय आदि का निर्माण कर्म सर्वनेपथ्यरचना, सूपकर्म, नानाविधयन्त्र रचना, आयुध रचना, जलाशय-दुर्ग आदि का निर्माण, विभिन्न कलायें, इन्द्रजालिक विद्या, सभी कर्मों में कुशलता तथा सभी के मनोवृत्तियों का ज्ञान। **शिल्पप्रकाश** ग्रन्थ में शिल्पविद्या के अन्तर्गत दारु, पाषाण, लौह, स्वर्ण तथा लेख कर्म का परिगणन किया गया है।[३]

विश्वकर्मा के कतिपय विश्रुत कृत्य हैं– सर्वदेवमय रथ का निर्माण[४], पार्वती-विवाह के मण्डप की रचना[५], सुधर्मा-देवसभा[६], रसातल में बलि के निवास के लिये मणिमय पुर की रचना,[७] लंका पुरी का निर्माण[८], सूर्य के तेज को कम करना,[९] तथा उस तेज से विष्णु के सुदर्शन चक्र, शिव के त्रिशुल तथा इन्द्र के वज्र का निर्माण।[१०] विश्वकर्मा द्वारा प्रोक्त कतिपय प्रसिद्ध वास्तु ग्रन्थ **वास्तुशास्त्र, विश्वकर्मा प्रकाश, दीपार्णव, क्षीरार्णव, वृक्षार्णव, अपराजितपृच्छा, जयपृच्छा** तथा **वास्तुप्रदीप** आदि हैं।

---

१. स्कन्दपुराण, ४.२८६.५-५९
२. स्कन्द० ४.२.८६.७४-८३
३. शिल्पप्रकाश, १.५.६
४. शिवपुराण, रुद्र संहिता, ५.३.४
५. वही, रुद्र संहिता ३.२७, स्कन्द. माहेश्वर. १.२४.२-२५
६. पद्म०, उत्तर., २६०
७. वामन०, ६७.१.२
८. वाल्मीकि रामायण, सुन्दर. २.२०
९. भविष्यपुराण १२१.६, २७
१०. पद्म, सृष्टि० ८९.३९-४०

मय

वास्तु-विद्या के दूसरे स्तम्भ स्वरूप मय असुर दक्षिण-भारतीय द्रविड़-परम्परा के उद्भावक हैं। मत्स्य पुराण में वर्णित १८ आचार्यों में इनका भी परिगणन किया गया है। महाभारत में मय कहते हैं कि- **अहं हि विश्वकर्मा दानवानां महाकविः।**[१] अर्थात् यह दानवों के विश्वकर्मा हैं। जिस प्रकार विश्वकर्मा देवों के समस्य वास्तु तथा वास्तु-शिल्प परक कार्य करते है, उसी प्रकार मय असुरों के समग्र कार्य सम्पन्न करते हैं।

कुल-परिचय - **रामायण** में इनका कुल-परिचय वर्णित है। मय दिति के पुत्र थे। स्वर्ग की अप्सरा हेमा इनकी पत्नी थी। अप्सरा हेमा के गर्भ से मायवी एवं दुन्दुभि संज्ञक दो पुत्र तथा मन्दोदरी संज्ञका पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका विवाह लंकाधिपति रावण के साथ हुआ। इस प्रकार यह लंकापति रावण का श्वसुर बना।[२] **महाभारत** में इसे दनु तथा कश्यप का पुत्र एवं नमुचि का भ्राता कहा गया है।[३]

मय दावन को महा तेजस्वी तथा मायावी कहा गया है।[४] यह माया विद्या का अप्रतिम ज्ञाता एवं कुशल प्रयोक्ता था। देवों एवं दानवों के युद्ध में इन्द्र की तामसी माया के विनाश के लिये मय ने अग्निमयी औौर्वी माया का प्रयोग किया।[५] मय के द्वारा प्रयुक्त एक अन्य माया 'पार्वती' थी। यह शिला, द्रुम, तथा पर्वत आदि से युक्त थी।[६]

मय रचित वास्तु एवं शिल्प के कतिपय निदर्शन हैं- पाण्डव सभा[७], सुवर्ण वन, सुवर्ण

---

१. महाभारत, सभा. १.५

२. वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, १२

३. महाभारत, आ. २.८.३९

४. मयो नाम महातेजा मायावी वा नरर्षभ। वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा, ५१.१०

५. तदासृजन् महामायां मयस्तां तामसीं दहन्।
युगान्तोद्योतजननी सृष्टामौर्वेण वह्निना॥ मत्स्य पुराण, १७५.१८

६. साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा।
अभवद् घोरसञ्चारा पृथिवी पर्वतैरिव।। मत्स्य पुराण, १७६.२७

७. महाभारत, सभा०, १५.५.९-१२

भवन[१], माया नगर[२], त्रिपुर[३], वैहायस विमान[४] तथा पुष्पक विमान।[५] मय प्रोक्त प्रधान ग्रन्थ **मयमतम्** है। **मयसंहिता** भी इनकी रचना कही गयी हैं ऐसा भी वर्णन है कि मय मयराष्ट्र (मेरठ) का राजा था तथा मयराष्ट्र इसकी राजधानी थी।[६]

इस प्रकार वास्तु एवं शिल्प के आचार्य मय एवं विश्वकर्मा का स्थान सभी वास्तुविदों में सर्वोपरि है।

परवर्ती साहित्य में वास्तु

अर्थशास्त्र में वास्तु विषयक वर्णन भी प्राप्त होता है। वास्तु की परिभाषा[७], दुर्ग निवेश[८] ग्राम एवं राष्ट्र आदि का स्थापन[९], भवन-द्वार तथा कपिशीर्ष, पुर-तोरण, एवं प्रतोली आदि शब्दों का प्रयोग ग्रन्थकार के वास्तु-शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित करता है। **मनुस्मृति** में ग्राम, गुल्म, राष्ट्र एवं दुर्ग आदि के प्रसंग में वास्तु-परिचर्चा प्राप्त होती है।[१०] **शुक्रनीति** में भूमि मापन, राजधानी-प्रकल्पन, राजप्रासाद, दुर्ग, राजमार्ग, प्रतिमा निर्माण तथा मन्दिर निर्माण आदि वास्तुशास्त्रीय विषय प्रतिपादित हैं।[११] आगम साहित्य में भी प्रभूत वास्तु परिचर्चा प्राप्त होती है। इनमें कामिकागम के ४८ पटलों में वास्तु विद्या वर्णित है। इसके अतिरिक्त कर्णागम का तालमान तथा **सुप्रभेदागम** का प्रासाद-पटल उल्लेखनीय है। आगम ग्रन्थों में मूर्ति निर्माण, विशेषरूप से लिङ्गोद्भव शैव प्रतिमाओं का सांगोपांग विवेचन प्राप्त होता है।[१२]

तन्त्र ग्रन्थों में स्थापत्य विवेचन द्रष्टव्य है। **अग्नि पुराण** में मूर्तिस्थापन के प्रसंग में २५ तन्त्रों का

---

१. वाल्मीकि रामायण, कि. ५१.११
२. वही, उत्तर० १२.८-९
३. शिव पुराण ५.२
४. भागवत पुराण ८.१०.१६-१७
५. वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड
६. प्राचीन भारतीय संस्कृत कोश, पृ. २८७
७. अर्थशास्त्र २.८
८. वही, २.४
९. वही, २.१, ६
१०. मनुस्मृति, ७.११४
११. शुक्रनीति, १.१९३-२७४, ४.४.७४-२०६
१२. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल - भारतीय स्थापत्य, पृ. ३६-३७

उल्लेख किया गया है।[1] मेरुतन्त्र में शालिग्राम[2] तथा शिवलिङ्गों[3] का वर्णन विशद रूप से किया गया है। बौद्ध साहित्य में भी प्रासाद, हर्म्य, गुहा, विहार एवं मण्डप आदि के प्रसंग में वास्तु विद्या के दर्शन होते हैं।[4] वराह मिहिर की बृहत्संहिता यद्यपि ज्योतिष शास्त्र का ग्रन्थ है तथापि इसके पाँच अध्यायों में वास्तु-शास्त्र वर्णित है।[5] इन अध्यायों में भूमि चयन, भू-परीक्षा, वास्तुपद विन्यास, द्वाररचना तथा वज्रलेप के प्रकार वर्णित हैं। स्थान-स्थान पर अन्य आचार्यों के मत भी अल्लिखित हैं।

वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ प्रायः दो श्रेणी में मिलते हैं- मय परम्परा (द्राविड रीति) तथा विश्वकर्मा परम्परा (नागर रीति)। डॉ० आफरेख्त की ग्रन्थसूची के अनुसार विश्वकर्मा परम्परा के ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं- अपराजितपृच्छा, जयपृच्छा, कृष्णार्णव, वास्तुशास्त्र, विश्वकर्मामत, अपराजितप्रभा अथवा विश्वकर्म संहिता, आयतत्त्व, ज्ञान रत्नकोष, वास्तुप्रकाश, वास्तुनिधि, वास्तुसंग्रह, वास्तुसमुच्चय, विश्वकर्मीय, सनत्कुमार का वास्तुशास्त्र, समराङ्गणसूत्रधार, युक्तिकल्पतरु, वास्तुराजवल्लभ अथवा राजवल्लभमण्डन, प्रासादमण्डन, रूप-मण्डन, राजसिंह का वास्तुशास्त्र, भुवनप्रदीप, बृहच्छिल्पशास्त्र, मानसोल्लास, मनुष्यालयचन्द्रिका, वास्तुरत्नावली, वास्तुमुक्तावली[6], दीपार्णव, क्षीराणेव, वृक्षार्णव, स्वर्गार्णव, परिमाण मंजरी, वास्तुकौस्तुभ कलानिधि, वास्तूद्धार, सुधानन वास्तु, वास्त्वाध्याय रत्नतिलक, सूत्रप्रतान, देव्याधिकार तथा शिल्पप्रकाश आदि।[7] उपर्युक्त ग्रन्थ सूची में यद्यपि कुछ ग्रन्थों के वर्ण्य विषय द्राविड परम्परा के अनुसार हैं यथा- **मनुष्यालय चन्द्रिका।**

मय परम्परा के पोषक प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं- मयमत, मानसार, चित्रलक्षण, कश्यप शिल्प, सकलाधिकार, वास्तुपुरुषविधान, प्रयोगमञ्जरी, प्रयोगपारिजात, शिल्परत्न, शिल्पसंग्रह, शुक्रनीति, ईशान शिवगुरुदेवपद्धति, हरिभक्तिविलास, मठप्रतिष्ठा तथा चतुर्वर्ग चिन्तामणि।[8]

डॉ० प्रसन्न कुमार आचार्य ने भी अपने वास्तु कोष में वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है।

---

१. अग्नि पुराण, ३९.१-५
२. मेरुतन्त्र, ५.५८८-६६५
३. वही, ९.६९-१९१
४. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल - भारतीय स्थापत्य, पृ. ३३
५. बृहत्संहिता, अध्याय ५३, ५६, ५७, ५८, ५९
६. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल - वास्तुशास्त्र १, पृ. ८३
७. पी. ओ. सोमपुरा - वास्तुविद्या तथा जयपृच्छा ग्रन्थ की प्रस्तावना
८. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल - वास्तुशास्त्र १, पृ. ८१.८३

आधुनिक वास्तुविद् एवं विचारक

वास्तु शास्त्र की विचार सरणि आज भी गतिशील है। इस परम्परा में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही विद्वान् आते हैं। उनमें कुछ नाम इस प्रकार हैं– स्टेला क्रेमरिश, कुमार स्वामी, प्रसन्न कुमार आचार्य, वासुदेव उपाध्याय, वासुदेव शरण अग्रवाल, गोपीनाथ राव, जितेन्द्र नाथ बनर्जी, रायकृष्ण दास, द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, तारापद भट्टचार्य, मल्लाया, विनयतोष भट्टाचार्य, वृन्दावन भट्टाचार्य, सरस्वती, हैवेल स्मिथ, मार्शल लागहर्स्ट, चान्दा, वत्स, पर्सी ब्राउन, श्री नारायण चतुर्वेदी, ढाके, लोवर ड्राविडदेश, जेम्स फगुर्सन, जेम्स बर्गेस, सतीश ग्रोवर, एन, एम, गांगुली, देवल मित्र, अरबन जानसन, वाल्टरहेन, निस्मर यजदानी, सुरेन्द्र, स्टुटली, एलिस बोनर आदि।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है वास्तु-शास्त्र का जन्म वेद, मुख्यतः वेदाङ्ग (ज्योतिष एवं कल्प) से हुआ। इसका प्रारम्भिक प्रयोग यज्ञादिकों में सम्बद्ध भूमि-चयन, भूमि-संस्कार, भूमि का मापन तथा वेदी-रचना आदि आवश्यक अंगों के सन्दर्भ में जो निर्देश प्राप्त होते हैं, वे ही कालान्तर में वास्तु-शास्त्र के सूत्रपात में सहायक बने। वैदिक वास्तु-विद्या का रूप वेदाङ्गों में स्थिर हुआ तथा पुराणों एवं आगम-ग्रन्थों में उसका विकास हुआ। आगे चलकर वास्तुविद्या के आचार्यों ने उसको एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में स्थापित किया।

वास्तु पद से प्रथम ज्ञान भूमि एवं भवन होता है। कालान्तर इसके अर्थ का विस्तार हुआ और इसमें हस्त-शिल्प भी समाहित हो गया। इस प्रकार भूमि एवं भवन के साथ-साथ गृह के प्राणियों के उपयोग में आने वाले यान, पर्यङ्क, आसन-शयनादि का भी समावेश वास्तु के अन्तर्गत हो गया तथा इनका निर्माण भी वास्तु शास्त्र का वर्ण्य-विषय बना। इसके अतिरिक्त दुर्ग, पुर, ग्राम, आराम, कूपादि का निर्माण भी वास्तुशास्त्र का अभिन्न अंग हो गया। भारतीय चिन्तन में सभी विद्यायें अध्यात्ममूला हैं। वास्तुशास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है। वास्तु-मण्डल एवं वास्तुपुरुष की परिकल्पना ने इस शास्त्र को धार्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप प्रदान किया। भवन में निवास भोगवाद से हट कर ईश्वरीय प्रसाद बन गया। इस प्रकार धर्मत्व से अनुप्राणित वास्तु-शास्त्र एक प्रयोग विज्ञान है जो भारतीय ऋषियों की विश्व को अद्वितीय देन है।

वास्तुशास्त्र का वैदिक एवं पौराणिक स्वरूप

प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय

वास्तु और वास्तुशास्त्र की कल्पना वैदिक काल से ही चली आ रही है। जब मनुष्य कुञ्जों और गह्वरों में रहता था तथा पृथ्वी पर आवासीय योजनायें नहीं थीं। उस समय मुनष्य अपनी सुरक्षा की दृष्टि से किसी प्रकार के सुरक्षित स्थान में अपना आवास बना लेता था। सर्वप्रथम पृथु ने पृथ्वी को समतल कर सुव्यवस्थित आवास की कल्पना की। अनन्तर पृथु ने ब्रह्मा से कहा– हे ब्रह्मन् आपके आदेश से मैंने पृथ्वी को समतल कर दिया है। अब आप इस पर नगर आदि की रचना करने का आदेश दें।[१] ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से विश्वकर्मा आदि की उत्पत्ति की। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के पूर्व मुख को विश्वभू, दक्षिण मुख को विश्वविद्, पश्चिम मुख को विश्वस्रष्टा तथा उत्तर मुख को विश्वस्थ कहा जाता है। ब्रह्मा के विश्वभू नामक सम्मुखस्थ से विश्वकर्मा की, विश्वविद् नामक दक्षिण मुख से मय की, विश्वस्रष्टा नामक पश्चिम मुख से मनु की तथा उत्तर दिशा में स्थित विश्वस्थ नामक मुख से त्वष्टा की उत्पत्ति हुई।[२] ब्रह्मा ने अपने इन पुत्रों से कहा– तुम लोग पृथ्वी पर जाकर वैन्य (पृथु) की अभिलाषा के अनुसार नगर, ग्राम पुर आदि की पृथक् पृथक् रचना करो। विश्वकर्मा ने जगत्स्रष्टा ब्रह्मा को आश्वस्त करते हुए कहा– अब मैं स्वयं अपनी बुद्धि से सुर, असुर, उरगों नागों, आदि के साथ-साथ पृथु एवं मनुष्यों के निवास हेतु सुन्दर पुरी, नगर, ग्राम, खेट (ग्राम) आदि का निर्माण करूंगा।[३] विश्वकर्मा ने सोचा ब्रह्मा के आदेश के अनुपालन में हमें कुछ कुशल शिल्पियों की आवश्यकता होगी। एतदर्थ चारों विश्वकर्माओं ने विभिन्न कार्यों में दक्ष एक-एक पुत्रों को जन्म दिया। विश्वकर्मा ने स्थपति को, मय नामक विश्वकर्मा ने सूत्रग्राही को, मनु नामक विश्वकर्मा ने तक्षक को तथा त्वष्टा नामक विश्वकर्मा ने बार्द्धकि को उत्पन्न किया। यह तो सर्व विदित है कि किसी भी निर्माण हेतु विभिन्न प्रकार के

---

१. ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि। च घोषान् व्रजान् सशिविरानाकारान् खेटखर्वटान्।।
प्राक् पृथोरिह नैतेषां पुरग्रामादिकल्पना। यथा सुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः।।
वास्तुसारसंग्रह प्राक्कथनम् पृ. ५

२. वास्तुसार सं ग्रह, प्राक्कथनम् पृ. ८

३. गत्वोर्बिवैन्यनृपतेः प्रियं तव करिष्यति। नगरग्रामखेटादीन् करष्यिति च पृथक् पृथक।।
स्वयं करष्यिेऽहमथो निवासाय पृथोः पुरीम्। विचित्र नगरग्राम खेटानति मनोहरान्।।
वास्तुसारसंग्रह प्राक्कथनम्पृ. ६

शिल्पियों की आवश्यकता होती है। कोई पाषाण विशेषज्ञ होता है, कोई काष्ठ विशेषज्ञ होता है तथा कोई धातु का ज्ञाता होता है। इन सभी विशेषज्ञों के संयुक्त प्रयास से कोई भी निर्माण कार्य संभव हो पाता है। प्राचीन वास्तुशास्त्र में इन विश्वकर्मा के पुत्रों का परिचय देते हुए लिखा है[१] कि–

१. स्थपित– सभी वेदों एवं शास्त्रों के ज्ञाता तथा निर्माण सम्बन्धी योजनाओं के विशेषज्ञ को स्थपति कहा जाता है। स्थपति की आज्ञा से ही सूत्रग्राही आदि कार्य करते हैं।

२. सूत्रग्राही–किसी भी योजना को सुनने समझने में कुशल तथा रेखाचित्र (मानचित्र) के निर्माण में निपुण को सूत्रग्राही कहा जाता है।

३. बार्धकि–किसी भी योजना को यथार्थ रूप में समझने में निपुण, वेदज्ञ तथा चित्रकला विशेषज्ञ को बार्धकि कहा जाता है।

४. तक्षक–निर्माण सम्बन्धी सभी कार्यों का ज्ञाता, कुशल कर्मियों से युक्त, शालीन तथा सभी प्रकार के शिल्पियों के गुरू को तक्षक कहा जाता है। इन सभी के सहयोग से गृह, ग्राम, नगर आदि का निर्माण होता हें परन्तु इन सबकी एक साथ अनुपलब्धता पर इनमें से कोई एक भी समस्त निर्माण कार्य में सक्षम हैं क्योंकि ये सभी सर्वगुण सम्पन्न हैं। फिर भी तक्षक के कुछ कार्य विशेष भी हैं। इन्हें काष्ठ विशेषज्ञ माना जाता है। जिस प्रकार आजकल भवनों के उपयोग में आने वाली, फर्नीचर हेतु उपयोगी लकड़ियाँ एवं प्लाई की दीमक, कीट, शीलन आदि से सुरक्षा हेतु विभिन्न रसायनों के प्रयोग किये जाते हैं उसी प्रकार पौराणिक काल में भी इनकी सुरक्षा व्यवस्था थी। इस कार्य के विशेषज्ञ तक्षक माने जाते थे। तक्षक ही जंगलों से उचित वृक्ष का चयन करते थे तथा उस वृक्ष को काट कर उसके छिलके उतार कर उसे तीन मास तक पानी में डुबो कर रखते थे। तदनन्तर उसे जल से निकालकर ऊपरी सतह को काट कर लकड़ी को चौकोर बनाकर सुखा लेते थे। सूखने के बाद आवश्यकतानुसार चिराई कर उसे कार्य में लेते थे। इस प्रयोग से लकड़ी अधिक समय तक सुरक्षित एवं दृढ़ होती है तथा उसमें कीटादि का भय भी नहीं रहता है।

इस प्रकार एक सुव्यस्थित योजना के साथ पृथु के मनोनुकूल पृथ्वी पर ग्राम, खेट, खार्वट, पुरी और नगरों का निर्माण किया गया। यहीं से वास्तु शास्त्र का उद्गम हुआ। इसी के साथ-साथ

१. स्थपतिः सर्वशास्त्रज्ञो वेदविच्छास्त्रपारगः। स्थापयत्यधिकपतिर्यस्मात् तस्मात् स्थपतिरुच्यते॥
स्थपतेराज्ञया सर्वे सूत्रग्राह्यादयः सदा। कुर्वन्ति शास्त्रदेशेन वास्तुवस्तु प्रयत्नतः॥
श्रुतज्ञः सूत्रग्राही च रेखाज्ञः शास्त्रवित्तमः। किवचारज्ञः श्रुतिज्ञश्च चित्रकर्मज्ञबार्द्धकिः॥
तक्षकः कर्मवित्सभ्यः सम्बन्धवद्यापरः। इहैव लोकस्य यत्कर्म सर्व तच्छिल्पिनां गुरुः॥
न लभ्यते तु यत्तस्मादेभ्यः सर्व प्रसाधयेत्।। वास्तुसारसंग्रह प्राक्कथनम् पृष्ठ-९

वास्तु पुरुष की कल्पना आती है। यद्यपि वास्तु पुरुष की अवधारणा वैदिक काल में वास्तोस्पति देव विशेष के रूप में मिलती है। जिसकी आराधना यज्ञ में, यज्ञवेदी के निर्माण में तथा वैदिक हवनों में होती है। वास्तोस्पति की आहुति महत्वपूर्ण मानी जाती है। पौराणिक काल में वास्तोस्पति के दो स्वरूप सामने आते हैं एक पुरुष रूप में दूसरा चक्र के रूप में। वास्तु पुरुष का वर्णन पुराणों में एक कथानक के रूप में आता है।[१]

एक बार अन्धक और भगवान शिव में घोर युद्ध हुआ। युद्ध श्रम से भगवान शिव के सिर से श्वेद (पसीना) का एक बिन्दु भूमि पर गिरा। उस बिन्दु से एक विशालकाय भयावह प्राणी की उत्पत्ति हुई जिसने उत्पन्न होते ही पृथ्वी और स्वर्ग दोनों को अत्यन्त भयभीत कर दिया। क्षण भर में उसने दैत्यों का नाश कर अपने निवास हेतु स्थान की याचना की। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर आवास योग्य भूमि में निवास का आदेश दे दिया। भयभीत सभी देवताओं ने उसे पकड़ कर उसके ऊपर आरूढ़ होकर अधोमुख कर निवास भूमि का मार्ग दिखला दिया। देवताओं द्वारा उस पर आरूढ़ (वास) होने से उसे वास्तु पुरुष कहा गया।

यह वास्तुपुरुष भवन, पुर, नगर, तड़ाग, वापी, वन, यज्ञ आदि के निर्माण तथा इनके जीर्णोद्धार में सर्वत्र पूज्य होता है। कहा गया है कि वास्तु पुरुष की पूजा सुख के लिए की जाती है। इनकी पूजा न करना हानिकारक होता है।[२]

वास्तु पुरुष की स्थिति निर्माणस्थल में सदैव एक समान होती है। स्थल के ईशान कोण में सिर, वायव्य में हाथों की कुहनी और अग्नि कोण में पैरों के घुटने तथा नैऋत्य कोण में वास्तु पुरुष के पैर होते हैं।

वास्तुपुरुष के इस रूप का वर्णन पुराणों के अनुसार ही सभी वास्तु ग्रन्थों में भी मिलता है। दूसरा वास्तु का स्वरूप चक्रों के रूप में होता है। शतपदकोष्ठक चक्र, एकाशीति पद कोष्ठक चक्र, चतुषष्टिपद चक्र आदि अनेक चक्र कार्यानुसार वास्तु ग्रन्थों में बतलाये गये हैं। इन चक्रों में अनेक देवताओं के स्थान होते हैं। यथा चतु:षष्टि पद चक्र के देवताओं के स्थान इस प्रकार हैं– पहले

---

१. संग्रामेऽन्धकरुद्रयोश्च पतितः स्वेदो महेशात्क्षितौ तस्माद् भूतमभूच्च भीतिजननं द्यावापृथिव्योर्महत्।
तद्देवैः रभसा विगृह्य निहितं भूमावधोवक्त्रकम् देवानां वसनाच्च वास्तुपुरुषस्तेनैव पूज्यो बुधैः।।
राजबल्लभमण्डनम् २.१

२. प्रासादे भवने तडागखनने कूपे च वाप्यां वने। जीर्णोद्धारे पुरे च यागभवने प्रारम्भ निर्वर्तने।।
वास्तोः पूजनकं सुखाय कथितं पूजां बिना हानये। पादौ रक्षसि कं शिवेऽह्निकरयोः सन्धी च कोणद्वये।।

राजबल्लभमण्डनम् २.२

चौषठ कोष्ठकों का एक चक्र बना लें उसके मध्य में चार कोष्ठकों में ब्रह्मा का स्थान होता है। पूर्व में दो पदों में अर्यमा का स्थान निश्चित है इन्हें गृहस्वामी भी कहा जाता है। दक्षिण के दो पदो में विवश्वान्, पश्चिम के दो पदो के मित्र तथा उत्तर के दो पदों में पृथ्वीधर का स्थान होता है। अग्न्यादि कोणों में आधे-आधे पद में क्रमशः सविता-सावित्र, इन्द्र-जय, राजक्ष्मा-रुद्र, आप-आपवत्स का स्थान होता है। इसी क्रम से सभी देवों की स्थापना चक्र के बाहरी पदों में भी अग्न्यादि क्रम से, अनिल, पूषा वितथ, वृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृंगराज, मृग, पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर शोष, यक्ष्मा, रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजङ्ग अदिति, दिति, शिखी, पर्जन्य, जयन्त इन्द्र सूर्य, सत्य भृश अन्तरिक्ष की स्थापना जाती है। इनमें से अन्तरिक्ष अनिल, मृग-पितर रोग-यक्ष्मा, दिति एवं शिखि अर्द्धपदिक देवता हैं। पूषा, भृंगराज दौवारिक, शोष, नाग, अदिति पर्जन्य, भृश सार्धपदिक देवता हैं।[१]

एकाशीति एवं चतुष्षष्टि प्रकार के वास्तु पुरुषों का विचार सर्वत्र किया जाता है। इनके स्थानानुसार ही आन्तरिक कक्षों का विन्यास किया जाता है। वास्तु नियमों से युक्त गृह को ही पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हेतु उपयुक्त गृह माना जाता है।

गृह का महत्व– चारों वर्णों के भरण-पोषण का भार गृहस्थ के ऊपर ही होता है। अतः गृहस्थ को वास्तु शास्त्र सम्मत गृह का निर्माण आवश्यक हो जाता है। कहा गया है कि दूसरे के गृह में की गई सभी श्रौत स्मार्त क्रियायें निष्फल होती हैं उन क्रियाओं का फल गृहस्वामी ही प्राप्त करता है।[२] भविष्यपुराण में गृह के महत्व को बतलाते हुए कहा गया है–

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।[३]

अथर्ववेद की प्पिलाद शाखा में गृह सूक्त है जिसमें कामना की गई है कि ये गृह स्वयं ऊर्जा से सम्पन्न हों तथा दूध आदि पदार्थों एवं सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त होकर विराजमान हों तथा मेरे

१. चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः। दक्षिणेन विवस्वोंश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा। इत्यादयः।
अग्निपुराणम् २४७.२-१५

२. परगेह कृताः सर्वाःश्रौतस्मार्तादिकाः क्रियाः। निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।
भविष्यपुराण उद्धृत वृहद्वास्तुमाला

३. भविष्य पुराण उद्धृत राजबल्लशमण्डनम् १.५

साथ मैत्री भाव रखें, जिससे हम इन्हें अच्छी तरह पहचान सकें। इन घरों में रहने वाले परस्पर मधुर भाषण करें, भूख-प्यास से पीड़ित न होकर प्रसन्नतापूर्वक रहें। इस घर के प्राणी प्रवासी होने पर भी हमसे जुड़े रहें। दूध घृत अन्न से तथा गौ आदि पशुओं में सदैव परिपूर्ण रहें। बहुत धन वाले मित्र इन घरों में आते रहें, प्रसन्नता के साथ स्वादिष्ट भोजन से सम्मिलित होते रहें। इन घरों में रहने वाले समस्त प्राणी व्याधियों से रहित होकर स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें।[१]

इस प्रकार की उत्कृष्ट भावनाओं तथा सभी प्राणियों के प्रति सद्भाव के साथ गृह की परिकल्पना वैदिक वाङ्मय की देन है। इसी लिए गृह निर्माण के पूर्व उत्तम भूमि का चयन कर वास्तुचक्र में स्थित देवाताओं की प्रकृति के अनुसार गृह निर्माण की विधि शास्त्रों में कही गई है।

गृह निर्माण के पूर्व की आवश्यक कर्त्तव्यता संक्षेप में इस प्रकार है-

१. जहाँ पर निवास करने की अभिलाषा हो उस क्षेत्र में सर्व प्रथम ग्राम या नगर का चयन करना चाहिए। इसके लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता है-

१.१ अनुकूलता-जिस स्थान पर गृह निर्माण करना हो उस स्थान की जलवायु का विचार सर्व प्रथम कर लेना चाहिए। शीत प्रकृति का व्यक्ति यदि उष्ण प्रदेश में निवासार्थ भूमि लेता है तो उसे निरन्तर शारीरिक कष्ट तथा मानसिक तनाव झेलना पड़ सकता है। इसी प्रकार उष्ण प्रकृति वाला शीत प्रदेश में सतत् कष्ट का अनुभव करेगा। अतः अपनी प्रकृति के अनुकूल ही जलवायु का होना सभी दृष्टियों से आवश्यक होता है।[२]

१.२ दिशा-ग्रामादि चयन के अनन्तर दिशा का निर्णय करना चाहिए। दिशा निर्णय का आशय यह है कि जहाँ से पञ्च महाभूतों की ऊर्जा समुचित रूप में प्राप्त हो रही हो वही दिशा उत्तम है।

१.३ मास और राशियों की शुद्धि-गृहस्वामी को ग्राम, मास और राश्यादि की शुद्धि का विचार कर लेना चाहिए। विविध वास्तु ग्रन्थों में इनके विवेचन उपलब्ध होते हैं।

---

१. इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः। पूर्णा नामस्य तिष्ठन्तस्ते नो जानन्तु जानतः।।
सूनृतावन्तः सुभगा द्रावन्तो हसामुदाः। अक्षुब्ध्या अतृष्यासो गृहानस्मद्बीतनः।।
येषां मध्ये प्रवसन् येषु सौमनसो बहु। गृहानुपह्वयाम यान् ते नो जानन्त्वायतः।।
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो यृहे पुनः।।
उपहूता भूरिधनाः सखाय स्वादु सन्मुदः। अरिष्टाः सर्वपुरुषाः गृहा नः सन्तु सर्वदा।।
द्र. वास्तुसारसंग्रहः १.२१-२५

२. देशग्रामानुकूलत्वं दिशो भूतग्रहस्य च। मासधिष्ण्यादिकं शुद्धं वीक्ष्यायसंज्ञकम्।। वास्तुसारसं. २.१

१.४ आय-व्यय–आय-व्यय का विचार काकिणी द्वारा किया जाता है। आय से व्यय कम होना चाहिए तथा अपनी काकिणी से स्थान की काकिणी अधिक हो तो शुभ होता है।

२. भूखण्ड चयन–भूखण्ड चयन करते समय आसपास के वातावरण तथा प्रतिवेशियों का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि उनका भी प्रभाव पड़ता है। यथा सचिवालय के समीप निवास करने से अर्थ हानि, धूर्त के समीप पुत्र का नाश, देवालय के समीप उद्वेग तथा चतुष्पथ पर गृह निर्माण करने से अपयश होता है। इसी प्रकार विशाल वृक्ष के समीप भूतादि पीड़ा, बल्मीक के ढेर पर विपत्ति, गड्ढे में अतृप्ति, ऊँची-नीची कटी-फटी तथा अस्थि से युक्त भूमि पर आयु एवं धन की हानि होती है।[१]

२.१ भूपरीक्षण–भूमि के शुभाशुभत्व का ज्ञान करने के लिए अनेक विधियाँ बतलाई गई हैं उनमें से किसी एक या एकाधिक विधि द्वारा भूपरीक्षण कर लेना चाहिए। ये विधियाँ प्रायः रूप, रस और गन्ध पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त एक घनहस्त गड्ढा खोद कर उसमें मिट्टी या जल भर कर उससे भी शुभाशुभत्व का ज्ञान किया जाता है।

२.२ पुराणों में शकुन के आधार पर भी शुभाशुभ का निर्णय किया गया है। अन्त में गर्ग का वचन उद्धृत करते हुए कहा गया है कि जिस स्थान को देखकर नेत्रों और मन को प्रसन्नता प्राप्त हो तथा स्थान पर जाने से आह्लाद के साथ सन्तोष का अनुभव हो उस स्थान को शुद्ध और पवित्र मानना चाहिए। उस स्थान पर गृह का निर्माण किया जा सकता है।

इन विधियों से स्थान का चयन करने के पश्चात् निर्धारित विधि से गृहस्वामी के हस्त प्रमाण से पिण्ड का साधन करना चाहिए। पिण्डमें अभीष्ट विस्तार का भाग देने से लम्बाई का ज्ञान हो जाता है। लम्बाई-चौड़ाई का ज्ञान कर राहु मुख रहित दिशा से खातारम्भ करना चाहिए। अनन्तर अग्निकोण में शिलान्यास करना चाहिए। शिलान्यास के समय भित्ति के निर्माण में यह सावधानी रखनी चाहिए कि यदि मिट्टी का भवन हो तो पिण्ड की रेखा (आउटलाइन) के भीतर ही दीवार होनी चाहिए, यदि ईंट की दीवार हो तो रेखा दीवार के मध्य में तथा यदि पत्थर की दीवार हो तो रेखा से बाहर ही दीवार का निर्माण होना शास्त्र सम्मत होता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि द्वार के ऊपर द्वार तथा द्वार के सम्मुख द्वार का निर्माण न हो। ये सभी प्रारम्भिक सावधानियाँ गृहस्वामी और परिवार के लिए सुख कारक होती हैं।

---

१. सचिवालयेऽर्थनाशो धूर्तगृहे सुतबधः समीपस्थे। उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः।।
....मुरजे बन्धुविनाशनम्।। वास्तुसार संग्रह ३.१-१७

भूमि की गुणवत्ता एवं परीक्षणविधियाँ

प्रो. उमाशंकर शुक्ल

वास्तुविद्या भारतीय ऋषियों की देन है। यह आर्य विद्याओं में से एक है। यह विद्या ऋषियों-मुनियों के दीर्घकालीन अनुसन्धान एवं चिन्तन से विकसित हुई है। इसका उद्देश्य सदा से ही मानव-कल्याण रहा है-

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया॥[1]

प्राचीनकाल में विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर चौंसठ कलाओं (विद्याओं) की शिक्षा प्राप्त करते थे, जिनमें वास्तु विद्या भी सम्मिलित थी। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी न जाने कितनी विद्यायें छिपी पड़ी हैं, जिनकी ओर अभी लोगों का ध्यान नहीं गया है। सनत्कुमार जी के पूछने पर नारदजी ने कहा था-"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳसामवेद अथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्प देवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।।[2]

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद कण्ठस्थ है। इसके अतिरिक्त इतिहास-पुराणरूप पाँचवां वेद, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या क्षत्र विद्या, नक्षत्रविद्या (ज्योतिष), सर्पविद्या और देवजन विद्या को हे भगवन् मैं जानता हूँ।

भारत की अनेक विलक्षण विद्यायें आज लुप्त हो चुकी हैं और उनको जानने वालों का भी अभाव हो गया है। किसी समय यह देश भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों दृष्टियों से बहुत समुन्नत था परन्तु आज यह इस स्थिति में नहीं है-

---

१. शिवकर्मप्रकाश

२. छान्दोग्योपनिषद् ७.१.२

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।।[१]

अर्थात् समस्त संग्रहों का अन्त विनाश है, लौकिक उन्नतियों का अन्त पतन है, संयोगों का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है।

अब हम मूलविषय पर आते हैं। गृह निर्माण से पहले भूमि की गुणवत्ता का विचार आवश्यक है। यदि 'भूखण्ड' वास्तुशास्त्र के अनुरूप नहीं है तो इसे किस प्रकार अनुकूल बनाया जाय? इसका वर्णन शास्त्रानुसार प्रस्तुत कर रहा हूँ। आचार्य वराहमिहिर ने **'क्षेत्रमादौपरीक्ष्येत गन्ध-वर्ण-रस-प्लवौ'** अर्थात् भूमि (प्लाट) का परीक्षण, भूमि के गन्ध-वर्ण-रस और प्लव (ढलान) के अनुसार बताया है।

भूमि की गुणवत्ता—भूमि की गुणवत्ता की जानकारी के लिये भूमि का परीक्षण आवश्यक है। जिसकी अनेकों विधियाँ उपलब्ध होती है। यथा—

(१) जिस भूमि पर हरे-भरे वृक्ष, पौधे, घास आदि हों और खेती की उपज अच्छी होती हो, वह भूमि जीवित होती है और गृहनिर्माण हेतु प्रशस्त होती है। वराहमिहिर के शब्दों में—

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि-श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।[२]

(२) भूखण्ड परीक्षण की दूसरी विधि—भूखण्ड के मध्य में १x१x१ अर्थात् एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा, एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें और खोदी हुई मिट्टी को पुनः उसी गड्ढे में भर दें। यदि गड्ढा भरने से मिट्टी शेष बच जाय तो वह भूमि श्रेष्ठ होती है। इस पर निवास करने से धन-सम्पत्ति का लाभ और पारिवारिक विकास होता है। यदि मिट्टी गड्ढे के बराबर निकलती है तो वह मध्यम भूमि कहलाती है।

---

१. महा.आ.०४४१९८ वाल्मीकि २.१०५.१६
२. बृ.सं. वा श्लो. ८८

(३) भूखण्ड परीक्षण की तीसरी विधि में १x१x१ हाथ का गड्ढा खोदकर जल भर दें और उत्तर दिशा की ओर सौ कदम चलें, लौटने पर यदि जल उतना ही रहे तो भूमि उत्तम यदि कुछ कम (आधा) रहे तो वह भूमि मध्यम होगी।

(४) भूखण्ड परीक्षण की चतुर्थ विधि में पूर्व निर्मित गड्ढे में सायंकाल जल भर दें प्रातःकाल देखें, यदि गड्ढे में जल दिखे तो उस स्थान पर निवास करने पर अभिवृद्धि होगी। यदि गड्ढे में कीचड़ दिखे तो मध्य फल देने वाला भूखण्ड है ऐसा समझना चाहिए।

(५) भूमि परीक्षण की पाँचवीं विधि भूखण्ड को जुतवाकर उस भूमि में धान, शाठी, मूँग, गेहूँ, सरसों, तिल, जौ में से कोई भी एक धान्य बो दें। यदि वे बीज तीन दिन तीन रात में अंकुरित हों तो भूमि उत्तम, पाँच रात में अंकुरित हों तो भूमि मध्यम और सात रात में अंकुरित हों तो भूमि अधम कही जायेगी।

(६) १x१x१ हाथ का गड्ढा खोदकर उसे गाय के गोबर से लीपकर, मिट्टी के बड़े दिये में चारवर्ति दीप, जिसकी बत्तियाँ चारों दिशाओं में हों तिल के तेल में जलाकर गड्ढे में रख दें, यदि पूर्व दिशा की बत्ती अधिक समय तक जलती रहे तो उसे ब्राह्मण के लिए शुभ मानना चाहिए, इसी प्रकार क्रमशः उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की बत्तियों को क्षत्रिय, वैश्य ओर शूद्र के लिए शुभ समझना चाहिए। यदि वह वास्तु-दीपक चारों दिशाओं में जलता रहे तो वहाँ की भूमि सभी वर्णों के लिए शुभ होती है।

(७) जिस भूमि में गड्ढा खोदने पर अथवा हल जोतने पर भस्म, अंगार, हड्डियाँ, भूसी, केश, कोयला आदि निकले वह भूमि भवन निर्माण के लिए अनपयुक्त है। यदि भूमि से लकड़ी निकले तो अग्नि भय, हड्डी निकले तो कुल नाश, साँप निकले तो चोर का भय, कोयला निकले तो रोग या मृत्युभय, भूसी निकले तो धन का नाश होता है। परन्तु यदि भूमि से ईंट, पत्थर, कंकड़, शंख, लोहा आदि निकले तो उस भूमि को निवास के लिए शुभ समझना चाहिए।

(८) भविष्य पुराण में आया है कि जल के ऊपर तथा मन्दिर के ऊपर निवास के लिए घर नही बनाना चाहिए।[१]

(९) **ब्राह्मण-** बुद्धिजीवीवर्ग, वैज्ञानिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक लोगों के निवास के लिए श्वेतवर्ण की भूमि उत्तम होती है। **क्षत्रिय-** शासक वर्ग, मंत्री, राज्याधिकारी, राजनेता, सेना, पुलिस

१. भविष्य पुराण, मध्यय १.९

एवं प्रशासन के उच्चाधिकारियों के आवास हेतु रक्तवर्ण भूमि प्रसस्त होती है। **वैश्य**- व्यापारियों, व्यवसायियों, दुकान, शोरूप, व्यावसायिक संसाधनों, बैंकों, उद्योगों एवं व्यवसायिक केन्द्रों के लिए पीत वर्ण भूमि उत्तम है। **शूद्र**- झोपड़पट्टी, वधालय इत्यादि के लिए कृष्ण वर्ण भूमि शुभ होती है।

(१०) ब्राह्मण के लिए घृत गन्ध वाली, क्षत्रिय के रक्त गंध वाली, वैश्य के लिए अन्न गंध वाली एवं शूद्र के लिए मद्य (मदिरा) गंध वाली भूमि शुभ होती है।

ब्राह्मण के लिए मीठे स्वाद वाली, क्षत्रिय के लिए कसैले स्वाद वाली, वैश्य के लिए खट्टे स्वाद वाली और शूद्र के लिए कड़वे स्वादवाली भूमि शुभ होती है। मीठे स्वाद वाली भूमि सभी वर्णों के लिए शुभ होती है।

भूमि शुद्धीकरण उपाय–

अनपयुक्त भूमि को शुद्धीकरण के द्वारा शुद्ध करने की विधि शास्त्र में बतायी गयी है–

सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्धयति पञ्चभिः।।[१]

अर्थात्- सम्मार्जन (झाड़ना), गाय के गोबर से लीपना, सींचना (गो मूत्र, गंगा जल आदि से) खोदना (ऊपर की मिट्टी खोदकर फेंक देना) और गायों को बाँधने से अशुद्ध भूमि खण्ड भी शुद्ध हो जाता है।

भूमि के भीतर यदि गाय का शल्य (हड्डी) हो तो राजभय, मनुष्य का शल्य हो तो संतान नाश, बकरे का शल्य हो तो अग्नि भय, घोड़े का शल्य हो तो रोग, गधे या ऊँट का शल्य हो तो धनहानि, कुत्ते का शल्य हो तो कलह होता है। यदि भूमि में एक पुरुष (१२० अंगुल) के नीचे शल्य हो तो उसका दोष नहीं होता। हड्डी युक्त भूखण्ड की मिट्टी खोदकर अलग कर यदि उस स्थान पर नयी मिट्टी भर दी जाय तो भवन निर्माण के लिए भूमि श्रेष्ठ हो जायेगी।

भूमि की सतह का प्लव (Slope) विचार–

(१) नारद पुराण में[२] आया हैं कि पूर्व, उत्तर और ईशान दिशा में नीची भूमि सब मनुष्यों

१. मनुस्मृति ५.१२४
२. नारदपुराण ५६.५४४

के लिए वृद्धिकारक होता है। अन्य दिशाओं में नीची भूमि गृहनिर्माण के लिए हानिकारक होती है।

सुग्रीव के राज्याभिषेक के बाद भगवान श्री राम ने प्रस्त्रवणगिरि के शिखर पर अपने रहने के लिए एक गुफा चुनी। उस गुफा के विषय में वे लक्ष्मण से कहते हैं–

प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति।
पाश्चाच्चैवोन्नता सौम्य निवातेयं भविष्यति।।[1]

अर्थात्–हे लक्ष्मण यहाँ का स्थान ईशान कोण की ओर नीचा है, अतः यह गुफा हमारे निवास के लिए बहुत अच्छी रहेगी। नैऋत्य कोण से ऊँची यह गुफा हवा और बरसात से बचाने के लिए अच्छी होगी।

(२) पूर्व में ऊँची भूमि पुत्र और धन का नाश करती है। आग्नेय में ऊँची भूमि धन प्रदान करती है। दक्षिण में ऊँची भूमि मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। एवं निरोग रखती है। नैऋत्य में ऊँची भूमि पुत्रप्रद तथा धनधान्य की वृद्धि करने वाली होती है। पश्चिम में ऊँची भूमि लाभ देने वाली होती है। वायव्य में ऊँची भूमि धनदायक होती है। उत्तर, ईशान में ऊँची भूमि धन नाशक एवं महाक्लेश कारक होती है।

(३) उत्तर, ईशान, एवं पूर्व में नीची भूमि धन वृद्धि, पुत्रदायक, विद्या तथा सुख देने वाली होती है, इसके विपरीत अन्य दिशाओं में नीची भूमि क्लेशकारक होती है।

(४) पूर्व-आग्नेय के मध्य ऊँची और पश्चिम-वायव्य के मध्य नीची भूमि **"पितामहः वास्तु"** कहलाती है। यह सुख देने वाली होती है। दक्षिण-आग्नेय के मध्य ऊँची और उत्तर वायव्य के मध्य नीची भूमि **"सुपथ वास्तु"** कहलाती है, यह सब कार्यों में शुभ होती है। उत्तर-ईशान के मध्य नीची, और नैऋत्य-दक्षिण के मध्य ऊँची भूमि **"दीर्घायु वास्तु"** कहलाती है, यह कुल की वृद्धि करती है। इसे ही **"पुण्यक वास्तु"** कहते हैं। यह द्विजों के लिये शुभ होती है। पूर्व-आग्नेय के मध्य नीची और वायव्य व पश्चिम के मध्य ऊँची भूमि **"अपथ वास्तु"** कहलाती है। यह वैर तथा कलह कराने वाली होती है। दक्षिण-नैर्ऋत्य के मध्य नीची और उत्तर-ईशान के मध्य ऊँची भूमि **"अर्गल वास्तु"** कहलाती है। यह पापों का नाश करने वाली होती है। पूर्व-ईशान के मध्य ऊँची और पश्चिम-नैर्ऋत्य के मध्य नीची भूमि **"श्मशान वास्तु"** कहलाती है। यह कुल का नाश करने वाली होती है। ईशान, आग्नेय व पश्चिम में ऊँची और नैर्ऋत्य में नीची भूमि

१. वाल्मीकि., किष्किंधा. २०.१२

"अश्वमुख वास्तु" कहलाती है। यह दरिद्रता देने वाली होती है। नैर्ऋत्य, आग्नेय व ईशान में ऊँची तथा पूर्व व वायव्य में नीची भूमि **"ब्रह्मघ्न वास्तु"** कहलाती है। यह निवास करने योग्य नहीं है। आग्नेय में ऊँची और नैर्ऋत्य, ईशान तथा वायव्य में नीची भूमि **"स्थावर वास्तु"** कहलाती है। यह भूमि शुभ होती है। नैऋत्य में ऊँची और आग्नेय, वायव्य व ईशान में नीची भूमि **"स्थपिण्डल वास्तु"** कहलाती है। यह शुभ होती है। ईशान में ऊँची और वायव्य, आग्नेय व नैर्ऋत्य में नीची भूमि **"शाण्डुल वास्तु"** कहलाती है। यह भूमि अशुभ होती है। दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्य की ओर ऊँची भूमि **"गजपृष्ठा"** कहलाती है। यह धन, आयु और वंश की वृद्धि करने वाली होती है। मध्य में ऊँची तथा चारों ओर नीची भूमि **"कूर्मपृष्ठा"** कहलाती है। यह उत्साह, धन-धान्य तथा सुख देने वाली होती है। पूर्व, आग्नेय तथा ईशान में ऊँची और पश्चिम में नीची भूमि **"दैत्यपृष्ठा"** कहलाती है, यह धन, पुत्र, पशु आदि की हानि करने वाली तथा प्रेत-आदि का से भय उत्पन्न करने वाली होती है। पूर्व-पश्चिम की और लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण में ऊँची भूमि **"नागपृष्ठा"** कहलाती है। यह उच्चाटन, मृत्युभय, स्त्री पुत्रादि की हानि, शत्रुवृद्धि, मानहानि तथा धनहानि करने वाली होती है।

भूमि-आकार–निवास के लिये वर्गाकार एवं आयताकार अत्यन्त शुभ होता है। वृत्ताकार भूखण्ड वाणिज्यादि कार्यों के लिए श्रेष्ठ होती है। अष्टभुजाकार भूखण्ड देव-निर्माण के लिये श्रेष्ठ है। इसे अतिरिक्त सभी प्रकार के भूखण्ड निवास के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं।

शल्य ज्ञान– अक्षरों के उच्चारण द्वारा शल्य ज्ञान बृहद्रवास्तुमाला आदिग्रन्थों में बताया गया है। इसके अतरिक्त पूर्वज्ञों एवं परम्परा से प्राप्त अनुभूत विधि का उल्लेख मैं यहाँ कर रहा हूँ।

(क) अप्रत्यासित उगे हुये पुराने वेरवृक्ष के नीचे शल्य होती है। पुरानी बाँस की कोठ के नीचे शल्य रहती है।

(ख) अहिबल चक्र के द्वारा शल्य की जानकारी होती है।

(ग) प्रश्न लग्न से चतुर्थेश ६, ८, १२ में हो और चतुर्थ भाव में राहु-मंगल शुभ ग्रह से दृष्ट न हों तो शल्य समझना चाहिए है।

भूखण्ड का सम्यक् विचार कर, शुद्धीकरण के उपरान्त भवन निर्माण करने पर धन-धान्य, पुत्र-पौत्र और नाना प्रकार की समृद्धि मिलती है।

वास्तुशास्त्र में दिक्शोधन

प. कल्याणदत्त शर्मा

वास्तुशस्त्र का वर्णन वैदिकवाङ्मय, शैवागम, मत्स्य पुराण[1] अग्निपुराण[2] विष्णुधमोत्तर[3] एवं, गरुड़पुराण आदि में उपलब्ध होता है। ११वीं शताब्दी में धारा नगर के नृपति भोज विरचित समराङ्गण सूत्रधार में वास्तुशास्त्र का विस्तार से वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण में वास्तुशास्त्रज्ञों के नामों का उल्लेख भी मिलता हैं। विश्वकर्मा प्रकाश में गर्ग, पाराशर विश्वकर्मा, तथा बृहद्रथ वास्तुशास्त्र के विशेषज्ञ माने गये हैं। कामिकागम कारणागम नामक शैवागम के ग्रन्थों में भी वास्तु शास्त्र का वर्णन पर्याप्त रूप में मिलता है। आदि कवि वाल्मीकी ने रामायण में ५० से ५३ सर्ग तक इस विषय की मनोहारी चर्चा की है। नाट्यशास्त्र के प्रवर्त्तक भरतमुनि ने भी अपने स्वरचित नाट्यशास्त्र में वास्तुशास्त्र के सन्दर्भ में अपने विचार प्रगट किये हैं। प्राचीन और अर्वाचीन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विश्वकर्मा प्रकाश, मयमत्तम्, बृहत्संहिता, समराङ्गणसूत्रधार, वास्तुराजबल्लभ, वास्तुरत्नाकर, वास्तुसार, ज्योतिर्निबन्ध, मुहूर्तचितामणि, बृहद्वास्तुमाला आदि ग्रन्थ वास्तुशास्त्र की विस्तृत चर्चा करते हैं। वास्तुशास्त्र की व्युत्पत्ति वस् धातु से है जिसका अर्थ बसना (निवास करना) है। यथा– **बसन्त्यस्मिनिति वासः**। भवन, दुर्ग, प्रासाद, गृह , मठ, मन्दिर नगरादि जिनमें मनुष्य निवास करते हैं वे सब वास्तु कहलाते हैं। वास्तुकला का विषय गृहादि का निर्माण करना है।

वास्तु के वैदिक देवता वास्तोष्पति हैं, ऋग्वेद के २ सूक्तों में वास्तु तथा भवन पर शासनकर्ता वास्तोष्पति से कल्याण की कामना के लिये प्रार्थना की गई है। जो इस प्रकार है **“ॐ वास्तोष्पते प्रतिज्ञानोह्यस्मान्स्वानेषोऽअनमीनोभवानः। यत्वेमहे प्रति तन्नोजुषस्वशन्नोभवद्विपदे शं चतुष्पदे”** तपः पूत ऋषि, मुनि तथा महर्षियों ने यत्पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे के सिद्धान्तानुसार समस्त ब्रह्माण्ड को जो व्यष्टि और समष्टि रूप में है। जीव और ब्रह्माण्ड के पारस्परिक सम्बन्ध से घटने वाले घटना क्रम का व्यापक अध्ययन पञ्चमहाभूतों के माध्यम से ही किया जा सकता है। इन पञ्च महाभूतों से ही समस्त प्राणी और जीवों की रचना हुई है। अतः समस्त प्राणियों के बसने (रहने) के योग्य स्थान में भी इन पञ्च महाभूतों का विचार परमावश्यक है। अतः वास्तुशास्त्र में इन पञ्चतत्वों का

१. मत्स्यपुराण अध्याय – ८
२. अग्निपुराण अध्याय – ३
३. विष्णुधर्मोर अध्याय – ४३

सुगमता से बसने योग्य गृह में पूर्णतः ध्यान रखते हुए भवन के निर्माण की प्रक्रिया का मार्गदर्शन किया है। सर्वप्रथम वास करने की दृष्टि से प्रान्त में, नगर में, ग्राम में, कॉलोनियों में निर्मायोपयुक्त भूमि का विचार किया जाता है। प्राणी के शरीर की रचना में पृथ्वी तत्व की अधिकता है तत्पश्चात् जल, तेज, वायु और आकाश तत्व का समावेश होता है।

व्यक्ति जिस नगर व ग्रामादि में बसना चाहता है उस नगर व ग्राम की राशि तथा उस व्यक्ति की राशि का अन्तर २, ५, ९, १०, ११ हो तो उस नगरादि में बसने में व्यक्ति सुखी व सम्पन्न रहता है काकिणी विचार से **स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्। अष्टभिश्च हरेत्भागं योधिको सः ऋणी भवेत्** इस नियमानुसार विचार करने पर कौशलकिशोर नाम के व्यक्ति को जयपुर शहर में बसने का विचार कवर्गादि वर्णानुसार किया है यथा– कौशल का वर्ग २, जयपुर का वर्ग ३ है २ वर्ग का दूना ४ हुआ इसमें ३ का योग करने पर ७ प्राप्त हुआ। ३ का दूना ६ इसमें २ का योग करने पर ८ प्राप्त हुआ दोनों जगह ८ का भाग देने पर शेष ७ और शूंन्य रहा इस प्रक्रिया में शून्य का मान भाजक तुल्य माना जाता है अतः कौशल का ७ तथा जयपुर का शेषाङ्क ८ है अतः एव **"योधिको सः ऋणी भवेत्"** से जयपुर कौशल का ऋणी होने से कौशल को जयपुर में बसने से सुख व सम्पन्नता प्राप्त होगी। यहाँ बसने वाले व्यक्ति के बोलते नाम की राशि से विचार करना चाहिये जन्म राशि से नहीं। **देशे ग्रामे गृहे युद्धे** इत्यादि नियमानुसार भवन सम्बन्धी कार्य में प्रसिद्ध नाम से ही विचार करना चाहिये। जैसे बसने वाले व्यक्ति का बोलता नाम जगदीश है वह कन्नोज में बसना चाहता है। जगदीश का वर्ग ३, कन्नोज का वर्ग २ है। ३ का दूना ६ इसमें २ का योग करने पर ८, इसमें ८ का भाग देने पर ० शेष भाजक ८ के बराबर शेष बचा। अन्यत्र २ का दूना ४ में ३ का योग करने पर ७ में ८ का भाग देने पर शेष ७ बचा, संख्या में जगदीश का शेष ८ तथा कन्नौज का ७ होने से कन्नोज का जगदीश ऋणी होने के कारण कन्नोज नगर में जगदीश का बसना उचित नहीं है। कवर्गादि के विचार में एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये, बसने वाले व्यक्ति और नगर के वर्गों का अन्तर ५ नहीं होना चहिये। चाहे काकिणी के आधार पर व्यक्ति को उस नगर में बसना लाभप्रद ही क्यों न हो। **स्ववर्गात्पञ्चमः शत्रुः** इस सिद्धान्तानुसार अपने से ५वां वर्ग शत्रु होता है। जैसे अमरनाथ को दुबई शहर व दलिया नगर का वर्ग ५वां पड़ता है। अतः अमरनाथ को वहां कदापि नहीं बसना चाहिये। यहाँ काकिणी के अनुसार गणना से भी नहीं बसने का संकते मिलता है। काकिणी के नियमानुसार कौशल कुमार का भरतपुर में बसना शुभ है, लेकिन कवर्गादि के अनुसार कौशल का विडाल (मार्जार) और भरतपुर का मूषक वर्ग परस्पर शत्रु होने के कारण भरतपुर में कौशल को काकिणी शुद्ध होते हुये भी वसना शुभ नहीं है।

भूमि शोधन–

बसने वाले व्यक्ति के १ हस्त तुल्य वर्गाकार गर्त्त को भूमि के मध्य में खोदने पर मिट्टी पुनः उसी गर्त्त में को भरने पर यदि मिट्टी कम पड़े तो अशुभ यदि शेष बचे तो शुभ भूमि है ऐसा मानना चाहिये। उस वर्गाकार गर्त्त में सायंकाल पानी भरकर दूसरे दिन प्रातः जाकर देखने पर गर्त्त में जल रहना शुभ, कीचड़ या गर्त्त में दरार पड़ना अशुभ भूमि का लक्षण होता है। मृत्तिका की गन्ध सुगन्धित होना शुभ माना गया है। सायंकाल गर्त्त को जल से प्रपूरित करते समय सफेद, लाल, पीला, काला पुष्प जल में डालकर प्रातः जाकर देखने पर जिस वर्ण का पुष्प कुम्हला या डुबा नहीं हो उस वर्ण के व्यक्ति का वहाँ बसना शुभ माना गया है। सफेद से ब्राह्मण वर्ण, रक्त से क्षत्रिय, पीत से वैश्य तथा कृष्ण से शूद्र वर्ण के व्यक्ति का बसना शुभ माना गया है।

शल्य शोधन–

शल्य शोधनार्थ प्रश्नकर्त्ता को किसी पुष्प का नाम लेना चाहिये उसमें पुष्प का प्रथमाक्षर व, क, च, ल, ए, ह, श, प, य ये अक्षर पूर्वादि चारों दिशाओं और कोणों के हैं य अक्षर भूमि के मध्य का है जैसे प्रश्नकर्ता ने कमल पुष्प का नाम लिया तो क अक्षर अग्निकोण का द्योतक हुआ अतः शल्य भूमि के अग्नि कोण में है ऐसा समझना चाहिए। इसी प्रकार यदि प्रथमाक्षर चमेली पुष्प का च हो तो भूमि के दक्षिण भाग में शल्य होगा। अक्षरों के आधार पर शल्य की दिशा ज्ञात कर भवन में निवास करने वाले व्यक्ति के हाथ से साढ़े तीन हाथ तक भूमि की खुदाई करके नर, खर, बानर, कुत्ता, बालक, की हड्डी प्राप्त होती है तो उसे हटाकर भवन निर्माण करना चाहिये। उपरोक्त अक्षरों से भिन्न अक्षर वाले पुष्प के नाम का प्रथमाक्षर होने पर भूमि में शल्य नहीं होगा ऐसा शास्त्रकारों का वचन है। अतः ३.५ हाथ से अधिक भूमि की खुदाई की प्रक्रिया नहीं करनी चाहिये क्यों कि ३.५ हाथ के नीचे शल्य हो तो उसका विचार नहीं करना चाहिये। वह शल्य हानिकारक नहीं होता। शल्य शब्द का अर्थ हड्डी होता है लेकिन हड्डी के अतिरिक्त खुदाई करने पर केश, चर्म, कोयला, तुष काष्ठ, भस्म आदि निकले तो उसको भी शल्य तुल्य मानकर ही भूमि से निकाल देना चाहिये। शल्योद्धार के पूर्व ही भूमि में दिक्शोधन कर दिशा विदिशाओं की जानकारी कर लेनी चाहिये।

दिक्शोधन–

आधुनिक समय में कम्पास (कुतुबनुमा) यन्त्र द्वारा दिक्शोधन कर लेते हैं किन्तु इस यन्त्र द्वारा कभी-कभी ठीक उत्तर बिन्दु का पता नहीं लगता है। इसमें भूमि के ऊपर से आने वाले हाई

पॉवर के बिजली के तार चुम्बक जो यन्त्र में लगा होता है उसको स्थिर नहीं होने देते और कभी-कभी किसी भूमि के अन्दर कुछ ऐसी वस्तुएं होती हैं कि वे भी चुम्बक की क्रियाशीलता में बाधक हो जाती हैं। प्राचीन काल में १२ अंगुल माप का शंकु सुदृढ़ कर शंकु तुल्य त्रिज्या से वृत्त बनाकर शंकु की छाया को देखने पर जब शंकु की छाया वृत्त के अन्दर प्रवेश करती है वहाँ प्रवेश स्थान को चिह्नित कर मध्याह्नोत्तर जब शंकु की छाया वृत्त के बाहर जहाँ से निकलती है उस स्थान को चिन्हित कर प्रवेश और निर्गम बिन्दु की पूर्णज्या की रेखा खिंचते हैं वह रेखा कुछ तिरछापन लिये होती है पुनः उस पर मत्स्य बनाकर केन्द्र बिन्दु का अन्वेषण उत्तराग्रा रेखा खिंचने पर याम्योत्तरा रेखा ज्ञात होती है यह प्रक्रिया बहुत जटिल पड़ती है। दिक्शोधन प्रक्रिया की नवनिर्माण, यज्ञकुण्ड निर्माण और ज्योतिर्विज्ञान वेधशाला निर्माण में परमावश्यकता होती है, जिसमें वेधशाला में सूर्यघटिका के निर्माण हेतु कम्पास द्वारा और उक्त प्राचीन पद्धति के आधार पर किया गया दिक्शोधन प्रायः अशुद्ध हो जाता है। इसमें सूच्याग्र तुल्य अन्तर भी ४, ५ मीटर की दूरी पर इञ्चात्मक मान में बढ़ जाने से सूर्यघटिका का निर्माण अशुद्ध हो जाता है। अतः आधुनिक समय में यांन्त्रिक घटिका (घड़ी) प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के पास उपलब्ध होती है। इस यान्त्रिक घटिका का सही समय रेडियो से ज्ञात कर दिक्शोधन की प्रक्रिया याम्योत्तरा रेखा का निर्णय करना चाहिए। धूपघड़ी के १२ बजे आकाश में भगवान भास्कर ठीक याम्योत्तर रेखा पर होते हैं। यह अकाट्य सिद्धान्त है। समतल भूमि पर सुदृढ़ यथेच्छ माप का (शंकु) स्थापित कर लेना चाहिये। उसकी छाया स्पष्ट मध्यान्ह काल (धूपघड़ी के १२ बजे) में सरल रेखाकार छाया याम्योत्तरा रूपा होती है। इसके विपरीत दिशा में लम्बरूपात्मक रेखा करने पर वह रेखा ठीक पूर्वापरा होगी। धूप घड़ी सर्वत्र उपलब्ध नहीं होती है अतः धूपघड़ी के १२ बजे का ज्ञान कैसे हो यह समस्या उपस्थित होती है। इस समस्या का निराकरण स्थानीय स्पष्टान्तर काल द्वारा हो जाता है। स्पष्टान्तर ज्ञात करने की युक्ति प्रत्येक प्रान्तीय पञ्चाङ्गों में मध्यमान्तर और बेलान्तर की सारणियां उपलब्ध हो जाती है जिससे अभीष्ट दिन का स्पष्टान्तर का मिनटात्मक काल ज्ञात कर विपरीत संस्कार यान्त्रिक घड़ी के १२ बजे में कर देने पर स्पष्ट मध्याह्नकाल अर्थात् धूपघड़ी के १२ बजे का समय ज्ञात हो जाता है। स्पष्टान्तर ऋणात्मक होने से जोड़ने पर और धनात्मक होने से १२ बजे में घटाने पर जो समय आपकी घड़ी में हो उस समय शंकु की छाया के मध्य भाग में की गई सरल रेखा सही याम्योतरा रेखा होती है। इससे वास्तविक दिक्शोधन हो जाता है।

भवन निर्माण में इस प्रकार भूमि का दिक्शोधन कर याम्योत्तरा तथा पूर्वापरा रेखा से समान्तर दूरी पर निर्मित रेखायें सभी याम्योत्तरा व पूर्वापरा रेखा बन जाती हैं।

भूमि का ढलान (झुकाव)–

भूमि का झुकाव पूर्व, उत्तर व ईशान कोण की तरफ शुभप्रद होता है। नागादि वीथियों के अनुसार नैऋत्य कोण ऊँचा, ईशान नीचा, पश्चिम ऊँचा, पूर्व नीचा, दक्षिण ऊँचा एवं उत्तर नीचा होना चाहिये। वास्तु के अनुसर दक्षिण-पश्चिम दिशा और वायव्य नैऋत्य कोण ऊँचा उठा हुआ शुभ माना गया है, नैऋत्यकोण की ऊँचाई सब से ऊँची होना शुभ होती है। कूर्मपृष्ठ और गजपृष्ठ भूमि कल्याणकारक होती है। मध्य में ऊँची और चारों तरफ नीची भूमि कूर्मपृष्ठा होती है। राजा के महल (प्रसाद), धूर्त पाखण्डी के घर के, चौराहे, चैत्य, ग्राम के प्रधान वृक्ष, गौ मन्दिर, के ठीक सन्मुख भवन निर्माण नहीं करना चाहिये। ज्यौतिषशास्त्र में चतुर्थभाव से भवन का विचार किया जाता है। जब कुण्डली में चतुर्थ भाव, चतुर्थेश, चन्द्र और शुक्र की स्थिति उत्तम होने पर शुभ; नीच, अस्त, पापयुत व ६, ८, १२ स्थानों में चतुर्थेश की स्थिति अशुभ होती है। इनका केन्द्र त्रिकोण में स्थित होना; उच्च, स्वराशि, मित्र राशि का होना शुभ तथा ग्रह से युत दृष्ट होना लाभप्रद होता है। सप्तम भाव चतुर्थ से चतुर्थ होने के कारण सप्तम भाव से भी गृह का विचार करना चाहिये। आयताकार और वर्गाकार भूमि में भवन निर्माण करना अति श्रेष्ठ माना गया है। भवन के नाम की राशि और गृहस्वामी के बोलते नाम की राशि में षडाष्टक हानिप्रद तथा द्विर्द्वादशव नवम पञ्चम होना भी श्रेष्ठकर नहीं होता है।

मार्ग निर्णय–

भवन के चारों ओर मार्ग होना अति उत्तम होता है, पूर्व-पश्चिम दिशा में मार्ग होना सुख समृद्धिकारक माना गया है। पश्चिम में मार्ग हो तो व्यापारिक भवन के लिए लाभ प्रद होता है। यदि उत्तर दिशा में मार्ग हो और मुख्य द्वार भी उत्तर दिशा में ही हो तो धनधान्यवर्द्धक होता है। भवन का उत्तरी भाग अधिक खुला एवं स्वच्छ होना तथा ढलान भी भवन का उत्तर दिशा में होना शुभ होता हैं। वास्तुशास्त्र में प्रतिपादित प्रकार से गृहस्वामी के अनुकूल क्षेत्रफल निकालकर पिण्डानयन का भी भवन निर्माण में उपयोग किया जाता है। गृह षोडशादि नामों में धन, धान्य, जय, विजय संज्ञक भवन जिनकी आकृति का वास्तुशास्त्र में विवेचन है उनका निर्माण करना शुभफलप्रद शेष अन्य नाम संज्ञक भवनों का निर्माण अशुभ माना गया है। गृह के इन्द्र, यम, राजा ये ३ अंश माने गये हैं इनका वास्तुशास्त्रोक्त निर्णय करके यम अंश का त्याग करना चाहिये। ध्वजादि आयों में ध्वज, वृष, गज, आय के स्वरूप के गृह शुभ फलप्रद अर्थात् धन-धान्यादि वृद्धिकारक माने गये हैं, जबकि धूम्र आय का भवन स्वर्णकार, लोहार, पाकशाला बिजली से सम्बन्धित सभी कार्य, शस्त्र निर्माण, सुरक्षा अकादमी आदि के लिए शुभप्रद होते है। सिंह आय का भवन खेलकूद, रंगमञ्च,

सिनेमा व नाट्य शाला के साथ ही सुरक्षाबल के भवन के लिए भी शुभ माना जाता है। श्वान, खर, ध्वांक्ष, आय के भवन नीच कर्मकर्त्ताओं के लिये शुभफलकारक माने गये हैं।

खात दिशा निर्णय–

भवन निर्माण के लिये राहुमुख का ज्ञान अत्यावश्यक है। **देवालये गेहविधौजलाशये मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे** के अनुसार भवन निर्माण में सिंह, कन्या व तुला राशि के सूर्य में राहुमुख ईशान कोण में और खातदिशा अग्नि कोण में, वृश्चिक धनु मकर राशि के सूर्य में राहु मुख वायव्य में और खात दिशा ईशान में, कुम्भ मीन मेष राशि के सूर्य में राहुमुख नैऋत्य कोण में और खात दिशा वायव्य में होती है इसी प्रकार वृष–निथुन–कर्क के सूर्य में राहु मुख अग्निकोण में तथा खात की दिशा नैऋत्यकोण में होती है।

मुख्य गृह द्वार निर्णय–

गृहस्वामी के प्रसिद्ध नाम की राशि कर्क, वृश्चिक, मीन हो तो मुख्य द्वार पूर्व में, वृष, कन्या, मकर हो तो दक्षिण में, मेष सिंह धनु हो तो उत्तर दिशा में, मिथुन तुला कुम्भ हो तो पश्चिम दिशा में मुख्य द्वार का निर्माण करना चाहिये। चारों दिशाओं की दीवार के बराबर के ९ भाग कर पूर्व एवं दक्षिण में दाहिनी ओर से ५ भाग छोड़कर छटें एवं सातवें भाग पर पश्चिम में दाहिने से चार भाग छोडकर पाँचवें वछटे भाग पर तथा उत्तर में दाहिने में चार भाग छोड़कर पाँचवे, छटे एवं सातवें भाग में द्वार स्थापित करना चाहिये। दाहिना भाग वह कहलाता है जो भवन से बाहर निकलने पर दहिना हाथ की तरफ हो। जैसे मुख्य द्वार उत्तर दिशा में स्थापित करना है तो उत्तर दिशा की दीवार के नौ भाग करके भवन से बाहर निकलने पर दाहिना हाथ जिधर पड़ता हो दीवार का वह भाग दाहिना कहलायेगा। उस दाहिने भाग से दीवार के ४ भाग छोड़कर पॉचवे छटे एवं सातवें भाग पर द्वार स्थापित करना चाहिये। गृहारम्भ मुहूर्त के दिन भूमि शयन का भी विचार कर लेना चाहिये। मुहूर्त के दिन जो नक्षत्र है उसकी संख्या सूर्य नक्षत्र से ५, ७, ९, १२, १९, २६ नहीं होनी चाहिये; इन नक्षत्र संख्याओं में भूमिशयन होता है। यदि मुहूर्त का नक्षत्र इन संख्याओं में पडता हो तो क्रमशः ६, ११, ७, ६, २, १० घटी नक्षत्र के प्रारम्भ समय को छोड़कर मुहूर्त करना चाहिये। भवन निर्माण में ईशान कोण में जल भण्डार (बोरिंग), पूजा और अध्ययन कक्ष, पूर्व में स्नान, अतिथि निवास व बरामदा, आग्नेय में पाकशाला, बिजली का मैन स्विच, फ्रीज, गैस चूल्हा, दक्षिण में स्टोर, भारी–भरकम सामान, शयन और शौचालय, नैऋत्य में शयन कक्ष सीड़ियां और छत पर पानी की टंकी, पश्चिम में भोजन कक्ष पानी की टंकी वायव्य में अन्नभण्डार अतिथिकक्ष, उत्तर में बैंक के चेक, ड्राफ्ट, द्रव्य और समस्त द्रव्य सम्बन्धी सामग्री कक्ष का निर्माण करना चाहिये।

वर्ग काकिणी एवं पिण्डसाधन

प्रो. ओंकारनाथ चतुर्वेदी

वास्तुशास्त्र में वर्ग काकिणी एवं पिण्डसाधन के विषय प्रवेश करने के पूर्व यहाँ पर यह स्मरण करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है, कि जातक के जन्म नक्षत्र एवं उसके चरण के भेद से जन्म नाम रखा जाता है किन्तु प्रायः यह देखा गया है, कि जन्म नाम कुछ और होता है, तथा बोलने एवं लिखित नाम (जन्म नाम से भिन्न नाम) का ही प्रयोग जातक जीवन भर करता है। इस आधार पर जन्म राशि तथा नाम राशि भिन्न हो सकती है।

यद्यपि जातक के संस्कारादि मुहुर्तों के निर्धारण में तथा अन्य शुभाशुभ फलादेश कथन में जन्म की राशि एवं जन्म पत्री का ही विशेष महत्व ज्योतिषशास्त्र में प्रतिपादित किया गया है। तथापि वास्तुशास्त्र में काकिणी विचार करते समय जन्म की अपेक्षा नाम की राशि द्वारा ही विचार करने का विधान है। जैसा कि कहा भी है–**देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिषु दाने।** और भी–**काकिण्यावर्ग-शुद्धौ च द्यूते वादे स्वरोदये। मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता।।** काकिणी, वर्गशुद्धि (शत्रु वर्ग विचार), द्यूतक्रीडा (जुआ खेलने में जीत हार का विचार), वाद-विवाद (मुकदमा आदि में), स्वरोदय (यात्रादि में स्वर विचार), मन्त्र दीक्षा ग्रहण करने में तथा पुनर्विवाह करने में जन्मराशि की अपेक्षा नामराशि की प्रधानता होती है।

वर्ग विचार–वास्तुशास्त्र के अनुसार किस नाम वाले व्यक्ति को किस दिशा या किस ग्राम-नगर अथवा मौहल्ले में अपना निवास बनाना चाहिए अर्थात् नाम के अद्याक्षर से कौन आद्याक्षर नाम का ग्राम-नगर-गली अथवा मौहल्ला शुभ या अशुभ होगा इसका विचार वर्ग-काकिणी द्वारा किया जाता है। अतः सर्वप्रथम वर्ग, उनके स्वामी एवं दिशाओं का परिचय कराना आवश्यक प्रतीत होता है। यथा–

१. अ वर्ग (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ)

२. क वर्ग (क, ख, ग, घ, ङ)

३. च वर्ग (च, छ, ज, झ, ञ)

४. ट वर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण)

५. त वर्ग (त, थ, द, ध, न)

६. प वर्ग (प, फ, ब, भ, म)

७. य वर्ग (य, र, ल, व)

८. श वर्ग (श, ष, स, ह)

पूर्वादिक्रम से पूर्वोक्त आठ वर्गों की आठ दिशाऐं तथा क्रम से ही गरुड़, मार्जार, सिंह, श्वान, सप्र, मूषक, गज, तथा शशक इनके स्वामी होते हैं। अपने वर्ग से पञ्चम वर्ग वाले स्वामी आपस में शत्रु होते हैं। शत्रु दिशा के वर्ग में गृह नहीं बनाना चाहिए। शत्रु दिशा वाले ग्राम या नगर में भी गृह निर्माण वास्तुसम्मत नहीं बतलाया गया है।

स्पष्टार्थचक्र

वर्ग सं.	अ वर्ग	क वर्ग	च वर्ग	ट वर्ग	त वर्ग	प वर्ग	य वर्ग	श वर्ग
वर्ग स्वामी	गरुड़	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	गज	शशक
वर्ग दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
शत्रु योनि	सर्प	मूषक	गज	शशक	गरुड़	मार्जार	सिंह	श्वान
शत्रु दिशा	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य

अपने वर्ग से शत्रु दिशा (अपनी दिशा के सम्मुखदिशा) में, तथा अपने शत्रु वर्ग वाले ग्राम-नगर-गली या मौहल्ले के आद्याक्षर नाम वाले स्थानों में निवास करना शुभफलदायक नहीं होता है शेष वर्ग वाले अक्षरों में से ग्राम-नगर मौहल्ला आदि के आद्याक्षर वाले स्थानों पर निवास स्थान बनाना शुभ माना गया है। प्रमाणस्वरूप नारदादि ऋषियों के वचन उद्धृत हैं–

आकारादिषु वर्गेषु दिक्षु पूर्वादितः क्रमात्।
गृध्रमार्जार-सिंह-श्वसर्पाखुमृग-शशकाः।।

दिग्वर्गाणामियं योनिः स्ववर्गात् पञ्चमो रिपुः।
रिपुवर्गं परित्यज्य शेषवर्गाः शुभप्रदाः।।[१]

वर्गकाकिणी–

आठ वर्गों की शुभ अथवा अशुभ गणना करने को वर्ग काकिणी कहा जाता है। "शब्द कल्पद्रुम" कोषकार ने काकिणी शब्द के विश्लेषण में लिखा है–**कक-लौल्ये धातु से ककते-गणना काले चञ्चली भवतीति। कक+णिनि+ङीप्।** यहाँ पर वर्गों की शुभाशुभ गणना करने में वर्ग-काकिणी शब्द का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है।

वास्तुशास्त्र में गृहस्वामी के नाम के प्रथम अक्षर (वर्ग) के आधार पर नाम, नक्षत्र एवं राशि का निर्णय किया जाता है। वास्तु प्रबन्ध में भी इसका उल्लेख मिलता है। **"कर्तुर्नामाक्षरेणैव ऋक्षज्ञानञ्चकारयेत्"** वास्तुशास्त्रीय अवकहडाचक्र भी ज्योतिष के अवकहडाचक्र से भिन्न ग्रहण किया गया है। नक्षत्र के अनुसार राशिज्ञान निम्न प्रकार से बतलाया गया है। यथा– **अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मद्यात्रयम्। मूलादित्रितयं चापेशेषभेषु द्वयं द्वयम्"**[२]

अर्थात् भसन्धि (गण्डान्त) की मेष, सिंह तथा धनु राशियों के अन्तर्गत तीन-तीन नक्षत्रों की राशियाँ प्रकल्पित हैं तथा शेष राशियों में दो-दो नक्षत्र ग्रहण किये गये हैं। इसी के अनुसार गृहस्वामी के नामाद्याक्षर के अनुसार नक्षत्र एवं राशि ग्रहण करना अभीष्ट होता है।

काकिणी साधन

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ।।[३]

गृहस्वामी तथा ग्रामादि के नामों के प्रथमाक्षर अपने (गृहस्वामी) वर्ग की संख्या को दो गुना करके दूसरे (ग्रामादि) की संख्या उसमें जोड़कर, योग में आठ का भाग देने पर शेष संख्या तुल्य अपनी (गृहस्वामी की) काकिणी होती है।

इसी प्रकार दूसरे (ग्रामादि) के वर्ग की संख्या को दोगुना करके गृहस्वामी के वर्ग की संख्या जोड़कर आठ से भाग देने पर शेष तुल्य ग्रामादि की काकिणी आती है। **"योऽधिकः स**

---

१. वास्तुसारः पृ. १०
२. मुदूर्त्तचित्तमणि पीमूषधाराटीका १२.१
३. पास्तुसारः पृ. ९

ऋणी भवेत्" का कुछ लोग अर्थ करते हैं, गृह स्वामी तथा ग्रामादि की काकिणी में जिसकी काकिणी अधिक होती है वह ऋणी (दूसरे को लाभकारी) होता है। अन्तिम पद का अर्थ कुछ विद्वान इसके विपरीत करते हैं। उनके मतानुसार जिसकी काकिणी अधिक होती है। वह लाभ कमाने वाला तथा कम काकिणी वाला पक्ष अलाभकारी अर्थात हानि (घाटे) में रहता है। राम दैवज्ञ प्रणीत मुहूर्तचिन्तामणि वास्तुप्रकरण में इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।

स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम्।
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकाः सोऽर्थदः।।[१]

यहाँ पर भी काकिणी निकालने का प्रकार पूर्व की भांति ही है, अन्तिम पद **"यस्याधिकाः सोऽर्थदः"** के अर्थ में विद्वान् एक मत नहीं हैं अर्थात् जिसकी काकिणी अधिक है, वह पक्ष अर्थद (धन देने वाला) अर्थात् घाटे में जाने वाला तथा कम काकिणी वाला पक्ष लाभ में रहता है किन्तु यह पक्ष बहुसम्मत नहीं है। इसका स्पष्टीकरण आगे नारदादि ऋषियों के वाक्य से हो जायेगा। यहाँ अर्थद = उत्तमवर्ग = महाजन = ऋण देने वाला अर्थात् धनी एवं लाभकारी होता है। कम काकिणी वाला पक्ष अर्थगृहीता = ऋण लेने वाला अर्थात् हानि में रहने वाला होता है।

अतः बहुसम्मत पक्ष ही न्यायोचित प्रतीत हो रहा है अर्थात् जिसकी काकिणी अधिक होती है, वही लाभ में रहता है। अतः नाम की काकिणी ग्राम की काकिणी से अधिक होना शुभ है। नारद-वशिष्ठादि मुनियों के वाक्य द्वारा इसकी पुष्टि भी हो जाती है।

साध्यवर्गं पुरः स्थाप्य साधकं पृष्ठतो न्यसेत्।
विभजेदष्टभिः शेषं साधकस्य धनं तथा।।

व्यत्ययेनागतं शेषं साधकस्य ऋणं स्मृतम्।
धनाधिकं स्वल्पमृणं सर्वसम्पत्प्रदं नृणाम्।।[२]

साध्य (विचारणीय ग्रामादि) की वर्ग संख्या से आगे लिखकर साधक (निवासकर्ता) व्यक्ति की वर्ग संख्या उसके पीछे (बाँयी तरफ) रखने से (दो अंकों के द्वारा) जो संख्या निर्मित हो, उसमें आठ का भाग देने से जो शेष बचे वह साधक (निवासकर्ता) का धन होता है। साध्य साधक की वर्ग संख्याओं को व्यत्यय अर्थात् उल्टा रखने से जो संख्या बने, उसमें आठ का भाग देने पर जो

१. मु. चि. वास्तु. प्र. श्लो. - १
२. सं. शि. २०-२१

शेष बचे वह साधक का ऋण सिद्ध होता है। इस प्रकार धन की संख्या अधिक एवं ऋण की संख्या कम होने पर ही निवासकर्ता को ग्रामादि लाभदायक शुभफलकारी होता है।

उदाहरण—विजय नामक व्यक्ति को महरौली नामक उपनगर में निवास करना कैसा रहेगा? साध्य महरौली की वर्ग संख्या ६ तथा साधक- विजय की वर्ग संख्या ७ है। साध्य वर्ग ६ को आगे रखने तथा साधक वर्ग ७ को पीछे (बांयी तरफ) रखने पर संख्या बनी ७६, इसमें ८ से भाग देने पर ७६÷८ = ल. ९ शेष ४ यह धन हुआ। इसको उल्टा करने पर संख्या ६७ हुई, आठ से भाग देने पर ६७÷८ = ल. ८, शेष ३ यह ऋण सिद्ध हुआ। यहाँ पर धन की संख्या ४ अधिक एवं ऋण की संख्या ३ कम है। अतः विजय नामक व्यक्ति को महरौली उपनगर में रहना लाभदायक एवं शुभ फलकारी रहेगा।

मुहूर्त चिन्तामणि तथा अन्य वास्तुशास्त्रियों ने अपने अपने ग्रन्थों में काकिणी साधन के नियम बताये हैं। जिन दो नियमों का पूर्व में उल्लेख किया गया है, जिनके अर्थ में कुछ भ्रांति है, उस भ्रांति का निवारण भी प्रस्तुत उपपत्ति से हो जायगा। पूर्वोक्त नियमों में जिसकी काकिणी अधिक है, वही लाभ में तथा न्यून काकिणी वाला पक्ष हानि में रहता है, यही बहुसम्मत एवं न्यायसंगत पक्ष है। उपपत्ति प्रदर्शित करने के पूर्व यह बतलाना भी उचित होगा कि वर्गों की कुल संख्या ८ (इकाई अंक) में है। इकाई के अंक के बांयी तरफ दूसरी वर्ग संख्या (इकाई) को रखने पर उसका स्थानीयमान दहाई में हो जायगा। अतः आगे दहाई के स्थान पर रखने वाली संख्या को दश से गुणित करके समझाया गया है। प्रथमतः साध्य (ग्रामादि) की वर्ग संख्या को लिखने के बाद साधक (निवासकर्ता) की वर्ग संख्या को बांयी तरफ रखने का सूत्र में उल्लेख है। जैसे साध्य वर्ग सं. ६ उसके बांयी तरफ साधक वर्ग सं. ७ ऊपर उदाहरण में रखी गई है। इसे इस प्रकार जानें— ७६ = १०×७ + ६ (यहाँ पर ७ का मान दश गुणित होकर १०×७=७० हुआ) इसी प्रकार ६७=१०×६+७ (यहाँ पर ६ का मान दश गुणित होकर १०×६=६० हुआ) उपपत्ति में इस प्रकार रखा जायेगा।

१०× साधक वर्ग सं. + साध्य वर्ग सं. ÷ ८ = शेष साधक का धन

तथा १०× साध्य वर्ग सं. ÷ साधक वर्ग सं. ÷ ८ = शेष साधक का ऋण। इसे इस प्रकार भी रख सकते हैं—

[१०× साधक वर्ग सं. + साध्य वर्ग सं.] ÷ ८ = शेष साधक का धन

तथा [१०×साध्य वर्ग सं. + साधक वर्ग सं.] ÷ ८ = शेष साधक का ऋण

दोनों धन, ऋण समीकरणों में ऊपर १० गुणक तथा नीचे ८ हार संख्या होने के कारण १० संख्या में से ८ निकालकर अवशिष्ट २ सं. लिखने पर धन एवं ऋण के समीकरण निम्न रहेंगे–

[२×साधक वर्ग सं. + साध्य वर्ग सं.] ÷ ८ = शेष साधक का धन

तथा [२×साध्य वर्ग सं. + साधक वर्ग सं.] ÷ ८ = शेष साधक का ऋण

इस मुनि प्रणीत सूत्र के द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि साध्य (ग्रामादि) साधक (निवासकर्ता) दोनों में अधिक संख्या में जिसकी काकिणी अधिक होगी वही पक्ष लाभ में रहेगा। इसी सूत्र के अनुसार पूर्वोक्त काकिणी बनाने के जो नियम उद्धृत किये गये हैं, जिनमें अर्थ विपर्यय की भ्रान्ति का उल्लेख किया गया है, उनका निराकरण हो गया और बहुसम्मत एवं शास्त्रसम्मत अर्थ की पुष्टि एवं स्पष्टीकरण प्राप्त हो गया है।

पिण्ड–जिस भूमि पर भवन निर्माण करना अभीष्ट हो, उस भूमि के समस्त माप लम्बाई×चौड़ाई द्वारा प्राप्त क्षेत्रफल को पिण्ड कहा गया है। अन्तर केवल इतना है, कि जिस भूखण्ड को गृहस्वाामी क्रय करता है, उस भूमि की सम्पूर्ण माप को क्षेत्रफल तथा भवन निर्माण के निमित्त नींव खोदकर जो दीवाल बनाई जाती है, उस भाग को त्यागकर चार दीवारी बनाई जाती है, उस भाग को त्यागकर चार दीवारी के अन्दर जो भूखण्ड प्राप्त होता है, जिसमें आन्तरिक सभी उपयोगी कक्षो का निर्माण कराया जाता है, नींव रहित उस भूभाग की माप को पिण्ड शब्द से वास्तुशास्त्र में प्रदर्शित किया गया है। इस विषय में "पिण्ड" शब्द की व्युत्पत्ति शब्द कल्प द्रुम में इस प्रकार प्राप्त होती है। पिण्डं-पिण्डते संहतो भवतीति अर्थात् पिण्ड में समाहित माप की अभिव्यक्ति पिण्ड कहलाती है।

पिड़ि संहतौ धातु से अच् (पीड़ि + अच्) प्रत्यय करके पिण्ड पद का निर्माण होता है। अथवा पिण्ड्यते–राशि क्रियते (कर्मणि घञ् वा) द्वारा पिण्ड शब्द की निष्पत्ति हो सकती है। जिसका अभिप्राय भी लम्बाई चौड़ाई की माप को एक राशि में समाहित करके अभिव्यक्त किया जाता है। वास्तुशास्त्र में पिण्ड शब्द पारिभाषिक रूप से प्रयुक्त होता है। प्रमाणस्वरूप शब्दकल्पद्रुम में पिण्डानयन सम्बन्धी वास्तुशास्त्रीय सूत्र भी उद्धृत किया गया है। वहाँ उल्लेख है–पिण्डपदं = पिण्डस्य संहतस्य पदम् अंकविशेषः अर्थात् लम्बाई चौड़ाई के द्वारा जो भूखण्ड की समाहितराशि अंकात्मक प्राप्त होती है। उस अंक विशेष को ही पिण्ड कहा गया है। उद्धृत सूत्र इस प्रकार है–

रूपाष्टकैर्विनिहतो भवनस्य बन्धः कर्तुः स्वमृक्षमिह युग्मशरैकनिघ्नम्।
एकीकृतं रसनिशाकरयुग्ममुक्तं शेषं ततो भवति पिण्डपदं गृहस्य।।[1]

उक्त सूत्र द्वारा आनीत अंकात्मक राशि को ही गृह का पिण्ड पद बतलाया गया है। सूत्र का समीकरण इस प्रकार बनता है।

[(आय × ८१)] + (नक्षत्र × १५२)] ÷ २१६ = पिण्ड पद

पिण्ड साधन करने के पूर्व संक्षेप में यह बतलाना भी आवश्यक है, कि जिस प्रकार वर-वधू का मेलापक किया जाता है, ठीक उसी प्रकार गृह (घर) तथा गृह स्वामी के नक्षत्र द्वारा भी गुण मिलान किया जाता है। विवाह मेलापक में समान नाड़ी अशुभ मानी जाती है, परन्तु वास्तु मेलापक में एक नाड़ी ही शुभ होती है। गृह मेलापक में गृह एवं गृहस्वामी का एक ही नक्षत्र अशुभ माना गया है। अतः एक नक्षत्र दोनों का ग्रहण नहीं करना चाहिए, नाड़ी एक होना प्रशस्त है।

पिण्ड साधन करने की विधि में इष्ट नक्षत्र एवं इष्ट आय की आवश्यकता होती है। अतः इनके विषय में भी जान लेना आवश्यक है। गृहस्वामी के नामाद्याक्षर से उसका नक्षत्र ज्ञात है। गृह का नक्षत्र स्वेच्छया कोई भी चुन लिया जाता है किन्तु गृह स्वामी के नक्षत्र से मेलापक विधि द्वारा अनुकूल नक्षत्र ही ग्रहण करना चाहिए। शास्त्र में कुल ९ नक्षत्रों में से ही गृह का नक्षत्र गृहस्वामी के अनुकूल चुनने की आज्ञा दी गई है।

आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्य आश्लेषा च मघा भगः।
जलपाऽजपादहिर्बुध्न्य भानीष्टानि गृहे नव।।

गृहपिण्ड बनाने में आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा ये नौ नक्षत्र ही शुभ होते हैं। अतः गृहस्वामी के अनुकूल इनमें से किसी एक नक्षत्र को चुनकर पिण्ड साधन किया जाता है। पिण्ड साधन में दूसरे उपकरण के रूप में आय की आवश्यकता होती है। आय आठ प्रकार की होती है।

ध्वजो धूम्रो हरि श्वौ गोः खररेभो वायसोऽष्टमः।
पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः।।[2]

पूर्वादि दिशाओं के क्रम से आठों दिशाओं में ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, गौ (बैल), गधा, गज, तथा कौआ आय मानी गई है। सभी का फल निम्न है–

१. देखें – पिण्डपद, शब्दकल्पदुमः ३.१४१
२. बृ. दै. र. ८६.७२

ध्वजे बहुधनं प्रोक्तं धूम्रे चैव भ्रमं भवेत्।
सिंहे च विरला लक्ष्मीः श्वाने च कलहं भवेत्।।

धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम्।
गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वस्य शून्यता।।[१]

पिण्डसाधन शब्दकल्पद्रुम में वर्णित सूत्र के अनुसार प्रदर्शित समीकरण द्वारा गृहपिण्ड साधन करना चाहिए। यथा

[(अभीष्ट आय × ८१) + (अभीष्ट नक्षत्र × १५२)] ÷ २१६ = गृहपिण्ड

इसी सूत्र समीकरण के द्वारा विभिन्न विद्वानों एवं गणितज्ञो ने गणितीय कौशल से अनेक सूत्र बनाये हैं। उनके उल्लेख वास्तु शास्त्र के समस्त ग्रन्थों में अनेक रूपों में प्राप्त होते हैं। किन्तु सभी विभिन्न सूत्रों से पिण्ड की माप एक ही प्राप्त होती है। मुहूर्तचिन्तामणि में वर्णित सूत्र इस प्रकार है–

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्योरूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।
युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः।।[२]

इस सूत्र का समीकरण–

[(इष्ट नक्षत्र – १)× १५२) + (इष्ट आय – १)×८१) + १७] ÷ २१६ = गृह पिण्ड

ऊपर के सूत्र तथा मुहूर्तचिन्तामणि के सूत्र में गणितीय कौशल द्वारा साधारण सा अन्तर करके नवीन सूत्र निर्माण किया गया है।

ऊपर के सूत्र में इष्ट आय एवं इष्ट नक्षत्र में से १ घटाकर ८१, तथा १५२ से गुणा करने का उल्लेख है गुणक दोनों सूत्रों में एक ही हैं। हार २१६ दोनों में समान हैं। ऊपर के सूत्र से दूसरे सूत्र में केवल अन्त में १७ संख्या जोड़ी गई है। इस परिवर्तन को इस प्रकार समझा जा सकता है।

गुण्य नक्षत्र तथा आय में १-१ घटाकर समान गुणक (१५२ तथा ८१) से गुणा किया गया है। दोनों में अन्तर १५२ + ८१ = २३३ संख्या का अन्तर आयेगा। जोकि ऊपर के समीकरण से न्यून संख्या आने के कारण २३३ संख्या ऋणात्मक होगी। बाद में दूसरे समीकरण में १७ संख्या जोड़ी गई है। इन संख्याओं को मिलाकर रखने पर - २३३ + १७ = २१६ ऋणात्मक उत्तर आता है। हार २१६ ही है। अतः भाज्य (ऊपर संख्या) २१६ न्यून अथवा अधिक होने से पिण्ड संख्या

१. तत्रैव ८६.८०-८१
२. मु. चि. वास्तु. प्र. ९

में कोई अन्तर नहीं आवेगा। यह केवल गणितीय चमत्कार ही बतलाया गया है। इसी तरह के गणितीय चमत्कारों का प्रदर्शन करके अनेकों मनीषियों ने विविध सूत्रों का प्रणयन पिण्डानयन की प्रक्रिया में किया है। जिज्ञासु जन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों का अवलोकन करके जिज्ञासा शान्त कर सकते हैं। अब उदाहरणस्वरूप मुहूर्तचिन्तामणि के सूत्र द्वारा गणितीय प्रक्रिया से पिण्डसाधन प्रदर्शित किया जाता है।

उदाहरण- सत्यदेव नामक व्यक्ति का नक्षत्र शतभिषा का अभीष्ट नक्षत्र मघा के साथ विवाहमेलापक विधि से मेलापक करने पर मेलापक उत्तम (२५ गुण) मिलता है। अश्विन्यादि क्रम से गृह का अभीष्टनक्षत्र मघा लेने पर संख्या १० आती है। इसी प्रकार आय में इष्ट विषम आय सिंह (संख्या ३) ग्रहण की तो पिण्ड साधन इस प्रकार होगा–

इष्ट नक्षत्र संख्या १० में से १ घटना ने पर शेष ९ को १५२ से गुणा करने पर १३६८ गुणनफल प्राप्त हुआ। इष्ट आय संख्या ३ में १ घटाने पर शेष २ को ८१ से गुणा करने पर १६२ गुणनफल प्राप्त हुआ। दोनों गुणनफलों को जोड़ने पर १५३० संख्या प्राप्त हुई। इसमें सूत्रानुसार १७ जोड़कर २१६ से भाग देने पर प्राप्त संख्या गृह पिण्ड होगी। यथा–

१५३० + १७ = १५४७ ÷ २१६, शेष = पिण्ड यहाँ ३५ शेष (पिण्ड) प्राप्त हुआ।

यहाँ ३५ गृह का पिण्ड बना इसकी माप हस्त में आती है, आज की परिस्थिति व व्यवहार में मीटर व फीट आदि ग्रहण किया जा सकता है। उदाहरण में ३५ संख्या से अधिक यदि गृह निर्माण भूखण्ड की माप हो, तो ३५ (प्राप्त पिण्ड) में २१६ जोड़ते जाने पर अभीष्ट भूखण्ड के अन्तर्गत सुविधानुसार पिण्ड संख्या प्राप्त हो जायेगी।

पिण्ड साधन का महत्व–वास्तुशास्त्र पञ्चमहाभूत एवं प्राकृतिक शक्तियों के समन्वय से गृह-निर्माण करने की प्रक्रिया बतलाता है। ताकि गृह में निवास करने वाले व्यक्तियों को स्वास्थ्य, (निरोगिता) सुविधा, सुरक्षा एवं समृद्धि प्राप्त हो सके। वास्तुशास्त्रीय नियमानुसार गृह-निर्माण करने से गृह चिरस्थायी होता है, निर्माणकर्त्ता की पीढ़ी दर पीढ़ी उस गृह में सुख, सुविधा, सुरक्षा एवं समृद्धि के सहित सुखी जीवन व्यतीत करती है। वास्तुशास्त्रीय नियमों का उल्लंघन कर बनाये जाने वाले गृह में क्लेश, रोग, शोक, दारिद्र्य आदि अनेक आधि-व्याधियों का साम्राज्य हो जाता है। उसमें निवासकर्ता अनेक कष्टानुभूति करते हुए जीवन यापन करता है। वास्तुविरुद्ध निर्मित गृह चिरस्थायी भी नहीं होता। वंश-वृद्धि भी अवरुद्ध हो जाती है। अतः वास्तुशास्त्र में वर्णित पिण्डसाधन करके ही गृहनिर्माण करना सुख-सौभाग्य-समृद्धि एवं वंश वृद्धि के लिये उपयुक्त होता है।

प्राचीन भारतीय शिल्प एवं वास्तुशास्त्र

(पुरातत्त्व के परिपेक्ष्य में)

प्रो. विदुला जायसवाल

भारत के प्राचीन ग्रन्थों व प्रतिमाओं में वास्तुशास्त्र सम्बन्धी प्रतिमान सुनिश्चित किए गए हैं यथा, देव प्रतिमाओं के लक्षण, आकार, आयुध आदि के निर्धारण का संकेत सुप्रमेदागम, वैखानसागम, शिल्परत्न, बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण इत्यादि में बहुतायत हैं (गोपीनाथ रॉओ १९८५)। यह विवरण शिल्पियों के लिए न केवल दिशानिर्देश थे अपितु जनसाधारण में धर्म व सामाजिक मान्यताओं के अनुमोदन के भी स्रोत थे। वास्तु शास्त्रीय मानदण्ड विभिन्न आश्रयों के निमित्त ग्रंथों में उद्धृत हैं, इनमें मन्दिर स्थापत्य के विभिन्न पहलुओं व संरचनात्मक निर्देश शतपथ ब्राह्मण, अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, शुक्रनीतिसार आदि में उल्लेखनीय हैं (कमेरिश, स्टेला १०४६)। ये निर्धारण भी कालान्तर से प्रचलित कई अनुभूतियों व परम्पराओं के निचोड़ प्रतीत होते हैं। शिल्प व स्थापत्य की परम्पराएँ भारत में अवश्य ही काफी पुरातन थीं, जिसका शास्त्रीयकरण गुप्तकाल (चौथी-पांचवीं शताब्दी ई.) की देन माना जा सकता है क्योंकि वैदिक साहित्य तथा समकालीन पुरावशेषों में प्रतिमाओं व इमारतों की संरचना प्रमाणित तो है परन्तु शास्त्र के रूप में इन प्रथाओं की स्थापना अस्पष्ट है। अतः निर्विवाद रूप से गुप्त काल को शिल्प और स्थापत्य के लिए स्वर्णयुग माना जा सकता है। इस काल का विशेष योगदान देवालयों के निर्माण का प्रारम्भ था। देवालय वास्तु संरचना के साथ ही शिल्प प्रयोग के केंद्र के रूप में भी विकसित होने लगे। अतः गुप्तकालीन मन्दिर प्राचीन शिल्प व वास्तुशास्त्र की अमूल्य निध हैं। वास्तु अंगों की शिल्प द्वारा सज्जा व देव कथानको का अंकन, जो भारत के मन्दिरों का अभिन्न व महत्वपूर्ण आयाम हैं, की प्रथा का प्रारम्भ भी इस काल के मन्दिरों से सम्बन्धित हैं। अतः इस लेख का "शिल्प" वास्तुशिल्प के संदर्भ में चर्चित है।

प्राचीन ग्रंथों में शिल्प व स्थापत्य निर्माण की उन विधाओं का विवरण मिलता है जो समाज द्वारा आदर्श मानी गई हैं किन्तु पुरातत्व में ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनका समय-समय पर निरूपण किया गया, या जो वास्तविक रूप से अपनाई गई। साथ ही पुरावशेषों से कई ऐसे पक्ष प्रकाश में आते हैं, जिनका विवरण साहित्य में अनुपलब्ध है या अति संक्षिप्त है। संरचना विधि, निर्धारित स्थल के चयन का उल्लेख तो ग्रंथों में मिलता है (कमेरिश, स्टेला १९४६), परन्तु माध्यम की उपलब्धि या प्रयोग की सीमाएं, संरचनात्मक विस्तार इत्यादि मूर्त अवशेषों से ही प्रकाश में आते हैं। अतः पुरातात्त्विक अन्वेषण द्वारा प्राप्त पुरावशेष विशिष्ट श्रेणी में रखे जा सकते हैं। भीतरी स्थल के अनावृत्त पुरावशेष ऐसे ही विशिष्ट स्रोत हैं।

गुप्तकालीन पूर्व ज्ञात मन्दिर अधिकांशतः पृथ्वी के धरातल पर स्थित हैं। यथा-साँची का मन्दिर, तिगवा का कंकाली देवी मन्दिर, नचना का पार्वती मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर तथा भीतरगांव का मन्दिर। इन मन्दिरों की संरचना या तो पूर्णरूपेण प्रस्तर खण्डों से हुई है या ईष्टों से (माइस्टर, मा, इत्यादि १९८८ : २४-३७)। कानपुर के पास स्थित भीतरगांव मन्दिर ईंटों से निर्मित था जबकि उपर्युक्त अन्य सभी मध्यप्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित प्रस्तर निर्मित संरचनाएं हैं। भीतरी के देवालयों में ईंट और प्रस्तर दोनों ही माध्यमों का समुचित प्रयोग किया गया। साथ ही यहाँ अत्यधिक विस्तृत आकार तथा छोटे आकार के मन्दिरों की संरचनाएं साथ-साथ की गई। भूतल विन्यास एवं अधिष्ठान युक्त भीतरी के मन्दिर गुप्तकाल के स्थापत्य संरचना के विभिन्न चरणों को उजागर करते हैं।

भीतरी नाम का एक छोटा कसबा (आ. २५ ३४ उ. दे. ८३ १८ पू.) उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में स्थित है। सैयदपुर, तहसील के हेडक्वार्टर से 8 कि.मी. दूरी पर स्थित इस स्थल की खोज टिगर ने १८३४ ई० में की। १७३६ ई० में कर्निंघम द्वारा किए गए अन्वेषण से भीतरी का महत्व निर्धारण हुआ; क्योंकि जिस स्तम्भ की खोज टिगर ने की थी उसके निचले भाग में कर्निंघम ने उत्खनन द्वारा स्कन्धगुप्त का एक अभिलेख अनावृत किया, जिसमें एक सारंग या विष्णु मंदिर के निर्माण का उल्लेख है। कालान्तर में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा स्तम्भ के समीपवर्ती स्थान (लाट क्षेत्र) में करवाये गए उत्खनन से इस उल्लेख की पुष्टि हुई। १९६८-६९ एवं १९७३ में प्रो. कृष्ण कुमार सिन्हा द्वारा सम्पन्न पुरा अन्वेषण से स्तम्भ स्थल पर तो एक बृहद देवालय का अस्तित्व प्राप्त हुआ, साथ ही मांगेय नदी के उत्तर-पूर्वी तट पर भी दो मंदिरों के अवशेष अनावृत हुए। स्थल की प्राचीनता निर्धारण के लिए इस लेखिका ने भी भीतरी के लाट क्षेत्र का वर्ष २०००

ई० में उत्खनन करवाया। परिणामस्वरूप यह निर्धारण किया जा सका कि गुप्तराजवंश द्वारा बसाया गया यह स्थल मन्दिरों की नगरी थी। इसका केन्द्र सम्भवतः लाट का क्षेत्र था जहाँ कुमारगुप्त द्वितीय (४१४-४५५ई.) ने एक मन्दिर की नींव रखी। किन्हीं करणों से यह मन्दिर या तो पूर्ण नहीं हुआ या शीघ्र नष्ट हो गया। स्कन्धगुप्त, जिसका राज्यकाल ४५५-४६७ ई. के मध्य रखा जाता है, ने मृत पिता के स्मरण में इस मन्दिर की पुनः संरचना करवाई तथा कुछ सोच के पश्चात उसमें सारंगदेव या विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवाई। रख-रखाव के लिए इस शासक ने भीतरी का सन्निवेश इस मन्दिर को समर्पित भी किया। यह उपक्रम मन्दिर के परिसर में स्थित स्तम्भलेख में उद्धृत है (भण्डारकर, डी.आर. १९८१ : ३१६-३१७)। स्कन्धगुप्त का यह प्रयास भीतरी के स्थापत्य का द्वितीय चरण था। पुरावशेष व अभिलेख इस बात का भी अनुमोदन करते हैं कि भीतरी के लाट क्षेत्र व सम्भवतः अन्य क्षेत्रों में भी स्थापत्य संरचनायें परवर्ती शासकों द्वारा करवाई गई जिनमें, विष्णु मन्दिर का जीर्णोद्धार एवं विस्तार प्रमुख है। भीतरी स्थल के शिल्प व वास्तु अवशेष पांचवीं शताब्दी के मध्य से छठी शताब्दी के मध्य में तिथिबद्ध हैं (जायसवाल, विदुला २०१ : २०२)।

यहाँ विष्णु मन्दिर के अतिरिक्त दो अन्य देवालयों के अवशेष भीतरी से प्रकाश में आये हैं। इनमें से एक छोटा शिवालय तथा दूसरा कई कोष्ठों वाला मन्दिर था, जिसके इष्टदेव या देवों का अनुमान सम्भव नहीं है। ये दोनों ही मन्दिर मांगेय नदी के तट पर लाट क्षेत्र से लगभग १ किलोमीटर उत्तर व उत्तर-पूर्व में स्थित हैं। मांगेय, गंगा नदी की सहायक नदी है जो भीतरी के दक्षिण-पश्चिम में करीब आठ किलोमीटर की दूरी पर गंगा की मुख्य धारा से मिलती है। भीतरी में इसका तीखा घुमाव है तथा बाँया तट जलस्तर से काफी ऊँचा है। नदी तट पर एक श्रृंखला में कई मन्दिरों का अस्तित्व रहा होगा– जो नदी के किनारे श्रृंखलाबद्ध कई टीलों से अनुमानित होता है।

भीतरी के देवालय मुख्य रूप से ईंट, प्रस्तर, काष्ठ, कंकड़ व लोहे द्वारा निर्मित थे। कंकड़ के अतिरिक्त सभी प्रयुक्त माध्यम प्राचीन ग्रंथों में उपयुक्त माने गए हैं। (कमेरिश, स्टेला १९६४)। कंकड़ का प्रयोग इन मन्दिरों में संरचनात्मक आवश्यकता थी। कंकड़ का आधार नींव की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक था। सर्वाधिक मात्रा में ईंटों का प्रयोग किया गया था, जिनसे इमारत का पूर्ण ढाँचा निर्मित किया जाता था। ईंटों का निर्माण सांचे द्वारा किया जाता था। सामान्यतया आयताकार (२४ १८ ७ सेमी.) ईंटों का प्रयोग किया गया मिलता है परन्तु वास्तु आवश्यकता के अनुसार

समकोणीय या प्रस्तर शिल्पांगों के निमित्त चूलयुक्त ईंट, कोर्निस की अलंकृत ईंट, वाह्य भित्ति के लिए बनी बेलबूटेदार कई आकार की ईंटें तथा बृहद आकारी (८० ५० १० सेमी.) फर्श की ईंटों का निर्माण किया गया। इनमें "श्री कुमारगुप्त" नामोल्लिखित ईंटें उल्लेखनीय हैं। इससे प्रमाणित होता है कि भीतरी में ईंटों का उत्पादन एक संवृद्ध उद्योग था। प्राचीन भारतीय इतिहास के लिए ये प्रमाण विशेष महत्व के हैं। रामशरण शर्मा जैसे विद्वान इतिहासकार की उस मान्यता के ये अपवाद हैं कि गुप्त काल में इमारतों की संरचना पूर्ववर्ती–कुषाणकाल की इमारतों की ईंटों द्वारा हुई थी। (शर्मा, रामशरण १९८७)। यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि इस लेखिका के परिणामस्वरूप स्पष्ट होता है कि भीतरी का पूर्ण सन्निवेश गुप्तकालीन ही था। पूर्व गुप्तकालीन अवशेष इस स्थल से प्राप्त नहीं हुए हैं।

चुनार बलुआ प्रस्तर का प्रयोग भीतरी में मुख्य देवालय के फर्श निर्माण व सभी मन्दिरों के अलंकरण युक्त वास्तु अंग यथा–स्तम्भ, गर्भगृह के प्रवेशद्वार, बाह्यभित्ति के ताखे आदि में प्रमुखरूप से किया गया था। भीतरी का क्षेत्र किसी भी प्रस्तर स्रोत से काफी दूर है। चुनार बलुआ प्रस्तर की शिल्प उपयोगी संरचना, आवश्यक खण्डों के लिए, दूर क्षेत्र से आयात का कारण थी। इस लेखिका के चुनार व सारनाथ क्षेत्रों में पुरातात्विक अन्वेषण से यह प्रमाणित हुआ है कि गुप्तकाल से लगभग छः–सात शताब्दी पूर्व से ही चुनार की प्रस्तर खदानों का उपयोग किया जा रहा था। (जायसवाल, विदुला १९९८)। अभिलेखीय साक्ष्य व प्राचीन खदानों से स्पष्ट है कि एक नियोजित प्रणाली द्वारा चुनार की पहाड़ियों से बलुआ पाषाण खण्डों का निर्यात मध्य गांगेय क्षेत्र के उन सभी स्थलों पर किया जा रहा था जहाँ बड़े पैमाने पर इमारतों की संरचना की जा रही थी। सारनाथ, जौनपुर, भीतरी आदि ऐसे उल्लेखनीय प्राचीन स्थल हैं जहाँ प्रस्तर की पर्याप्त खतप थी। चुनार के खदानों में गुप्तकालीन लेखयुक्त तराशे खण्ड अभी भी पड़े मिलते हैं। जो यह स्पष्ट करते हैं कि इस काल में शिल्प के लिए उपयुक्त पाषाण का स्रोत चुनार था।

चुनार की पहाड़ियों के ऊपरी भाग में बलुआ प्रस्तर के जमाव हैं। उनसे लगभग 1 मीटर लम्बे बेलनाकार खण्डकों को खदान में ही तराश लिया जाता था। इन खण्डकों को ढलानों से ढकेल कर नीचे लाया जाता था। गंगा नदी में लकड़ी के मचानों पर रखकर जल मार्ग द्वारा उपयोगिता के स्थलों तक पहुँचाने के पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। सारनाथ–बनारस में प्रस्तर आयात की इस प्रक्रिया द्वारा ही भीतरी के शिल्प माध्यम आपूर्ति प्रक्रिया को भी समझा जा सकता है।

सारनाथ के पास कोटवा नामक स्थल से प्रमाणित है कि जलमार्ग व उपयोगी स्थल सारनाथ व काशी के समीपवर्ती क्षेत्र में शिल्पकारों की बस्तियाँ स्थित थीं, जहाँ आयातित खण्डों से वास्तु अंग व प्रतिमाओं का मूर्तन किया जाता था। कुषाण काल (ईसवी सन् के प्रारम्भ) से प्रचलित यह प्रथा गुप्तकाल में विशेष रूप से विकसित हुई। कोटवा के समान शिल्पकारों की कोई बस्ती भीतरी से प्राप्त नहीं है क्योंकि यहाँ सारनाथ के समान प्रतिमाओं की न तो अधिक मांग थी और न ही स्थानीय कलाकेन्द्र के अस्तित्व की उचित भूमिका। भीतरी का प्रस्तर शिल्प अनुमानतः देवालयों के वास्तु अंग निर्माण व पूर्णरूप से राज्यादेश निमित्त था। अतः भीतरी में प्रस्तर शिल्प मन्दिरों के निर्माण स्थली के आस-पास ही सम्पन्न किया गया होगा। माध्यम की प्राप्ति के लिए चुनार की खदानें गंगा नदी (लगभग ५० किमी. अनुप्रवाह) व गांगेय नदियों के कारण सुगम जलमार्ग से जुड़ी थीं।

काष्ठ का प्रयोग लोहे की कीलों व जोड़ की वस्तुओं द्वारा सम्भावित है। इसकी मात्रा व स्वरूप की जानकारी पुराप्रमाणों के आधार पर सम्भव नहीं है कंकड़ और चूने के लेप का प्रयोग भी इमारतों में किया गया है। कंकड़ गांगेय नदी के उन मृदा जमावों में काफी मात्रा में उपलब्ध है जो मानव द्वारा अप्रयुक्त क्षेत्र हैं। लौह का अस्तित्व पुरातात्त्विक अन्वेषण से सम्भावित है। मुख्य मन्दिर (लाट क्षेत्र) के दक्षिणी छोर पर लोहारों की बस्ती के अवशेष वर्ष २००० ई० में अनावृत्त किए गए। ईंट की फर्शों पर घास-फूस का छाजन तथा राख के ढेर, लोहे के ढोंके, लौह उपकरणों के साथ ही मुद्रित मृदा चक्के उपलब्ध हुए। कच्चे लोहे के खण्डकों को बोरी या थैली में भर कर एवं व्यापारियों या लौहकर्मियों के नाम को लेखों द्वारा चिह्नित कर भीतरी भेजा जाता था। यह माध्यम कहाँ से भीतरी लाया जाता था इसका निश्चय करना तो अभी सम्भव नहीं है, परन्तु छोटा नागपुर की पहाड़ियाँ या कैमूर के पर्वतीय क्षेत्त अनुमानित स्रोत हो सकते हैं।

देवालयों की संरचना के पूर्व धरातल को समतल बनाया जाता था। आपस्तंभ श्रौतसूत्र (खण्ड III. अध्याय XXVI, ७९) में ऐसा निर्धारण है कि देवालय के स्थान को सुनिश्चित करने के बाद संरचना निर्माण के पूर्व भूतल को शीशे के तल के समान समतल बना लेना चाहिए (स्टेला, कमेरिश १९४६ : १६)। इस निर्देश का पालन भीतरी के मन्दिर निर्माण में स्पष्ट है। मन्दिर के सम्भावित क्षेत्र के आस-पास काफी दूर तक का भाग समतल कर लिया जाता था। यह लाट क्षेत्र में इस लेखिका द्वारा सम्पन्न उत्खनन से प्रमाणित होता है। नीवों के उत्खनन में प्राकृतिक तहस- जो भीतरी में ठोस पीली मिट्टी का मोटा जमाव है—उसको सीधी रेखा में पाया गया था। लगभग

सवा मीटर चौड़ी मन्दिर दीवार की नींव लगभग १२ ईंटों के स्तरों द्वारा निर्मित की जाती थी। नींव सुदृढ़ बनाने के लिए, सबसे नीचे कंकड़ की एक मोटी परत बिछाई जाती थी। नींव की दीवार में तो टेढ़ी-मेढ़ी ईंटें लगी होती थी पर ऊपर की दीवार के बाहरी किनारों को सीधा व समतल बनाया जाता था। यह प्रयोजन पूर्ण ईंटों के प्रयोग से सम्पन्न होता था। गुप्तकालीन संरचना की यह विशेषता थी कि मोटी भित्ति के भीतरी भाग को ईंट के टुकड़ों व मोटी ठोस मिट्टी की परत में बिठाया जाता था। इस विधा से मोटी दीवारें ठोस बनती थीं। टूटी ईंटों का प्रयोग कई बार यह भ्रांति उत्पन्न करता है कि गुप्तकाल में नई ईंटों का निर्माण नहीं किया जाता था। पूर्वकालीन संरचना के ईंटों का ही उपयोग किया जाता था (शर्मा, रामशरण १९८७)। भीतरी के साक्ष्य इस भांति का निराकरण करते हैं। गुप्तकाल के उत्तरवर्ती चरणों में दीवारों की चौड़ाई यद्यपि कम होती जाती है पर संरचना की पूर्व दिशा का प्रयोग इसमें भी देखा जा सकता है।

मन्दिर के प्रथम ढाँचे में यथासम्भव कई आकार-प्रकार की ईंटों को संजोया जाता था यथा-"श्री कुमारगुप्त" लिखित ईंटों का बाहरी भित्ति में प्रयोग। बेलबूटे धारी अलंकृत ईंटों का भी बाहरी भित्ति में प्रयोग। दूसरे चरण में प्रस्तर शिल्पांगों को सम्भवत: देवालय भित्ति व अन्य भागों में संलग्न किया जाता था। इन अंगों की स्थिति व स्थान ईंटों की संरचना में ही सुनिश्चित कर लिया जाता था। यथा-गर्भगृह के वाह्यभित्ति पर देव दृश्यों के ताखे, मण्डप के स्तम्भों के स्थान पर इटों से निर्मित अधिष्ठान इत्यादि। प्रस्तर वास्तु खण्डों को आवश्यकता अनुरूप तराश कर तैयार रखा जाता था। भीतरी के पुरावशेष गुप्तकाल के शिल्प खण्डों से भरे पड़े थे। इन प्रस्तर शिल्पों को यथास्थान संजो कर ही भीतरी के मन्दिरों के वैभव को समझा जा सकता है। मुख्य मन्दिर से प्राप्त यशोदा दृश्य गुप्त मूर्ति कला का अनूठा व उत्कृष्ट उदाहरण है। ईंट की भित्ति पर संलग्न अन्य अलंकृत अंगों के साथ इसकी कल्पना विशेषज्ञों को रोमांचित करती है।

अति विनष्ट भीतरी के देवालयों के महत्व के लिए उनके सम्पूर्ण स्वरूप की पुर्नसंरचना आवश्यक है। अत: आधुनिक तकनीकि ज्ञान की सहायता से एक मन्दिर के स्वरूप की संरचना का प्रयास किया गया है जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

भीतरी से अनावृत तीन मन्दिरों के अवशेष में शिवालय के स्वरूप की संरचना कई दृष्टियों से उपयोगी पाई गई। गांगेय नदी के बाएँ तट पर स्थित यह मन्दिर अन्य दो की तुलना में छोटा तो है-पर इसके अधिष्ठान का लगभग पूरा ढाँचा उत्खनन से प्राप्त किया गया है। दो खण्डों में

निर्मित इस देवालय के गर्भगृह में शिवलिंग भी अपने मूल स्थान पर स्थित था। स्तम्भयुक्त मण्डप अन्तराल से जुड़ा था तथा नीची दीवार से मन्दिर प्रांगण घिरा हुआ था। इतने स्पष्ट प्रमाण अन्य दो मन्दिरो से उपलब्ध नहीं हुए। अतः प्रयोग के प्रथम वरण के लिए इस देवालय का चयन उचित था।

शिवालय का निर्माण प्रायः टूटी ईंटों से किया गया था। पुरातत्त्वविद प्रो. सिन्हा, जिन्होंने इस देवालय को अनावृत करवाया, की मान्यता है कि विष्णु मन्दिर की बची ईंटों द्वारा इसका निर्माण किया गया। साथ ही वे इस बात पर भी बल देते हैं कि मुख्य मन्दिर के समान ही दो प्रमुख चरणों में शिवालय का भी निर्माण किया गया। शिवालय के खण्डहर व आस-पास से उपलब्ध शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन समकालीन मन्दिरों से किया गया। जिसके अनुरूप शिखरयुक्त व शिखरविहीन दोनों सम्भावनाओं के आधार पर भीतरी के शिवालय का स्वरूप निर्धारित किया गया। शिखर विहीन छोटा देवालय, साँची का मन्दिर तथा शिखरयुक्त मन्दिर भीतरी गाँव, पार्वती मन्दिर, नचना दशावतार मन्दिर, देवगढ़ को भीतरी शिवालय की संरचना का आधार माना गया। इन भूतल स्थित मन्दिरों के वास्तु अंगों के अनुरूप भीतरी के देवालय के दो प्रारूप कम्प्यूटर आलेख द्वारा तैयार किए गए हैं। (जायसवाल, वि., ने. राद्रिगस एवं अ. मुखर्जी, २००५)। दोनों ही प्रारूप में देवालय का विन्यास एक जैसा है। पश्चिम दिशा से इस मन्दिर प्रांगण में प्रवेश किया जा सकता था। अनुमानतः प्रांगण का प्रवेशद्वार सादा था। शिवालय का प्रांगण लगभग १६१ मीटर वर्गाकार होता था, जो ईंट की दीवार से घिरा था। उसके लगभग मध्य में छोटे चबूतरे पर देवालय स्थित था जो १.६० मीटर मोटी दीवारों से निर्मित, ७.४२ मीटर (पूर्व-पश्चिम) व ५.९२ मीटर (उत्तर-दक्षिण) संरचना थी। लगभग वर्गाकार कोष्ठ (२.८२ २.७८ मीटर) के तीन बाह्य भित्तियों (पूर्व, उत्तर व दक्षिण) में रथ योजना निमित्त बहिर्वेशन का निर्माण किया गया था। जिसके कारण समकालीन गुप्त मन्दिरों की परिपाटी में इस देवालय की भी त्रि-रथ योजना स्पष्ट होती है। इस योजना का संयोजन धरातल के ऊपरी भाग में ही किया गया था। क्योंकि १२ ईंट स्तरों वाली नींव में रथों का स्वरूप उपलब्ध नहीं होता है। नींव जो कि टेढ़ी-मेढ़ी ईंटों की जुड़ाई से निर्मित थी उसके ऊपर के भाग में दो ईंट स्तरों को बाहर निकाल कर बनाया गया था। इसके ऊपर सपाट-चिकनी दीवार का निर्माण किया गया था (जायसवाल, विदुला २००० : ८६-९१)। गर्भगृह के पश्चिम-प्रवेशद्वार से जुड़ा मण्डप था, जो २.३० मीटर (उत्तर-दक्षिण) व १.१० मीटर (पूर्व-पश्चिम) का एक संकरा कोष्ठ था। गर्भगृह व गूढ़-मण्डप का प्रवेश द्वार सम्भवतः पाषाण अलंकृत पट्टियों द्वारा निर्मित था

ऐसा अनुमान समकालीन गुप्त मन्दिरों से किया जा सकता है। गर्भगृह के मध्य में शिवलिंग स्थापित था। मन्दिर में प्रदक्षिणापथ, प्रांगण की दीवार व गर्भगृह मण्डप खण्डों के मध्य था। इसमें शिव-पार्वती के अंकनयुक्त प्रस्तरपट्ट लगे थे।

लगभग साढ़े सात मीटर वर्गाकार मुख-मण्डप, अन्तराल से परवर्ती चरण में जोड़ा गया था। ७-८ सेंटीमीटर के कंकड़ जमाव पर ईंटों के १८ स्तरों की ७५ सेंटीमीटर मोटी दीवार से यह भाग निर्मित था। इस क्षेत्र में ६ ईष्टों से निर्मित वर्गाकार (७० ९५ सेंटीमीटर, ६५ ७५ सेंटीमीटर) चबूतरे बनाये गये थे जिन पर अलंकृत प्रस्तर स्तम्भों को स्थित किया गया था। यह स्तम्भ आधाार भी कंकड़ों की परत पर बनाये गये थे। इनमें से दो स्तम्भ गर्भगृह-गूढ़ मण्डप के ठीक सामने थे जबकि अन्य ४ मण्डप मध्य भाग में पंक्तिबद्ध थे। इस बात की सम्भावना है कि प्रवेश के पास भी (पश्चिम दिशा में) अन्य स्तम्भों को लगाया गया होगा। स्तम्भों पर चपटी छत टिकी होगी व मुख-मण्डप की फर्श १७ / १८ ईंटों की स्तर जितनी ऊँची होगी, इसका भी अनुमान किया जा सकता है। अतः मन्दिर का प्रवेश पश्चिम दिशा से सीढ़ियों द्वारा माना जा सकता है।

उपर्युक्त विन्यास के साथ शिवालय के वाह्य स्वरूप के प्रारूप में भेद मूलतः गर्भगृह के ऊपर शिखर की उपस्थिति और अनुपस्थित थी। दोनों ही दशाओं में मण्डप की छत सपाट थी। शिखरयुक्त प्रारूप में समकालीन भीतरगांव के मन्दिर के शिखर को मानदण्ड माना गया है। जिसके आधार पर ईंट निर्मित पिरामिडाकार भव्य शिखर की परिकल्पना की गई है। देवगढ़ के आधारपर गर्भगृह पर छोटे शिखर का अनुमान भी तार्किक है। शिखर विहीन शिवालय का अनुमान तिगवा / कंकालीदेवी के मन्दिर के आधार पर किया गया है। अतः गर्भगृह व मुख-मण्डप दोनों पर सपाट छत को दर्शाया गया है।

गृहारम्भ और गृहप्रवेश

पं. रामदेव झा

वास्तुशास्त्र कहें या वास्तु विद्या कहें दोनों में कोई भेद नहीं है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के रूप में जो दृष्टि दी है–यह नित्य है ओर वर्तमान है। अतः देशकाल परिस्थिति के अनुसार हम आश्रमधर्म को धारण करते हैं। फलस्वरूप परिवार–गाँव–नगर–राज्य ओर देश आदि में बसने वाले अधिकांश लोग गृहस्थ होते हैं। इस सम्बन्ध में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने कहा है:– **"वास्तु ज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा। ग्राम सङ्गपुरादीनां निर्माणं वक्ष्यतेऽधुना।"** गृह शब्द को दो तरह की परिभाषाएँ प्राप्त हैं। इन तीनों का भाव एक है। यथा:–

(१) स्वसत्ताकं गृहम्–अर्थात् घास फूस–लकड़ी–ईंट– और पत्थर किसी भी प्रकार का गृह हो और उस पर अधिकार हो।

(२) जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ ग्रहण जिसमें किए जाते हैं। अर्थात् **"गृह्णाति धान्यादिकं जीवनार्थं यस्मिन्निति गृहम्"**

वास्तुशास्त्र की दो परम्पराएँ मानी जाती हैं। इनमें उत्तरापथ प्रवर्तक विश्वकर्मा तथा दक्षिणापथ प्रवर्तक 'मय' दानव माने जाते हैं। वास्तु विद्या बोधक ज्योतिषशास्त्र के संहिता–मूहूर्तादि ग्रन्थों में इसकी चर्चा यथास्थान की गई है। चिरकाल से वास्तुविद्या का उत्तरोत्तर पल्लवन होता आ रहा है। पाश्चात्य विज्ञानविद् भी इस विद्या को विज्ञान के आलोक में ही देख रहे हैं। ज्ञातव्य है कि प्राचीनकाल में वास्तु विद्या का उपयोग राजभवनों एवं राजनगरों–ग्राम–गृह आदि के निर्माण में होते थे और आज भी किए जाते हैं। इस सम्बन्ध में इतना तो स्पष्ट है कि जो राजभवनों में किसी राजधानी में, गाँव के सामान्य गृहों में कहीं भी निवास करते हों वे सभी गृहस्थ हैं।

गृह निर्माण का प्रयोजन–

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिद्ध्यन्ति गृहं विना।

यतस्तस्माद् गृहारंभ प्रवेश समयो ब्रुवे।।

अर्थात् गृहस्थाश्रम धर्म निर्वाह करने वालों का कोई भी कार्य घर के बिना सम्पन्न नहीं होता। चाहे वह किसान-मजदूर हो, राजधर्म-निर्वाह करने वाले शासक-प्रशासक हो, वाणिज्य-व्यवसाय करने वाले हों, समाज का कोई भी वर्ग हो, उन्हें घर की आवश्यकता होगी ही होगी। उसके आकार-प्रकार और स्थान, आवश्यकतानुसार भले ही अलग-अलग हो।

समस्याएँ

(१) गृह निर्माणकर्त्ता एवं ग्राम नगरादि राशि शुभप्रद हैं या नहीं।

(२) काकिणी वर्गादि विचार।

(३) द्वार विचार।

(४) आयादि विचार।

(५) धन ऋण विचार।

(६) गृहारंभ में वृषवास्तु विचार तथा भूमिशयन नक्षत्र विचार।

(७) गृहप्रवेश में कुंभ चक्र विचार।

वास्तुशास्त्र के अनुसार भारतीय प्राचीन आचार्यों ने जिस प्रकार गृह निर्माण की विधियों का वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में निर्देश किया है– उनका विहंगमावलोकन ही प्रस्तुत निबन्ध में किया जा रहा है। वे भविष्य द्रष्टा थे। उन्हें ज्ञात था कि आने वाला समय कैसा होगा।

(१) गृह निर्माता तथा ग्राम-नगर के नाम के द्वारा शुभाशुभ ज्ञानः–

गृह निर्माता एवं जहाँ गृह निर्माण करना है इन दोनों के नामों के आदि अक्षरों के अनुसार राशि ज्ञान करें। यदि दोनों में मैत्री है तो वहाँ निर्माण करें-शुभ प्रद होगा। निर्माण स्थान तथा निर्माता के नामों के प्रथमाक्षरों द्वारा मैत्रादि का दूसरा प्रकार नामाक्षरों द्वारा वर्ग विचार–यहाँ आठ वर्गों को विचारणीय माना गया है–

१. अवर्ग	२. कवर्ग	३. चवर्ग	४. टवर्ग	५. तवर्ग	६. पवर्ग	७. यवर्ग	८. शवर्ग
गरुड़	बिल्ली	सिंह	कुत्ता	सप्र	चूहा	हाथी	भेड़

इन वर्गों में जिससे जो पाँचवा है वह शत्रु होता है। चौथा मित्र और तीसरा सम। समानवर्ग में परम प्रीति, मित्र वर्ग में प्रेम तथा समवर्ग में थोड़ा प्रेम और शत्रु वर्ग में मृत्यु होती है।

वर्गों के शरांक

	१. अवर्ग	२. कवर्ग	३. चवर्ग	४. टवर्ग	५. तवर्ग	६. पवर्ग	७. यवर्ग	८. शवर्ग
शरांक:-	८	५	६	४	७	१	३	२
पूर्वादि दिशाएँ	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	अग्निकोण	नैऋत्य	वायुकोण	ईशान

उपर्युक्त प्रकार से ग्राम-नाम-दिशा इन तीनों की जो अवर्गादि शरसंख्याएँ हैं उनको जोड़कर आठ से भाग देना चाहिए। शेष पर से सूर्यादि ग्रहों की दशा ज्ञात करें। शुभ ग्रह की दशा शुभ होती है और पाप ग्रह की दशा अशुभ। दशा ज्ञात करने का क्रम वही है। क्रमशः अंक संख्यानुसार सूर्य-चद्र-भौम-राहु-गुरु-शनि-बुध और केतु।

काकिणी विचार

स्ववर्गं द्विगुणी कृत्य परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत्।। ज्यो. च.

गृहपति के वर्ग को द्विगुण कर उसमें ग्राम की वर्ग संख्या जोड़ दे। तथा ग्राम की वर्ग संख्या को द्विगुण कर उसमें गृहपति की वर्ग संख्या जोड़ दे। दोनों जगह आठ से भाग दें। जिसमें शेष अधिक बचे तो वह ऋणी होता है। यदि ग्राम का शेष अधिक रहा तो वह शुभ फलदायक माना गया है।

आय साधन विचार

विस्तारं गुणितं दैर्घ्यं गृहक्षेत्रफलं भवेत्।
तत्पृथक् वसुभिर्भक्तं शेषमायोध्वजादिकः।।

अर्थात् गृह की लम्बाई को चौड़ाई से गुणा कर दें। इस गृहक्षेत्रफल में आठ से भाग देने पर ध्वज आदि आय होती है।

व्यय साधन विचार

क्षेत्रमष्टाहनं धिष्णैर्विभक्तं स्यादगृहस्य भम्।
भेष्ट भक्ते व्ययः शेष आयादल्पो व्ययः शुभः।।

गृहक्षेत्रफल को आठ से गुणा कर उसमें २७ से भाग देने पर शेष गृह का नक्षरात्र होता है। उसमें आठ से भाग देने पर जो शेष बचे उसे व्यय समझें। आय से व्यय कम होने पर शुभप्रद होता है।

ध्वजादि आय के नाम

ध्वजो धूमोऽथ सिंहः श्वा सारमेयः खरो गज।
ध्वांक्षश्चैव क्रमेणैतदायादष्टकमुदीरितम्।।

(१) ध्वज (२) धूम (३) सिंह (४) कुत्ता (५) बैल (६) गधा (७) हाथी (८) काक ये आठ ध्वजादि आय माने गए हैं।

ध्वजादि आय के शुभाशुभ फल

कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्।
रोगश्चेति गृहारंभे ध्वजादीनां फलं क्रमात्।।

ध्वज आय में गृह निर्माण का आरंभ कीर्ति प्रदान करता है। धूम में शोक, सिंह में जय, कुत्ता में शत्रुता, बैल में धन प्राप्ति, गधा में दरिद्रता, हाथी में सुख तथा काक में वास्तु आरंभ रोग कारक होता है।

ब्राह्मणस्य ध्वजो ज्ञेयो सिंहौ वै क्षत्रियस्य च।
बृषभश्चैव वैश्यस्य सर्वेषां तु गजः स्मृतः।।

ब्राह्मण को ध्वज आय, क्षत्रिय को सिंह, वैश्य को बैल, और गज आय सब के लिए शुभदायक है।

गृहद्वार निर्माण

नवभागं गृहं कुर्यात् पञ्चभागन्तु दक्षिणे।
त्रिभागं वामतः कुर्यात् शेषद्वारं प्रकल्पयेन्।

गृह की लम्बाई को नौ भागों में बांट कर पाँच भाग दाहिनी ओर और द्वार से ३ भाग बाईं ओर छोड़कर द्वार बनाएँ। अर्थात् द्वार से ५ भाग दाहिनी ओर ३ भाग बाईं ओर समझें।

गृहपति का स्वभाव और उसका गुणकर्म

दीर्घविस्तार संख्यैक्यं चाष्टभिर्गुणितं तथा।
नवाभिस्तु हरेद् भागं शेषांके फलमादिशेत्।।

तस्करयोग विचक्षणदातानृपतिनपुंसकाः।
धनाढ्यश्च दरिद्रश्च भयदो नवमं भवेत्।।

गृह की लम्बाई चौड़ाई की संख्याओं को जोड़कर आठ से गुणा करें। गुणनफल में नौ से भाग दें। शेष पर से फल ज्ञान करें। १ शेष में गृहपति चोर, २ शेष में भोगी, ३ में विचक्षण,४ में दाता ५ में राजा, ६ में नपुंसक ७ में धनाढ्य, ८ में दरिद्र तथा ९ में भय देने वाला होता है।

भूमि विचार

मनसश्चक्षषो यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्।।

जिस भूमि पर मन और नेत्रों को प्रसन्नता प्राप्त हो वहाँ गृह निर्माण करने की गर्गादि मुनियों ने आज्ञा दी है।

भूमि शयन विचार

प्रद्योतनात्पञ्चनगाङ्कसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितानि भानि।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापी खननं न शस्तम्।।

सूर्य नक्षत्र से ५, ७, ९, १२, १९, २६ संख्यावाले नक्षत्रों में भूमि शयनावस्था में होती है। अतः भूमि शयन नक्षत्र में गृहारंभ, तालाव और कुँआ खुदवाना शुभदायक नहीं है।

विशेष–अगहन (मार्गशीर्ष) पौष और माघ इन तीन महीनों में पूर्व में, फाल्गुन–चैत्र–वैशाख में दक्षिण, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण में पश्चिम में तथा भाद्रपद, आश्विन–कार्तिक में उत्तर में रहता है। अतः जिस दिशा में राहु हो उस दिशा की ओर द्वार बनाना निषिद्ध है। गृहप्रवेश में भी सम्मुख काल में प्रवेश नहीं करें।

गृह निर्माण में वृषवास्तु चक्र

सूर्याक्रान्तात्त्यजेत्सप्तततश्चैकादशे शुभम्।
शेषं नन्दर्क्षकं दुष्टमिति वास्तुनि कीर्तितम्।

सूर्यनक्षत्र से ७ सात नक्षत्र तक गृहारंभ न करें। उससे आगे ११ नक्षत्र तक गृहारंभ शुभफलदायक तथा उससे आगे ९ नौ नक्षत्र अशुभ कहे गए हैं।

वास्तु विहित नक्षत्र

> रोहिण्यां श्रवणात्रयेऽदितियुगे हस्तत्रयेमूलके।
> रेवत्युत्तरफाल्गुनीन्दुतुरगे चित्रोत्तराषाढ़योः।।
>
> शस्तं वास्तु कुजार्कवर्जित दिने गोकुम्भ सिंहे झषे,
> कन्यायां मिथुने नभः शुचिसहोराधोर्जके फाल्गुने।।

रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा, अश्विनी, अनुराधा, उत्तराषाढ़, इन नक्षत्रों में और मंगल, रवि वर्जित वारों में, वृष, कुंभ, सिंह, मीन, कन्या, मिथुन लग्नों में, श्रावण, आषाढ़, वैशाख, कार्तिक, फाल्गुन महीनों में गृहारंभ करना शुभ है।

पक्ष-फल

> शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्।
> तस्माद् विचार्य कर्त्तव्यं यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः।।

शुक्ल पक्ष में वास्तु आरंभ करना सुखदायक है। कृष्णपक्ष में चोरों का भय होता है। शुभ चाहने वालों को इसका विचार कर लेना चाहिए। वैसे कृष्णपक्ष की पंचमी तिथि तक आरंभ निर्दुष्ट है—ऐसा आचार्यगण का मत प्राप्त होता है।

गृहारंभ में वर्जित तिथियाँ

> चतुर्थी चाष्टमी षष्ठी नवमी द्वादशी तथा।
> चतुर्थी त्वमावास्या वर्जनीयाः प्रयत्नतः।।

गृहारंभ में चतुर्थी, अष्टमी, षष्ठी, नवमी, द्वादशी, चतुद्रशी, आमावस्या वर्जित तिथियाँ हैं।

सप्तसकार का महत्व

> शनौ स्वामी सिंह लग्ने शुक्लपक्षे च सप्तमी।
> शुभ योगे श्रावणे च सकारः सप्त कीर्तितः।।
>
> सप्तयोगे भवेद् वास्तु तत्पुत्रो धनिको भवेत्।
> गजाश्वधनसम्पत्तिर्मेधा तिष्ठति सर्वदा।।

शनिवार, स्वाती नक्षत्र, सिंह लग्न, शुक्ल पक्ष, सप्तमी तिथि, शुभ योग, श्रावण मास, इस सप्त सकार युक्त काल में वास्तु सभी प्रकार से सुखदायक होता है।

गृह प्रवेश

आश्लेषा, विशाखा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पू.षा., पू.भा., भरणी और रिक्ता-आमावस्या तिथि, मंगलवार इन सबको छोड़कर वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ, लग्नों में तथा शुक्ल पक्ष में, तथा वास्तु आरंभ के लिए जो मास शुभ कहे गए हैं उन महीनों में गृह प्रवेश शुभ कहा गया है। मिथुन, धनु, कन्या और मीन मध्यम लग्न हैं।

गृह प्रवेश में कुंभ चक्र

सूर्याक्रान्तात्त्येत्पञ्च ततो गजमितं शुभम्।
ततो वसुमितं दुष्टं शेषं रसमितं शुभम्।।

सूर्यनक्षत्र से पाँच नक्षत्र तक प्रवेश अशुभ है। इसके आगे आठ नक्षत्रों तक शुभ है तथा इससे आगे आठ नक्षत्र अशुभ शेष छः नक्षत्र शुभ होते हैं।

अपवाद-वर्तमान युग के सन्दर्भ में-

पाषाणेष्टादिगेहानि निन्द्यमासे न कारयेत्।
निन्द्यमासेऽपि चन्द्रस्य मासेन शुभदं भवेत्।।

गृहारंभं प्रकुर्वीति वर्णनाथ बले सति।
सर्वेषामपि वर्णानां सूर्यचन्द्र बलं स्मृतम्।।

सिद्धातिथिः सिद्धिदा स्यात्सर्वकार्येषु सर्वदा

सिद्धा तिथिः हन्ति समस्तदोषान् यान्मास शून्यानपि मासदग्धान्।
दिन प्रदग्धानपि चान्य दोषान् एकादशी यद्वदेशेष पापान्।।

अतः अत्यावश्यक होने पर चान्द्रमास हो, सूर्य-चन्द्रबली हो, शुभ तिथि हो तो सभी कार्य शुभ फलदायक होते हैं।

वास्तुशास्त्र में रसोईघर का स्थान

शैलेन्द्रकुमार आदित्य

रसाईघर का नाम आते ही हमें उसमें बनाए जाने वाले पकवानों का ध्यान आता है। सारे खाद्यान्नों में पाँच रसों का अंतर्भाव होता है। ये पांच रस है–मीठा, खट्टा, तीखा, चरमरा, कडुआ आदि। हर घर की गृहिणी यह अच्छी तरह से जानती हैं कि अगर परिवार के सदस्यों के हृदय में उसे अपनी अच्छी छाप बनानी है तो उसका सीधा रास्ता है स्वादिष्ट पौष्टिक आहार बनाना। जिस आहार को खा कर मनुष्य तृप्ति का अनुभव करे। अच्छा स्वादिष्ट पौष्टिक आहार बनाने वाला व्यक्ति निश्चित रूप में वह अच्छे स्वास्थ्य, अच्छे मन और अच्छी वाणी का स्वामी होता है।

वर्तमान में रसोई का स्वरूप

प्राय: रसोई घर की योजना को लेकर कई प्रकार के आकार मानस पटल पर आते हैं। रसोई को उसके आकार के अनुरूप नाम दिए गए है–जैसे अंग्रेजी अक्षर U एवं L की आकृति, के आज अधिकत्तर रसोई घर बनते हैं। दो दीवारों वाली गलियाराकृति समानान्तर आकृति अथवा एक दीवार से संलग्न रचनावाली आकृतियाँ भी आज-कल अधिकत्तर देखने में आती हैं। रसोई घर में उपकरणों की समावट किस प्रकार की जाए, यह स्थिति रसोई घर की आकृति दरवाजे एवं खिड़कियों की स्थिति पर निर्भर करती है।

भारतीय एवं पाश्चात्य सभ्यता

कक्षों के विभाजन व्यवस्था में रसोई की व्यवस्था प्राचीन काल से ही विद्यमान थी परन्तु आज के रहन-सहन और सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय रसोई घर पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अधिक पड़ा है जिससे हर रसोई घर पाश्चात्य रसोई घर योजना सदृश दृष्टिगोचर होता है। यह आमूलचूल परिवर्तन आज के समय की जरूरत है।

परिवर्तन कैसे कैसे?

तुलनात्मक नजरिए से देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन स्वागत योग्य है और समय की जरूरत भी है। समय ने भारतीय सभ्यता की रसोई को पाश्चात्य सभ्यता की रसोई के सामने लाकर बौना तो कर दिया परन्तु साथ ही समय, कार्यपद्धति, ऊर्जा और गति को भी

प्रभावित किया है ओर यही कारण है कि लोग पाश्चात्य रसोई में रुचि दिखलाने लगे हैं। चिमनी वाले चूल्हों की जगह गैस वाले चूल्हे का चलन, सिल-बट्टा या औखली-मूसल की जगह मिक्सर ग्राईंडर का प्रचलन, पट्टे पर बैठकर खाना बनाने की जगह खड़े होकर चबूतरे (ओटे) पर खाना बनाने का चलन और न जाने कितने ही नये परिवर्तन आज की वर्तमान रसोई में आए हैं। पाश्चात्य सभ्यता की वास्तु योजना में अधिकतम महत्व रसोई घर को ही प्राप्त है। रसोई की हर एक कार्य प्रणाली को अच्छी तरह से अध्ययन करने के उपरान्त ही इसकी योजना की जाती है। रसोई घर साफ-सुथरा और सुन्दर रहने से गहिणी भी प्रसन्नता पूर्वक खाना पकाती हैं। यहाँ तक कि उनके रसोई घर में कहीं भी ज़रा सी चिकनाई का दाग व अन्य तरकारियों के छिलके आदि भी नहीं दिखलाई देते हैं।

अविभक्त संयुक्त परिवार में परिवार की अनेक स्त्रियाँ मिलकर खाना बनाती थीं किन्तु समय के साथ-साथ संयुक्त परिवार का विभाजन होकर विभक्त एकाकी परिवार बनने लगे हैं। यहाँ एक परिवार में पति-पत्नी अपने बच्चों सहित रहते हैं। नौकरों सेवकों के अभाव में गृहिणी को सारे घर के काम सँभालने का दायित्व आन पड़ा है।

रसोई के कार्य का विवरण

रसोई घर में कई प्रकार के रसोई से संबंधित कार्य होते हैं। इन में खाद्यान्नों का चुनना-बीनना, सब्जियों को काटना-छीलना, उनको धोना-सुखाना, छानना-पीसना, पकाना-मथना, खाद्यान्नों को पीसना, कूटना, बर्तनों को धोना-पोंछना, उनको सलीके से व्यवस्थित रखना, सब्जियों, खाद्यान्नों का भण्डारण करना, कूड़े-करकट का निष्कासन करना आदि आते हैं। इन सभी कार्यों को करते समय आवाजें (प्रेशर कूकर) होना, धुआँ उठना आदि स्वाभाविक है। इससे राहत पाने के लिए कई प्रकार की नई सुविधाएं, आज हमारे पास मौजूद हैं। चिमनी के एक्झास्ट पंखे से धुएँ को निष्कासित किया जा सकता है। 'मोडयूलर किचन' सामग्री द्वारा आवाज को भी कुछ स्तर तक नियंत्रित किया जा सकता है और सुन्दर रखरखाव प्राप्त किया जा सकता है। रसोई कक्ष के नियोजन द्वारा रसोईघर को अधिकाधिक खुलापन दिया जा सकता है। खिड़कियों और दरवाजों की मदद से अंदरूनी नीरसता को बाहरी हरियाली और खुलेपन से जोड़कर गृहिणी राहत की सांस ले सकती है। रसोई घर में धूप, प्रकाश, ऊर्जा, हवा, रोशनी का प्रवेश होना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होता है। इसलिए दिशा चयन भी काफी महत्वपूर्ण है। वातायन (खेलती हवा) के लिए अधिकाधिक खिड़कियों एवं आवागमन हेतु दरवाजो की भी आवश्यकता होती है। दीवारों के पृष्ठों की रंगाई-पुताई या टाईल आच्छादन भी रसोई घर के कार्यानुरूप होने चाहिए। रसोईघर की छत

मजबूत, पक्की और सुन्दर होनी चाहिए। रसोई घर का कम-से-कम क्षेत्रफल ९ वर्गमीटर से १३.५ वर्गमीटर (१०० वर्ग फीट से १५० वर्ग फीट) होना चाहिए। फर्श आसानी से धुल सके और साफ रहे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। फर्श सूराख रहित हो तथा फर्श की ढलान भी नाली की ओर हो जिससे फर्श धोते समय सारा पानी आसानी से बह सके। सीलन से बचने के लिए फर्श से ९०-१०० सेंटीमीटर की दीवार की ऊँचाई तक टाईलों का आवरण करना चाहिए। रसोई न्वबूतरे से भी आगे कुछ ऐसा ही प्रावधान होना चाहिए। फर्श और दीवारों के जोड़ में गोलई होनी चाहिए जिससे दरारों में पानी या कूड़ा-करकट, मिट्टी, धूल आदि न रहे।

बाहरी उपद्रवी जीव-जन्तु, एवं कीटाणु से बचाव के लिए भी उपाय करने चाहिए। मच्छरों के प्रवेश को रोकने हेतु दरवाजे तथा खिड़कियों पर जालीदार आवरण होना चाहिए। पुराने ईंधन लकड़ी, उपलें, लकड़ी का कोयला, पत्थर का कोयला, तरल ईंधन की जगह पर आज गैस या विद्युत का ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। कई विद्युत से चलने वाले उपकरण जैसे ग्राईंडर-मिक्सर, फ्रिज, चिमनी (धुआँ निष्कासन यंत्र) ओवन, हॉट केस, सैंडवीच मेकर, आदि रसोई की शान बने हुए हैं। कुकिंग गैस एवं प्रेशर कूकर ने तो रसोई घर की सारी समस्यायें ही हल कर दी हैं परन्तु इनके साथ आपको लापरवाही न करने के लिए भी सर्तक कर दिया है छोटी सी लापरवाही भी दुर्घटना का कारण कन सकती है।

वास्तुशास्त्र और रसोईघर

आग्नेय दिशा, जो दक्षिण और पूर्व दिशा के बीच आती है और इसके स्वामी अग्नि देवता हैं, में भवन या किसी वास्तु का रसोई घर होना चाहिए। यदि किसी कारणवश आग्नेय दिशा में सम्भव न हो सके तो पर्यायी दिशा के तौर पर पूर्व दिशा में बनाना चाहिए। अन्य पर्यायी दिशाओं में पूर्व व आग्नेय दिशा के बीच में या पश्चिम व वायव्य के बीच में रसोई घर बनाया जा सकता है। बहुत आवश्यकता होने पर उत्तर में भी रसोई घर बनाया जा सकता है। इसके अलावा और किसी अन्य दिशाओं में रसोई बनाई जाए तो अच्छे फल प्राप्त नहीं होते हैं जैसे रसोई घर ईशान एवं वायव्य में होने से खान-पान के खर्चे में बढ़ोत्तरी होती है और खान-पान की वस्तुओं का अपव्यय होता है। नैऋत्य में रसोई घर बनाने से हानि, परेशानी और अग्नि दुर्घटना का भय हेता है।

रसोईघर का रखरखाव

रसोई घर में गैस बर्नर, गैसस्टोव, ओवन या हॉट केस आदि अग्निकोण या पूर्व में रखने चाहिए। इसके लिए पत्थर की टाँड (स्लैब) गैस चुल्हा रखने का स्लैव या चौकी पूर्व की दीवार

के सहारे बनानी चाहिए ताकि भोजन बनाते समय गृहिणी का मुख पूर्व दिशा की ओर रहे। रसोई घर किसी परिस्थिति में पूजाघर, शयनकक्ष एवं शौचालय या स्नानघर के ऊपर या नीचे नहीं बनाना चाहिए।

रसोईघर में जलसुविधा

जल संचारण के लिए ईशान दिशा उचित ठहरायी गयी है, इसी कारण वॉश-वेसिन और उपयोग में लाए जाने वाले जल की टूँटी भी ईशान कोण में ही होनी चाहिए। गरमी के दिनों में ठण्डे जल की आवश्यकता को फ्रिज के जल से पूर्ण किया जा सकता है। ऐसे में फ्रिज को पश्चिम दिशा में रखना चाहिए परन्तु ठीक इससे विपरीत गुणों वाले यंत्र हीटर को आग्नेय कोण में ही लगाना चाहिए।

अन्य वस्तुएँ

मिक्सी, ग्राईंडर, टोस्टर, आटा-चावल एवं अन्य उपकरण पश्चिम-उत्तर में, आटा, दाल मसाले एवं अन्य खाद्य सामग्री पश्चिम या दक्षिण में अलमारी बनवा कर उसमें रखने चाहिए। अलमारी या कपाट दो पल्ले वाले होने चाहिए। इसमें काष्ठ (लकड़ी), कांच, जाली आदि आवश्यकतानुसार लगाया जा सकता है, जिसमें दृश्यता, बिल्ली चूहों, बंदरों, आदि से सुरक्षा आदि का ध्यान रखा जा सकता है। अन्य सामान रखने के लिए पश्चिम एवं दक्षिण दिशाओं में दुछत्ती आदि बनवाई जा सकती है। कचरा, कूड़ा, करकट, निष्कासन हेतु जगह नैऋत्य दिशा में बनवानी चाहित। अन्य भारी सामग्रियों को भी नैऋत्य दिशा में रखाना चाहिए। रसोईघर में पानी का निकास मार्ग पूर्व, उत्तर या दिशाओं की ओर रखना चाहिए। इसके लिए दक्षिण दिशा निषिद्ध है, इस दिशा में नाली नहीं बनानी चाहिए।

द्वार विचार

वातायन हेतु रोशनदान, हवादान, गवाक्ष, खिड़कियाँ एवं प्रकाश, धूप, और वायु के औचित्य को ध्यान में रखकर दिशाओं का विचार करना चाहिए। प्रायः इन्हें काष्ठ, लौह, अल्युमिनियम, कांच, एवं जाली द्वारा बनाया जा सकता है परन्तु इन्हें हमेशा दो पल्लों का बनाना चाहिए। पल्ले बाहर की ओर खुलने चाहिए। बरसात के पानी की बौछार से इन्हें बचाने हेतु इनके ऊपर छज्जा आवरण होना चाहिए। रसोईघर के किवाड़ (दरवाजे) भी दो पल्लों के ही होने चाहिए। कपाट अन्दर की ओर खुलने वाले शुभ होते हैं।

अस्पताल का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

शान्तिलाल जैन

निवास योग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं। जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन में निवास करने वाले लोगों को अधिकतम सुविधा प्राप्ति के नियमों, सिद्धांतों तथा प्रविधियों का प्रतिपादन किया जाता है, उस शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं।

आवास प्राणीमात्र की आधारभूत आवश्यकता है, सभी को आवास चाहिए। मनुष्य भवन में जलचर समुद्र, नदी या तालाब के किनारों पर, नभचर घोंसलों, पेड़ों के कोठरों या पुराने खण्डहरों में रहते हैं। वनचर गुफाओं, कन्दराओं या घने जंगलों में और पालतू पशु मानव के आस-पास ही मनुष्य द्वारा बनायी व्यवस्था में रहते हैं। वस्तुतः जीवन जीने के लिए आवास चाहिए। खुला आकाश एवं खुली धरती पर रहने वाले पशु-पक्षी भी अपने बच्चों के जन्म से पहले उनकी सुविधा को ध्यान में रखते हुए उनके लिए सुरक्षित स्थान पर आवास की व्यवस्था करते हैं।

सकारात्मक ऊर्जा, गुरुत्वशक्ति, सौरऊर्जा या चुम्बकीय शक्ति हमें मानसिक शान्ति देती है। सकारात्मक ऊर्जा के कारण ही व्यक्ति का दृष्टि कोण सकारात्मक हो जाता है, किसी भी ऊर्जा को पैदा किया जा सकता है परन्तु प्राकृतिक ऊर्जा ही व्यक्ति के मन और बुद्धि को अधिक ऊर्जावान बनाती है जिससे व्यक्ति की कार्यक्षमता बढ़ती है। वास्तुशास्त्र में भौतिक जीवन में पाँच महाभूतों को कैसे उपयोग में लाया जाए, इसे ध्यान में रखकर ही नियमों एवं सिद्धांतों का विवेचन वं प्रतिपादन किया जाता है। इस ब्रह्माण्ड में सबसे शक्तिशाली प्रकृति है क्योंकि प्रकृति में ही विकास और ह्रास हुआ करता है। प्रकृति की शक्ति उसके वातावरण में तीन प्रकार के बलों में विद्यमान होती है। ये बल हैं– गुरुत्बल, चुम्बकीयबल एवं सौर ऊर्जा।

इन तीनों प्रकार के बलों का उपयोग कर तन, मन एवं जीवन को सक्षम और सन्तुलित बनाने के लिए आवास के जिन नियमों, सिद्धांतों, वादों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया गया है उनके संकलित स्वरूप को ही वास्तुशास्त्र कहते हैं।

किसी भी शास्त्र को शास्त्र तभी कहा जा सकता है जब उसमें कार्यकारणता, अनुकरणीयता, स्थिरता, सूत्रबद्धता, प्रयोजकता एवं सार्वभौमिकता हो। ये सभी मानक बिन्दु वास्तुशास्त्र में उपलब्ध हैं। प्रत्येक मानवीय अनुभव को शास्त्र के रूप में स्थापित होने के लिए आवश्यक है कि वह कार्यकारण संबंध पर आधारित हो, वह अनुकरण करने योग्य हो, वह अपनी मूल संकल्पना और उद्देश्य के बीच स्थिर हो, वह सूत्रों के अनुशासन में उपनिबद्ध हो, उसका कोई कल्याणकारी प्रयोजन हो और वह पूरे विश्व में समान रूप से आचारणीय हो। वास्तुशास्त्र में ये लक्षण ज्यों के त्यों मिलते हैं अतः यह विद्या शास्त्र है।

वास्तुशास्त्र का महत्त्व जन-जीवन में इसकी उपयोगिता के कारण है। इस शास्त्र की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि यह पंच महाभूतों से निर्मित वातावरण के साथ उसका सामंजस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। दर्शन, विज्ञान एवं कला से संबंधित सभी शास्त्र यह मानते हैं कि मानव एवं अन्य प्राणी पंच महाभूतों के सन्तुलन से स्वतः स्फूर्त सा हो जाता है किन्तु इन सभी शास्त्रों में इन पञ्च महाभूतों का संतुलन कैसे बनाया जाय? इसके लिए किन विधियों एवं प्रविधियों का उपयोग किया जाय? इस बारे में वास्तुशास्त्र को छोड़ कर आज तक के सभी ज्ञान एवं विज्ञान मूक दर्शक की तरह दिखलाई देते हैं। वास्तुशास्त्र पाँच भौतिक तत्त्वों का प्राणी के जीवन में कैसे उपयोग किया जाय? और मानव मात्र की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को उन्नत कर उन्हें कैसे स्वतः स्फूर्त किया जाय? इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर अपने नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन एवं विवेचन करता है। अतः इसका महत्त्व एवं मानव जीवन में उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

अस्पताल/नर्सिंग होम–

स्वास्थ्य की रक्षा के निमित उसकी चिकित्सा मनुष्य मात्र की आधारभूत आवश्यकता है। सम्प्रति इसके लिए अस्पताल, नर्सिंग होम, डिस्पेन्सरी एवं क्लीनिक का निर्माण किया जाता है। यदि इनका निर्माण वास्तुशास्त्र के नियमानुसार किया जाए तो डॉक्टर और मरीज़ दोनों को लाभ हो सकता है। आज के समय में पहला प्रश्न यह उठता है कि आखिर अस्पताल की आवश्यकता क्यों है? आज अस्पताल का काम न केवल लोगों की बीमारियाँ ठीक करना है अपितु जन-जन तक एड्स, कैंसर, टाईफॉइड आदि जैसी भयानक बीमारियों के बारें में सही जानकारी पहुँचाना व, इन बीमारियों को फैलने से रोकना भी है। अस्पताल एक ऐसी संस्था है, जो बहुत सारे ग्रुपों के आपसी ताल-मेल से चलाई जाती है। इन ग्रुपों के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं–

१. रोगी राहत ग्रुप जिसमें डॉक्टर, नर्स, फार्मासिस्ट, डाईटीशियन मेडिको-सोशल वर्कर्स आदि आते हैं।

२. इन्वेस्टिगेटिव टीम जिनके अन्तर्गत लैब टेक्नीशियन, रेडियोलॉजी विभाग के टेक्नीशियन, नर्स, पैथोलोजिस्ट, माइक्रोबायोलोजिस्ट, बायोकेमिस्ट एवम् रेडियोलोजिस्ट आदि आते हैं।

३. सपोर्टिव टीम जिनके अन्तर्गत हाउस-कीपिंग स्टाफ, ट्रान्सपोर्ट स्टाफ आदि सहायक आते हैं।

प्रत्येक अस्पताल में मुख्यतः दो डिपार्टमेंट होते हैं–

१. बाह्य रोगी विभाग (ओ. पी. डी.)

२. अन्तः रोगी विभाग

ओ. पी. डी. का अर्थ इस रूप में दिया जा सकता है कि यह विभाग अस्पताल का प्रतिदिन नियमित रूप से चलने वाला विभाग है, जो नियमित रूप में वर्किंग एवं मेडिकल स्टाफ के ताल-मेल द्वारा रोगियों को स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराता है। ओ. पी. डी. विभाग बाह्य रोगियों को पारिवारिक कल्याणकारी स्वास्थ्य से सम्बन्धित सेवाएँ भी उपलब्ध कराता है।

अन्तः रोगी विभाग का अर्थ यह बताया जा सकता है कि यह विभाग रोगियों को अस्पताल में ही इलाज के लिए ठहराता है, कुछ रोगियों का इलाज तो महीनों एवं सालों तक अस्पताल में रहकर ही चलता रहता है।

शल्यक्रिया गृह – मेजर एवं माइनर, अस्पताल के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। इनकी स्थापना अन्य विभागों से अलग की जाती है। शल्यगृह की स्वच्छता, साफ-सफाई, रख-रखाव का खास ध्यान रखा जाता है। इस स्थान को कीटाणुमुक्त बनाया जाता है। इन सबके अलावा अस्पताल में प्रतीक्षाकक्ष होता है। बड़े-बड़े अस्पतालों में विभिन्न प्रकार की जाँच प्रक्रियाओं के लिए लैब को अलग स्थापित किया जाता है जहाँ रेडियोलोजी, पैथोलोजी माइक्रोबायोलोजी, हिमेटोलोजी, बायो-केमिस्ट्री एवं हिस्टो-पैथोलोजी जैसी लैबों की स्थापना की जाती है। इन सबके अतिरिक्त केजुयल्टी, मॉर्चुअरी, रसोईघर, अल्पाहार गृह, छात्रावास, लॉन्डरी, सी. एस. एस. डी., पावर स्टेशन, जेनेरेटर, कम्यूनिटी सेन्टर आदि को भी जगह दी जाती है। **"शरीरं व्याधिमन्दिरम्"** आयुर्वेद के

इस कथन के अनुसार यह शरीर व्याधियों का घर है। अतः समय-समय पर होने वाली विभिन्न व्याधियों की समुचित चिकित्सा द्वारा शरीर रक्षा एवं उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति मानव मात्र के लिए परमावश्यक है। इस हेतु आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न स्थानों में चिकित्सा केन्द्र, दवाखाना, नर्सिंग होम एवं क्लीनिक आदि का निर्माण किया जाता है। इन चिकित्सालयों का निर्माण यदि वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तानुरूप किया जाय तो एक ओर जहाँ चिकित्सक अपनी पूरी क्षमता के अनुसार मनोयोगपूर्वक कार्य कर रोग के निदान के प्रति तेज़ी से बढ़ता है वहीं रोगग्रस्त व्यक्ति अतिशीघ्र रोगमुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ करता है। अतः विविध प्रकार के चिकित्सा केन्द्रों के निर्माण हेतु वास्तुशास्त्र के नियमों का यथा संभव पालन करना चाहिए जो इस प्रकार हैं–

- इसके लिए भूखण्ड बड़ा होना चाहिए। उसकी गुणवत्ता, समीपवर्ती मार्ग एवं आसपास के वातावरण का विचार सामान्य नियमानुसार करना चाहिए।
- भूखण्ड का आकार, वेध एवं ढलान का विचार व्यावसायिक भवन निर्माण के नियमानुसार किया जाता है।
- अस्पताल/नर्सिंग होम का मुख्य द्वार यथा सम्भव पूर्व या उत्तर में रखना चाहिए। दक्षिण में द्वार कदापि नहीं रखना चाहिए।
- पूर्वीद्वार में द्वार के बायीं ओर तथा उत्तरीद्वार में द्वार के दाहिनी ओर रिसेप्शन या कैश काउन्टर बनाने चाहिए।
- कुआँ, बोरिंग या अण्डरग्राउण्ड टेंक या ओवरहेड टेंक तथा जल-मल की निकासी की व्यवस्था सामान्य नियमानुसार होनी चाहिए।
- यदि अस्पताल का भवन दो या तीन खण्डों में हो तो पूर्व या उत्तर का भाग खुला रहना चाहिए।
- अस्पताल का मध्यभाग खुला रहना चाहिए और वह साफ-सुथरा होना चाहिए।
- इसका आपातकालीन वॉर्ड पूर्वीद्वार होने पर द्वार से दाहिनी ओर तथा उत्तरीद्वार होने पर द्वार से बायीं ओर बनना चाहिए। आवश्यकतानुसार यह वॉर्ड वायव्य के समीप में उत्तर या पूर्व में भी बनाया जा सकता है।

- इसमें गहन चिकित्सा कक्ष वायव्य में बनाना चाहिए।
- इसमें प्रसूति वॉर्ड ईशान एवं पूर्व के बीच में और यदि ऐसा संभव न हो तो उत्तर या पूर्व में बनना चाहिए।
- इसमें शल्य चिकित्सा विभाग एवं ऑपरेशन थियेटर पश्चिम में बनना अच्छा होता है। आवश्यकतानुसार वायव्य और उसके समीप उत्तर या पश्चिम में भी ऑपरेशन थियेटर बनाया जा सकता है।
- नैऋत्य में कोई वॉर्ड नहीं बनना चाहिए। इस दिशा में केवल भण्डार, रिसर्च यूनिट या लैबोरेटरी बनायी जा सकती है।
- एक्सरे मशीन, सी. टी. स्कैन, फिज़ियो थैरेपी एवं अन्य विद्युत उपकरणों को आग्नेय कोण में या उसके आस-पास रखना चाहिए।
- रोगियों को देखने के कमरे या बाह्य चिकित्सा विभाग जिसे ओ. पी. डी. कहते हैं, वह पूर्व या उत्तर की ओर बनना चाहिए।
- हृदय रोग विभाग एवं क्षय रोग विभाग पूर्व में या इसके आस-पास और मनोरोग विभाग पश्चिम में बनना चाहिए।
- रोगियों के कमरे वायव्य दिशा में सर्वोत्तम, दक्षिण में उत्तम और अन्य दिशाओं में सामान्य होते हैं।
- रोगियों के कमरों में पलंग इस प्रकार लगाने चाहिए कि उनके सिरहाने उत्तर में न हो।
- मुर्दाघर या पोस्टमार्टम का कमरा दक्षिण में बनना चाहिए।
- अस्पताल परिसर में स्टाफ क्वाटर पश्चिमी भाग में बनाने चाहिए।
- परिसर में मन्दिर या पूजास्थल बनना हो तो ईशान, पूर्व या उत्तर में बनाना चाहिए।
- भवन में पार्टिको, पार्किंग की व्यवस्था, व्यावसायिक परिसर के अनुसार करनी चाहिए।

- मरीज़ों के जनरल एवं प्राईवेट वार्ड के कमरों की दीवारों पर सफेद, हल्का हरा या नीला रंग करना चाहिए।
- मरीज़ों को ऊपर-नीचे ले जाने की लिफ्ट मध्य भाग में नहीं लगानी चाहिए। यह पश्चिम पूर्व, या उत्तर में शुभ होती है।
- डिस्पेन्सरी या केमिस्ट की दुकान बाह्य चिकित्सा विभाग के पूर्व भाग में बनानी चाहिए।
- रोगियों को लाने, ले जाने के लिए एम्बुलेन्स की व्यवस्था परिसर के वायव्य, पूर्व या उत्तर में करनी चाहिए।
- सीढ़ियाँ पश्चिम, नैऋत्य, आग्नेय या वायव्य में बनायी जा सकती है।
- परिसर में खाने-पीने के लिए कैन्टीन आग्नेय या पूर्व दिशा में बनानी चाहिए।
- अस्पताल में नर्सों का हॉस्टल वायव्य या उत्तर के बीच में और डॉक्टरों का हॉस्टल पश्चिम या दक्षिण में बनाना चाहिए।

डिस्पेन्सरी/क्लीनिक

सामान्य रोगियों को देखने और उनकी चिकित्सा के लिए डिस्पेन्सरी/क्लीनिक गली, मोहल्ले एवं बाज़ार में सुविधानुसार बनाये जाते हैं। इनमें एक या एकाधिक चिकित्सक अपने कम्पाउंडर एवं नर्सों की सहायता से रोगियों को देखकर उनकी चिकित्सा करते हैं।

डिस्पेन्सरी/क्लीनिक बनाते समय इन वास्तु नियमों का उपयोग करना चाहिए-

- भूमि, भूखण्ड एवं ढलान आदि का विचार व्यावसायिक वास्तु के अनुसार करना चाहिए।
- डिस्पेन्सरी/क्लीनिक का द्वार दक्षिण में नहीं होना चाहिए। पूर्व, उत्तर एवं ईशान में द्वार सर्वोत्तम होता है और अन्य दिशाओं में द्वार साधारण माना जाता है।
- इसका द्वार पूर्व में हो तो बायीं ओर रिसेप्शन और यदि द्वार उत्तर में हो तो दाहिनी ओर रिसेप्शन काउन्टर बनाना चाहिए।
- पूर्व में द्वार होने पर दाहिनी ओर और उत्तर में द्वार होने पर बायीं ओर प्रतीक्षालय बनाना चाहिए।

- डिस्पेन्सरी के पश्चिम या दक्षिण में चिकित्सक को पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठना चाहिए।
- विद्युत उपकरण, जनरेटर एवं इन्वर्टर आदि आग्नेय कोण में या उसके आसपास रखने चाहिए।
- मरीज़ों को देखने की टेबल वायव्य या पश्चिम में लगानी चाहिए।
- मरीज़ों की मरहम-पट्टी या फर्स्टएड की व्यवस्था उत्तर एवं ईशान के मध्य करनी चाहिए।
- डिस्पेन्सरी/क्लीनिक में अन्य व्यवस्थाएँ दुकान/शोरूम के लिए बतलाये गए नियमों के अनुसार की जा सकती है।

अस्पताल के वास्तु का सबसे प्रथम चरण एक अनुकूल एवं पर्याप्त स्थान का चुनाव करना है। इसके लिए मेन रोड के पास चुना गया स्थान सबसे उचित है। इस प्रकार अस्पताल सभी के लिए आसानी से उपलब्ध होता है। उत्तर-पूर्व अथवा ईशान कोण अस्पताल के लिए सर्वोत्तम दिशा है। यदि यह दिशा उपलब्ध न हो तो, इसके बजाय पूर्व या उत्तरमुखी दिशा भी ली जा सकती है। कभी-कभी ईशान, उत्तर या पूर्व मुखी दिशाओं पर भी स्थान नहीं मिलता, तो पश्चिम मुखी या दक्षिण दिशा से ही काम चलाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पश्चिम मुखी साइड, दक्षिण मुखी साइड से ज्यादा अनुकूल होती है। जिस भूमि में चारों दिशाएँ बराबर हों यह अस्पताल के निर्माण के लिए अत्यन्त उचित है। एक चौकोर भूमि में प्रकृति के मूलभूत तत्त्व पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश संतुलन में पाए जाते हैं।

यदि एक आयताकार भूमि का चुनाव किया जाए तो उसकी लम्बाई, उसकी चौड़ाई की दुगुनी से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। एक बार उपयुक्त भूमि का चुनाव हो जाए, उसके बाद अस्पताल का निर्माण दूसरा चरण माना जाता है। भूमि की चारों दिशाओं की सीमा की ओर से १/९ हिस्सा खाली छोड़ना चाहिए इस खाली स्थान को **पाएसाचा** कहा जाता है। यह खुली जगह वाहन व्यवहार, ट्राली, स्ट्रेचर आदि के लिए छोड़ी जाती है।

आइए मान के चलें कि अस्पताल में बेसमेंट और ग्राउन्ड फ्लोर के अतिरिक्त तीन और फ्लोर हैं। मानसार के अनुसार विभिन्न ऊँचाइयों को विभिन्न नाम दिए गए हैं। मानसार के अनुसार

उचाई और चौडाई का एक व्यवस्थित अनुपात होना चाहिए। इसी आधार पर मानसार के निम्न प्रकार के नाम दिये। यथा–

१.	सन्तिका	– जहाँ चौड़ाई और ऊँचाई बराबर होती है।
२.	पौश्विका	– ऊँचाई चौड़ाई के सवागुना अधिक होती है अर्थात् ऊँचाई = १.२५ × चौड़ाई।
३.	जयदा	– ऊँचाई चौड़ाई के डेढ़ गुना अधिक होती है अर्थात् ऊँचाई = १.५० × चौड़ाई।
४.	सर्वकामिका अथवा धनदा	– ऊँचाई चौड़ाई के ड्यूढ़ा अधिक होती है अर्थात् ऊँचाई = १.७५ × चौड़ाई।
५.	अद्‌भुत	– ऊँचाई, चौड़ाई की दुगुनी होती है अर्थात् ऊँचाई = २ × चौड़ाई।

बेसमेन्ट का उपयोग कार पार्किंग या अन्य वाहन पार्किंग के लिए किया जा सकता है। ग्राउन्ड फ्लोर में आने वाले विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं– चेयरमैन का कमरा, फारमेसी, रिसेप्शन, केजुयल्टी अथवा इमरजेन्सी, माइनर शल्यक्रिया गृह, ई. सी. जी., ऑडियोमेट्री, एक्सरे और फीज़ियोथेरेपी कक्ष, सलाह कक्ष, लॉन्डरी, अल्पाहार गृह एवं रसोईघर, क्लीनिकल लैब, अल्ट्रासाउन्ड रूप। चेयनमैन एवं अन्य डायरेक्टरों का कमरा, क्लीनिकल और अल्ट्रासाउन्ड लैब का निर्माण नैॠत्य दिशा में अर्थात् दक्षिण–पश्चिम में किया जाना चाहिए। इस दिशा के अतिरिक्त, दक्षिण अथवा पश्चिम दिशा में भी इनको जगह दी जा सकती है। ग्राउन्ड फ्लोर के आग्नेय अथवा दक्षिणी–पूर्व दिशा में रसोईघर, अल्पाहार गृह, जेनेरेटर एवं प्लान्ट रूम होने चाहिए। एलीवेटर, पायखाना, लॉन्डरी एवं शौचालय को वायव्य दिशा में होना चाहिए। उत्तर से दक्षिण की ओर का मध्य, पूर्व से पश्चिम की ओर की चौड़ाई अथवा लम्बाई का १/९ भाग खुला छोड़ देना चाहिए। जिससे डॉक्टरों, रोगियों, व्हील चेयर आदि के चलने के लिए सुविधा हो। केजुएल्टी एवं माइनर शल्यक्रिया गृह अस्पताल के प्रमुख हिस्से हैं इसीलिए इनका निर्माण ईशान अर्थात् उत्तर–पश्चिम दिशा में होना चाहिए ताकि मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही इन तक आसानी से पहुँचा जा सके।

प्रथम फ्लोर पर निम्नलिखित कक्षों का निर्माण किया जा सकता है–

मेजर एवं माइनर ऑपरेशन थियेटर अथवा शल्यक्रिया कक्ष, आई. सी. यू. अथवा इन्टेन्सिव केयर यूनिट, पोस्ट ऑपरेटिव रूम, रिकवरी रूम, सी. एस. एस. डी. अर्थात् सेन्ट्रल स्नेराइल सप्लाइ डिपार्टमेन्ट, ऑपरेशन कक्ष का स्टोर, नर एवं नारियों के लिए शौचालय, एन्डोस्कोपी कक्ष, माइनर ओ. पी. डी. से सम्बन्धित कक्षों का निर्माण किया जा सकता है। एन्डोस्कोपी कक्ष, माइनर ओ. पी. डी. उत्तर में तथा, शौचालय पश्चिम और उत्तरी-पश्चिम दिशा में बनाये जा सकते हैं।

वास्तुशास्त्र की दृष्टि में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान

यह चिकित्सा संस्थान दुनिया के सर्वोत्तम दस अस्पतालों में से एक है। एम्स भारत का प्रथम ऐसा अस्पताल है जिसके केवल नाम से ही रोगी को तसल्ली हो जाती है कि यदि उसका इलाज यहाँ हुआ तो वह जरूर ठीक हो जाएगा। इस अस्पताल में काम करने वाले चिकित्सक भी अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं। इस अस्पताल में इलाज के साथ-साथ डॉक्टर पूरी जाँच-पड़ताल तथा अपनी पूरी तसल्ली करके ही मरीज को डिस्चार्ज करते हैं। एम्स में सफल इलाज के लिए आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ का अनुशासन तथा मैनेजमेंट अत्यधिक व्यवस्थित है। एम्स की लाईब्रेरी अपने आप में अनूठी है। एम्स में पढ़ने वाले छात्र और छात्राओं के लिए हॉस्टल की सुविधाएँ तथा उनकी पढ़ाई का सारा खर्चा सरकार स्वयं उठाती है। इसका कारण यह है कि एम्स में दाखिला पाने के लिए देश के लाखों मेडिकल छात्रों मे होड़ लगी रहती है जिसमें से केवल ३६ छात्रों का चुनाव होता है। अतः ये निश्चित हो जाता है कि एम्स में पढ़ने वाले डॉक्टर सर्वोत्तम होते हैं।

- अस्पताल का परिसर काफी बड़ा है तथा इसका ईशान कोण बढ़ा हुआ है। जो वास्तु शास्त्र की दृष्टि से उत्तम है।
- अस्पताल का पश्चिम और दक्षिण भाग ऊँचा है।
- इस अस्पताल में कुल ८ हॉस्टल हैं जिनमें से ६ हॉस्टल लड़कों के लिए तथा २ हॉस्टल लड़ाकियो के लिए है। इसमें कुल मिलाकर तकरीबन ८५० विद्यार्थी हैं।
- कैश काउन्टर परिसर के पश्चिमी भाग में है।
- सभी बड़े चिकित्सकों के घर तथा एम. डी. का घर परिसर के दक्षिणी एवं नैऋत्य भाग में है।

- अंडरग्राउन्ड पानी की टंकी मुख्य बिल्डिग के पश्चिम मध्य में है जो कि वरुण देवता का स्थान है।
- ओवरहेड पानी की सभी टंकियाँ दक्षिणी हिस्सों में है।
- रोगियों के दाखिले के लिए तथा अन्य पूछताछ का काउन्टर वायव्य कोण में है।
- पार्किंग की सारी व्यवस्था उत्तर में है।
- हार्ट एवं न्यूरोलोजी के विभाग का निर्माण अलग से दक्षिण में है।
- लैब और रिसर्ज तथा टेस्टिंग यूनिट ईशान कोण में है।
- ऑपरेशन थियेटर मुख्य भवन के नैऋत्य में है।
- आई. सी. यू. जिसे इन्टेन्सिव केयर यूनिट भी कहते हैं वह पूर्व मध्य में और ईशान दिशा में है।
- कैंसर के इलाज के लिए भवन बना हुआ है जो कि परिसर के दक्षिण में है। उस भवन के उत्तर और ईशान में रोगियां की जाँच की जाती है। भवन के पश्चिम में कैश काउन्टर है जो भवन के दक्षिण में प्राशासनिक कार्यालय है।
- छात्र और छात्रओं के हॉस्टल परिसर के दक्षिण में है। आग्नेय भाग कटा हुआ है परन्तु ईशान बढ़ा हुआ है।

अतः कह सकते हैं कि इस चिकित्सा संस्थान का अधिकत्तर निर्माण वास्तु शास्त्र के अनुरूप ही है इसी लिए इस संस्थान की ख्याति पूरे विश्व में उत्तरोत्तर बढती जा रही है। आगे भी विश्वास है कि यह संस्थान नये कीर्तिमान स्थापित करेगा।

विद्यालय एवं वास्तु

अखिलेश कुमार शर्मा

विश्व की प्राचीनतम ज्ञान राशि वेद है। वैदिक वाङ्मय भारतीय जीवन दर्शन के उत्कर्ष एवं सांस्कृतिक विरासत की अनुपम मणिमंजूषा है, लेकिन शब्द ब्रह्म के निष्ठावान उपासक ही वैदिक वाङ्मय की उस दिव्य मंजूषा से उन मणि रत्नों का आहरण कर सकते हैं, जिसकी देदीप्यमान एवं जाज्वल्यमान आभा से भारतीय जनमानस अतीत में समृद्ध एवं समुन्नत रहा है और भविष्य में भी समुन्नतर हो सकता है। वैदिक चिंतनधारा विविध रूपिणी एवं बहुमुखी रही है। प्रत्येक मानवीय कार्य क्षेत्र में, युद्ध एवं शांति में, राजनीति एवं प्रशासन व्यवस्था में, संगीत एवं साहित्य में, नृत्य एवं चित्रकला में, वास्तु विद्या अथवा स्थापत्य के निर्माण-विधान में भारतीय चिंतनधारा विकसित हुई और उसने ऐसे नए आयाम तथा आदर्श स्थापित किए हैं जिनकी प्रशंसा सारा संसार मुक्त कंठ से करता है। वैदिक ज्ञान के अनुसार, ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाकर विवेक एवं बुद्धि वैभव से सम्पन्न किया है। जिससे सृष्टि की व्यवस्था और धरती पर उद्भूत जीवों का संरक्षण हो सके। आधुनिक उपभोगवादी एवं सर्वविध सापेक्ष सुविधावादी जीवन पद्धति से उत्कर्ष के लिए विज्ञान ने असंख्य उपादान एवं साधन भूत उपकरण दिए हैं। जीवन को सुखी, सुरक्षित एवं शांतिमय बनाने के लिए जिन-जिन महत्त्वपूर्ण एवं अपरिहार्य उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें निवास हेतु गृह निर्माण सबसे महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक वाङ्मय में वास्तु का सामान्य अर्थ गृह या भवन है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है वह भवन जिसमें मनुष्य निवास करते हैं। जब एक अनियोजित भूखंड को सुनियोजित स्वरूप प्रदान किया जाता है तब वह वास्तु पद से व्यवहृत होता है। अतः भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मंदिर तथा नगरादि ऐसी समस्त रचनाएँ जिनमें मनुष्य वास करते हैं, वास्तु कहलाते हैं। आचार्य चाणक्य ने भी स्वरचित अर्थशास्त्र में इस वास्तु शब्द का प्रयोग अर्थ में ही किया है। उनके मतानुसार तो गृह, क्षेत्र, वाटिका, बाँध, सेतु, प्रत्येक प्रकार का भवन एव निर्माण, तथा तड़ागादि सभी वास्तु हैं।

अतएव वास्तु कला का अर्थ गृह निर्माण कला हो गया और तदनुसार वास्तुशास्त्र का एक मात्र प्रतिपाद्य विषय आवासीय एवं व्यावसायिक भवनों, देवमंदिरों, बाँधों, सेतुओं एवं तड़ागों अर्थात् प्रत्येक तरह के भवन, क्षेत्र, वाटिका आदि की रचना के सिद्धांतों, प्रविधियों, उपायों एवं साधनों की व्याख्या करना है।

हमारे तपस्वी ऋषियों ने योग साधना और तपस्या के उच्च शिखर पर **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। जीव और ब्रह्माण्ड के पारस्परिक संबंध से घटने वाले घटनाक्रम का व्यापक अध्ययन किया तथा पंच महाभूतों से निर्मित प्राणी के जीवन का इन पंच महाभूतों से ही निर्मित इस विराट ब्रह्माण्ड के वातावरण के साथ सामंजस्य कैसे स्थापित हो, इसका भी अध्ययन किया। जिससे व्यक्ति स्वस्थ, सुखी और समृद्ध रहे। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय वास्तुशास्त्र के ऋषियों ने विविध नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड में निवास करने वाले प्राणियों में रचना के धरातल पर तात्विक दृष्टि से एक विशेष प्रकार की समानता है। समस्त प्राणी पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु एवं आकाश) से ही बने हैं और इनके संतुलन से प्राणी में निरंतर सक्रियता एवं स्फूर्ति रहती है तथा असंतुलन से निष्क्रियता बढ़ती है, जिससे जीवन दुःखमय हो जाता है। वास्तुशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यह है कि व्यक्ति अपने आवास में पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश का समुचित प्रबंधन एवं अधिकतम सदुपयोग कैसे करे? जिससे उसका जीवन रोग मुक्त, सुरक्षित एवं सभी प्रकार से सुविधामय हो सके। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पंच महाभूतों के बारे में जानना आवश्य है।

पृथ्वी

संसार में उत्पन्न सभी प्राणियों को मातृवत् आश्रय देने के कारण यह पृथ्वी हमारी माता है तथा विश्व को धारण करने के कारण इसको आधार शक्ति भी कहा गया है। हमारे आहार, विश्राम एवं जीवन की अन्य अधिकतम गतिविधियों का आधार पृथ्वी ही है। पृथ्वी के बिना आवास एवं जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्राणी मात्र का शरीर पंच महाभूतों से बना है और इनमें सबसे बड़ा भाग पृथ्वी तत्व का ही होता है। शरीर में पृथ्वी तत्व के बाद जल, तेज, वायु एवं आकाश के भाग उत्तरोत्तर कम होते जाते हैं। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के आवास में सबसे बड़ा भाग पृथ्वी तत्त्व का होता है।

इस पृथ्वी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गुरुत्व शक्ति एवं चुम्बकीय शक्ति का केन्द्र है। इसी कारण पृथ्वी के घनत्व के अनुरूप भवन के स्थायित्व का ज्ञान किया जा सकता है। अगर

ये शक्तियाँ पृथ्वी में न होती तो भवन निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती थी। किसी भी भूखंड पर भवन निर्माण के लिए पृथ्वी तत्व का विचार हम–भूमि की परीक्षा, मिट्टी की गुणवत्ता, भूमि का ढलान, भूमि का शुभाशुभत्व, शल्योद्धार, भूखंड का चयन, भूखंड का आकार, भूखंड का विस्तार, समीपवर्ती मार्ग एवं वेध आदि के माध्यम से करते हैं।

जल

वनस्पति एवं जीव–जन्तु दोनों ही वर्गों के समुदायों के अस्तित्व को कायम रखने के लिए जल एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व है। पंच महाभूतों में पृथ्वी के बाद जल तत्व ही हमारे जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। दोनों ही वर्गों के लिए जल जीवन का आधार है। जीव–जन्तु और पशु–पक्षी जल पीकर तथा वनस्पति जड़ों द्वारा जल ग्रहण कर जीवित रहती है। पृथ्वी के दो तिहाई भाग पर जल विद्यमान है, जो सागरों, नदियों, झीलों, जलाशयों एवं कुँओं के रूप में पाया जाता है। पृथ्वी पर अधिकतम लोगों का वास ऐसे स्थान पर है जहाँ जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। सागर, नदी एवं झील के किनारों पर बसे नगर एवं बस्तियाँ इस बात की प्रमाण हैं। जल की उपलब्धि एवं जलीय स्रोतों को ध्यान में रखकर ही भवन निर्माण किया जाता है। भवन निर्माण के साथ–साथ भवनवासियों के लिए जल की उपलब्धि हेतु, बोरिंग, नलकूप कुआँ, भूमिगत टंकी, ओवर हैड टंकी एवं नगर विकास एजेंसियों द्वारा उपलब्ध नल आदि जलीय स्रोत हैं।

तेज (अग्नि)

जल के बाद तेज या अग्नि तत्व का क्रम आता है। तेज या अग्नि ही संसार का आधार है। शरीर में जब तक ताप है, तब तक जीवन है और इसके ठंडा पड़ते ही जीवन समाप्त हो जाता है। अग्नि, प्रकाश एवं ताप के रूप में ऊर्जा का संचार होता है। इस विश्व में सूर्य ऊर्जा एवं ऊष्मा का केन्द्र है। इसीलिए सूर्य को जगत की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह पूरे विश्व को केवल ऊर्जा, ऊष्मा एवं प्रकाश ही नहीं देता अपितु इसकी सापेक्षता में पृथ्वी की गति से दिन एवं रात बनते हैं, एवं ऋतुओं का परिवर्तन होता है। इसीलिए भवन निर्माण करते समय सूर्य के प्रकाश, ताप, ऊष्मा तथा ऊर्जा की समुचित प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए भूखंड भी स्थिति में विचार के साथ–साथ द्वार, बरामदा, रसोईघर, खिड़कियों, झरोखों तथा खुले स्थान का विचार अग्नि तत्व की समुचित उपलब्धि के लिए किया जाता है।

वायु

इस जगत के प्राणियों के जीवन के लिए जल के समान वायु भी महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी पर न केवल स्थल, नभ एवं जलचर अपितु पेड़–पौधे व वनस्पति भी वायु के सहारे जीवित रहते हैं।

अगर पृथ्वी वायुविहीन हो तो ऐसी वायुशून्य पृथ्वी पर न बादल होते, न वर्षा होती, न जल प्रवाह होता और न सांस लेने के लिए वायु मिलती। वायुमंडल की ओजोन गैस की ऊपरी परत सूर्य की पराबैगनी किरणों को सोख लेती है जिससे पृथ्वी पर पड़ने वाले भयंकर ताप से जीवन की रक्षा होती है। मानव शरीर में प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान नामक पाँच प्रकार की वायु, शरीर का संचालन करती हैं। जब तक यह वायु शरीर में सक्रिय है, तब तक जीवन है और जब यह शांत हो जाती है तो शरीर भी चरम शांति को प्राप्त कर लेता है। वायु की इस महत्ता को देखते हुए वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों में भवन निर्माण के लिए विशुद्ध वायु के समुचित आवागमन के लिए भूखंड के आसपास के वातावरण, खुली जगह, खिड़कियों, दरवाजों तथा छत की ऊँचाई आदि के विचार के साथ-साथ विशुद्ध वायु की प्राप्ति के लिए पर्यावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वृक्षारोपण का विचार भी किया गया है। जिससे भवन-निर्माण के उपरांत घर के निवासियों को वायु तत्व का शुद्ध और संतुलित लाभ मिल सके।

आकाश

चारों महाभूतों को व्याप्त करके रहने वाले आकाश तत्व का अपना विशेष महत्त्व है। आकाश स्वयं स्थान नहीं घेरता अपितु अन्य समस्त वस्तुओं को अपने में स्थान देता है। अतः अवकाश प्रदान करना आकाश का गुण है। सबको ठहरने के लिए आकाश ही स्थान देता है, चाहे वे स्थूलभूत हो या उनके विकार। चारों भूत और चारों भूतों के कार्य आकाश में ही होते हैं। इस ब्रह्मांड में आकाश के कारण ही पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु का समूह एकत्र नहीं हो पाता है। यदि आकाश इनमें अव्यूह रूप में व्यक्त न होता, तो न पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप होता और न ही अगणित लोकान्तर बन पाते। न वृष्टि होती न सृष्टि होती, न ब्रह्मांड होता वस्तुतः कुछ भी नहीं होता क्योंकि प्रत्येक क्रिया या गतिविधि के लिए खाली स्थान चाहिए। भोजन द्वारा प्राप्त खाद्य पदार्थों के पचने के लिए भी पेट में खाली स्थान की आवश्यकता होती है अन्यथा इसके अभाव में जीवन नष्ट हो जाएगा। पेड़-पौधों के तनों के अन्दर भी कुछ रिक्त स्थान होता है जिसके माध्यम से पोषक तत्व पत्तियों तक पहुँचता है। वृक्षों को बढ़ने के लिए भी खुली जगह की आवश्यकता होती है।

जिस प्रकार प्राणी के शरीर के समस्त अंग अपनी-अपनी स्वाभाविक क्रियाएँ आकाश की उपलब्धि एवं सहायता से करते हैं उसी प्रकार भवन के भीतर एवं बाहर समस्त गतिविधियाँ आकाश की व्यवस्थित उपलब्धि से ही चलती है। भवन के अन्दर बातचीत, गाना-बजाना, रोना-धोना, हँसना खेलना और अन्य कार्य करने में आकाश हमारी सहायता करता है। इसी कारण

वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण के सिद्धांतों में भवन के चारों ओर तथा भवन के मध्य खुला स्थान छोड़ने के निर्देश के साथ-साथ एक शाल, द्विशाल, त्रिशाल, चतुःशाल, भवन की ऊँचाई तथा छत की ऊँचाई आदि का विशेष विचार किया जाता है जिससे आकाश तत्व का भवन निर्माण में समुचित उपयोग किया जा सके।

प्राकृतिक शक्तियाँ

प्रकृति शक्तियों का अक्षुण्ण भंडार है। इसकी शक्तियाँ अनन्त है, जिनके द्वारा सृष्टि, विकास, ह्रास एवं प्रलय की प्रक्रिया चलती रहती है। वास्तुशास्त्र प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग भवन निर्माण और उनमें गतिविधियों के संचालन की उन्नत दक्षता के लिए करता है। ये तीन शक्तियाँ हैं।

१. गुरुत्व शक्ति

जिस प्रकार पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप और गंध-ये पाँच गुण होते हैं और इसका विशेष गुण गंध है। उसी प्रकार पृथ्वी में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं। १. चुम्बकीय शक्ति, २. गुरुत्व शक्ति इनमें गुरुत्व शक्ति इसकी विशेष शक्ति है। जिसको गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी कहते हैं। भूमि की यह गुरुत्व शक्ति न केवल अपने ऊपर बनने वाले मकानों को स्थिरता एवं स्थायित्व प्रदान करती है, अपितु यह हमारी समस्त गतिविधियों को गतिशीलता देती है। पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति का उपयोग भवन निर्माण की सामग्री में ही नहीं किया जाता है अपितु भवन निर्माण के लिए प्रयुक्त भूखंड की मिट्टी के घनत्व की जाँच में भी किया जाता है।

२. चुम्बकीय शक्ति

चुम्बकीय शक्ति प्रकृति की वह शक्ति है, जिससे वह पूरे ब्रह्मांड का संचालन करती है। पूरा का पूरा ब्रह्मांड एक चुम्बकीय क्षेत्र है और ब्रह्मांड के सभी ग्रह, नक्षत्र एवं तारों का आपस में चुम्बकीय तरंगों से पारस्परिक संबंध बना हुआ है।

सौर परिवार के अन्य ग्रहों के समान ही पृथ्वी भी एक बहुत बड़ी चुम्बक है। जिस प्रकार चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव, उसी प्रकार पृथ्वी के भी दो ध्रुव होते हैं। पृथ्वी के चुम्बकीय शक्ति और उसके उपयोग की प्रविधि से भारतीय जनता प्राचीनकाल से परिचित थी। इसीलिए हमारे देश में उत्तर की ओर सिरहाना न करके सोने की प्रथा प्रचलित है। पृथ्वी के चुम्बकीय बल का भवन निर्माण में उपयोग करने के लिए वास्तुशास्त्र के कुछ नियम हैं, जिनमें भवन के उत्तर में अधिक खुली जगह छोड़ना, उत्तर की ओर खिड़की, दरवाजे एवं झरोखें

का अधिक होना, उत्तर में जमीन का ढलान होना, उत्तर में भवन की ऊँचाई का कम होना तथा उत्तर में ऊँचे पेड़ या किसी भवन का न होना आदि कुछ प्रसिद्ध नियम हैं।

३. सौर ऊर्जा

पृथ्वी को मिलने वाली ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य है। सौर मंडल में यह ऊर्जा का केन्द्र है। यह अपनी विकिरणों के माध्यम से धरती पर ऊर्जा, (ताप) एवं प्रकाश देकर हमारे जीवन को गतिशील बनाता है। प्रातः सूर्य की किरणों में गरमी कम होती है और इन किरणों से शरीर को पोषक तत्त्व मिलते हैं और ये किरणें वातावरण में विद्यमान विषाणुओं को नष्ट कर देती है।

वास्तुशास्त्र में प्रणेताओं ने सूर्य की विकिरणों के इन गुण धर्मों को भलीभाँति जानकर यह निष्कर्ष दिया कि सूर्य की यह ऊर्जा, जिसमें ऊष्मा एवं प्रकाश अंतर्निहित है, हमारे तन-मन एवं जीवन को न केवल शक्ति और स्फूर्ति ही देती है अपितु हमारी दिनचर्या को संचालित और नियंत्रित भी करती है। इसीलिए उन्होंने निर्मित भवन में सौर ऊर्जा का उपयोग करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण नियमों का प्रतिपादन किया।

प्रातःकाल सूर्य की किरणें हमारे घर आँगन में प्रसारित हो, तो सूर्य किरणों के प्रभाववश घर और उसमें रहने वाले लोगों को इसका पर्याप्त लाभ मिलेगा। इसीलिए भवन की पूर्व दिशा में अधिक खुला भाग छोड़ना, घर के पूर्व में दरवाजा, खिड़की, बरामदा एवं झरोखे बनाना एवं घर के पूर्व में ऊँचे पेड़ न लगाना आदि नियम बतलाए गए हैं। अपराह्न एवं सायंकाल के समय सूर्य की गर्मी और उससे होने वाली हानि से बचाव के लिए ही पश्चिम में ऊँचे टीले या किसी अन्य मकान का होना और पश्चिम में ऊँचे पेड़ लगाने का विधान किया गया है।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि हमारे ऋषियों एवं मनीषी आचार्यों ने प्रकृति एवं सृष्टि के रहस्यों को आत्मसात् कर हमारे जीवन को प्रकृति की शक्तियों से स्वतः स्फूर्त करने के लिए वास्तुशास्त्र के नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

वास्तु भेद

वास्तु शब्द का अर्थ बसना एवं निवास करना है। जिस भूमि या भवन में लोग रहते हैं या काम करते हैं, उसे वास्तु कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है।

१. आवासीय

२. व्यावसायिक

३. धार्मिक

प्रस्तुत निबन्ध आज के सन्दर्भ में व्यावसायिक वास्तु में आता है परन्तु पहले विद्यालय वास्तु धार्मिक वास्तु का विषय हुआ करता था क्यों कि शिक्षा का कार्य राजा लोग अधिकतर मन्दिरों के माध्यम में अथवा स्वत: भी नि:शुल्क चलाते थे। आज शिक्षा का कार्य एक पूर्ण व्यवसाय हो चुका है अत: इसका विचार व्यवसायिक वास्तु के अन्तर्गत ही किया जायेगा। जिसके आज निम्न भेद किये जा सकते हैं जैसे–

(i) स्कूल

(ii) कॉलेज

(iii) यूनिवर्सिटी

अब हम व्यावसायिक वास्तु के अन्तर्गत शिक्षा संस्थानों के रूप में स्कूल कॉलेज एवं विश्वविद्यालय आदि शिक्षण संस्थानों के लिए भवन निर्माण की विस्तार से चर्चा करेंगे।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास करने में शिक्षा का योगदान सर्वोपरि है। शिक्षा से न केवल ज्ञान मिलता है, अपितु वह व्यक्ति को रोजगार दिलाकर उसको आत्मनिर्भर बनाती है। जीवन में प्रगति एवं उन्नति के लिए शिक्षा के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। शिक्षा संस्थानों–स्कूल व कॉलेज के भवन बनाते समय वास्तु के नियमों का ध्यान रखना चाहिए।

भूखंड का चयन

स्कूल व कॉलेज के लिए भवनों का निर्माण करने के लिए बड़ा भूखंड लेना चाहिए। भवन चाहे किसी भी प्रकार का बनाना हो, वह चाहे आवासीय हो, व्यावसायिक हो या धार्मिक हो–उसके लिए भूमि के गुण–दोषों का विचार करना आवश्यक है। भवन निर्माण के लिए भूमि का चयन करते समय उसकी गुणवत्ता का विचार करना चाहिए। जहाँ दोष रहित, चिकनी एवं ठोस मिट्‌टी हो वहाँ पर भवन निर्माण करना चाहिए। वास्तु शास्त्र में मिट्‌टी के गुण–दोषों का विचार उसके रंग, गंध एवं स्वाद आदि के अनुसार किया जाता है। इस आधारों पर वास्तुशास्त्र के आचार्यों ने भूमि को ब्राह्मणी - क्षत्रीया - वैश्या - शूद्रा के रूप में चार श्रेणियों में विभाजित किया है।

विद्यालयादि शिक्षण संस्थानों के लिए ब्राह्मणी भूमि सर्वाधिक उपमुक्त कही गयी है। जिस भूमि का वर्ण श्वेत, स्वाद मधुर, गंध घी के सदृश, कुशायुक्त, स्पर्श करने पर जो स्निग्ध एवं सुखद लगे तथा उत्तर की ओर झूकाव वाली हो उसे ब्राह्मणी भूमि कहते हैं। इस ब्राह्मणी भूमि को सर्व सुखदा कहा गया है। यह भूमि ब्राह्मणों, विद्वानों, शिक्षा एवं आध्यात्मिक साधना में लगे लोगों के

निवास के लिए श्रेष्ठ मानी गई है। इस प्रकार की भूमि मंदिर, मठ, धर्मशाला, न्यायालय, बैंक (वित्तीय संस्थान) तथा शैक्षणिक संस्थानों आदि के निर्माण के लिए भी श्रेष्ठ होती है। इस प्रकार के भवन निर्माण के लिए प्रशस्त भूमि का विवेचन करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने अपनी बृहतसंहिता में बतलाया कि जिस भूमि की मिट्टी अच्छी हो, जिस पर औषधीय, वृक्ष एवं लताएँ उगती हो, जिसकी मिट्टी मधुर, चिकनी, सुगंधित एवं समतल हो और जिस भूमि पर थके-हारे व्यक्ति को बैठने से शांति मिले ऐसी भूमि पर भवन निर्माण करना चाहिए।

भूमि के दोषों का भली-भाँति विचार कर वास्तु शास्त्र के आचार्यों ने निष्कर्ष रूप में बतलाया है कि जिस भूमि में दरारें हों, जिसकी मिट्टी पोली हो, जिसमें चीटियों या दीमक के बिल हों, कब्रिस्तान हो, शल्य हो, दलदल हो, या बहुत ऊँची-नीची हो, ऐसी भूमि पर भूलकर भी भवन निर्माण नहीं करना चाहिए। वस्तुतः यह सभी दोष मिट्टी के घनत्व (ठोसपन) को कमजोर करते है और यदि जमीन में ठोसपन कम हो तो उस पर बना हुआ भवन टिकाऊ नहीं होगा। अतः ऐसी भूमि पर शिक्षण संस्थानों के लिए भवन का निर्माण नहीं करना चाहिए।

भूमि परीक्षण–जिस भूखंड पर भवन निर्माण करना हो, उसकी मिट्टी ठोस है या नहीं? इस बात की भली-भाँति जाँच कर लेनी चाहिए। प्राचीन वास्तु ग्रंथों में मिट्टी के घनत्व की परीक्षा करने की अनके विधियाँ बतलाई गई हैं। जिनमें से महत्त्वपूर्ण एवं सरल विधि इस प्रकार है। विश्वकर्मा प्रकाश में बतलाया गया है कि भूस्वामी के हाथ की नाम से भूखंड के बीच में एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसको उसी मिट्टी से भर देना चाहिए। यदि गड्ढे को अच्छी तरह भरने के बाद भी मिट्टी बच जाए, तो वह भूमि भवन निर्माण के लिए उत्तम होती है। यदि उस मिट्टी से गड्ढा भर जाए और मिट्टी न बचे तो भूमि मध्यम होती है। और यदि गड्ढा भरने में मिट्टी कम पड़ जाए तो उस भूमि पर भवन निर्माण नहीं करना चाहिए। शिक्षण संस्थान के लिए भवन निर्माण से पूर्व इस प्रकार भूमि परीक्षण कर लेना चाहिए।

शल्य (हड्ढी) विचार–जिस जमीन में दीपक, बिल, भूसा, कपड़ा, राख, कौड़ी, जली लकड़ी, खोपड़ी, खप्पर एवं हड्डी हो वहाँ किसी भी प्रकार का भवन निर्माण नहीं करना चाहिए। जिस भूमि में शल्य हो उस पर बना हुआ भवन कितना ही भव्य, विस्तृत एवं आलीशान क्यों न हो, उसमें रहने वाले लोगों को शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कष्टों को झेलना पड़ता है। इसलिए जमीन में दबे हुए शल्य को निकालकर ही भवन निर्माण करना चाहिए।

शल्योद्धार–जमीन के भीतर गड़े हुए शल्य को निकालने की विधि को शल्योद्धार कहते हैं। शल्योद्धार का सर्वोत्तम उपाय यह है कि भूखंड की मिट्टी ३.५ हाथ की गहराई तक खोदकर

निकाल देनी चाहिए और उसमें अच्छी मिट्टी भरकर मकान बनाना चाहिए। इससे शल्य दूर हो जाता है क्योंकि एक पुरुष अर्थात् ३.५ हाथ से नीचे शल्य रहने पर वह दोष दायक नहीं होता है। **"पुरुषाध: स्थितं शल्यं न वास्तौ दोषदं भवेत्।"** शिक्षण संस्थानों के लिए भवन निर्माण से पूर्व शल्योद्धार कर लेना चाहिए क्योंकि शल्योद्धार की यह प्रक्रिया भवन निर्माण से पूर्व जितनी सरल है, भवन बनने के बाद उतनी ही कठिन है। वास्तुशास्त्र के अनुसार आवासीय एवं व्यावसायिक भूखंड का ढलान पूर्व एवं उत्तर की ओर शुभ तथा पश्चिम एवं दक्षिण की ओर अशुभ होता है। इसके फल का विवेचन करते हुए आचार्यों ने कहा है कि जिस भूमि का ढलान पूर्व की ओर हो वह विकास एवं वृद्धिदायक होती है। जिसका ढलान उत्तर की ओर हो वह धनधान्य देती है। जिसका ढलान पश्चिम की ओर हो वह नाशक और जिसका ढलान दक्षिण की ओर हो वह व्याधि एवं मृत्युदायक होती है। अत: शिक्षण संस्थानों स्कूल कॉलेज के भूखंड का ढलान पूर्व या उत्तर की ओर होना चाहिए।

छोटे-मध्यम एव उच्य शिक्षण संस्थानों के भवन निर्माण के लिए उच्च श्रेणी के भूखंड होने चाहिए जिनकी विशेषताएँ निम्न प्रकार से कही जा सकती हैं–

– जिस भूखंड का आकार आयताकार या वर्गाकार हो, चारों ओर मार्ग हों, प्रत्येक कोना समकोण हो। भूमि का ढलान पूर्व या उत्तर में हो, वेध न हो और पश्चिम या दक्षिण अथवा दोनों दिशाओं में पहाड़, चट्टान, टीले, ऊँचे भवन या ऊँचे वृक्ष हों।

– जिस भूखंड का आकार वर्गाकार, वृत्ताकार या आयताकार हो, जिसके पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम में सड़क हो, पश्चिम की सड़क कुछ ऊँची हो। ईशान में विस्तार या वेध हो और आस-पास का वातावरण अनुकूल हो।

– जिस भूखंड का आकार शुभ हो, उसके पूर्व एवं उत्तर में सड़क हो, पूर्व या उत्तर में वेध हो, दक्षिण व पश्चिम भाग ऊँचा हो, पूर्व में ढलान हो और पूर्व या उत्तर में नदी, तालाब, बावड़ी या जलाशय हो।

अब हम वास्तु के अनुसार विद्यालय की संरचना पर चर्चा करेंगे।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास करने में शिक्षा का योगदान सर्वोपरि है। शिक्षा से न केवल ज्ञान मिलता है, अपितु वह व्यक्ति को रोजगार दिलाकर उसको आत्मनिर्भर भी बनाती है। जीवन में प्रगति एवं उन्नति के लिए शिक्षा के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। अगर विद्यालय का निर्माण वास्तु के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हुआ है तो वहाँ पर न तो शिक्षक ही सही

ढंग से पढ़ा पाएँगे और न ही विद्यार्थी सही ढंग से शिक्षा ग्रहण कर पाएँगे। इस प्रकार से समाज एवं देश का ही नुकसान होगा।

चित्र न. १
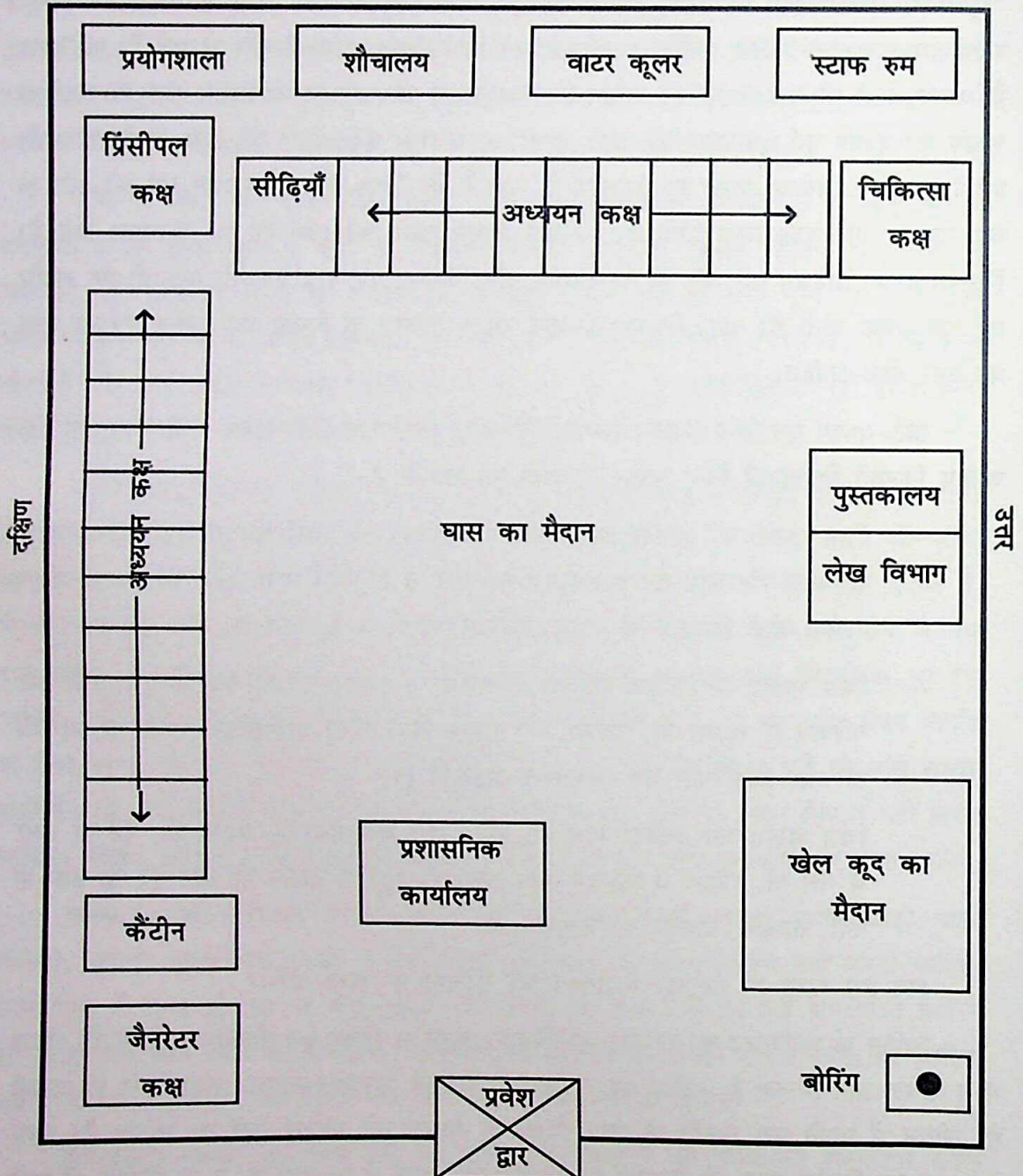
इस नक्श में प्रवेश द्वार पूर्व दिशा में है जो सभी प्रकार से उत्तम है। इसका प्रवेश द्वार उत्तर में होने पर भी यह उत्तम प्रवेश होता।

– इसमें बोरिंग का स्थान उत्तर-पूर्व (ईशान) में जो कि सभी प्रकार से उत्तम है। जो कि हर प्रकार से इस विद्यालय में प्रगति। वृद्धि को दर्शाता है।

– जैनरेटर कक्ष आग्नेय में है, जो कि हर प्रकार से श्रेष्ठ है क्योंकि यह स्थान अग्नि का है।

– कैंटीन भी आग्नेय में अपनी दिशा के अनुरूप ही है।

– प्रशासनिक कार्यालय पूर्व दिशा में है, जो वास्तु के अनुसार अपनी दिशा में ही है। इस स्थान पर प्रशासनिक कार्यालय होने से सभी प्रशासनिक कार्य सही प्रकार से होंगे।

– खेद-कूद का मैदान उत्तर-पूर्व (ईशान) में है। क्योंकि योग एवं शारीरिक व्यायाम के लिए यह दिशा उत्तम है।

– पुस्तकालय उत्तर दिशा में है। पुस्तकालय में पुस्तकों की अलमारियाँ दक्षिण-पूर्व एवं पश्चिम में हो और उत्तर-पूर्व का क्षेत्र पढ़ने तथा घूमने-फिरने के लिए है।

– चिकित्सा कक्ष वायव्य दिशा में है। वायव्य दिशा में बने हुए निर्माण में वायु के समान आवागमन बना रहता है। इसलिए इस कक्ष में भी मरीज ज्यादा देर तक नहीं रहेगा। इसलिए यह श्रेष्ठ है।

– स्टाफ कमरा वायव्य दिशा में अपने कार्य के अनुरूप बना हुआ है। क्योंकि स्टाफ रूम में शिक्षकों का आवागमन बना रहना चाहिए।

– विद्यार्थियों के पानी पीने के लिए वाटर कूलर पश्चिम में लगाया गया है। जो कि जल देवता वरुण का स्थान है।

– प्रयोगशाला का निर्माण अपनी दिशा अर्थात् नैऋत्य में किया गया है। इस प्रकार इसका निर्माण इस स्थान पर उत्तम है।

- प्रधानाचार्य का कमरा नैऋत्य में बनाया गया है। प्रधानाचार्य का अपने कमरे में बैठने का स्थान पूर्वाभिमुखी या उत्तराभिमुखी होगा। जो कि वास्तु के अनुरूप है अतः यहाँ पर इस कक्ष का निर्माण उत्तम है।
- अध्ययन कक्षों का निर्माण दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में किया गया है। जो कि वास्तु के अनुरूप है। इनमें इन कमरों का दरवाजा उत्तर या पूर्व दिशा में होगा। इसमें श्यामपट्ट (ब्लैक बोर्ड) भी उत्तर या पूर्व की दीवार पर लगेगा, जिससे कि पढ़ते समय विद्यार्थियों का मुख उत्तर या पूर्व दिशा की ओर होगा। जो कि हर प्रकार से उत्तम है।
- लेखा विभाग अपने कुबेर की दिशा उत्तर में बनाया गया है जो कि हर प्रकार से श्रेष्ठ है। इस प्रकार के निर्माण से विद्यालय में कभी धन की कमी नहीं होगी।
- बीच में घास का मैदान अर्थात् ब्रह्म स्थान को खुला रखा गया है। जो कि वास्तु के अनुरूप है और हर प्रकार से वृद्धिदायक है।
- किसी भी निर्माण में, व्यक्ति के बैठने के स्थान के ऊपर बीम नहीं होनी चाहिए। क्योंकि बीम में लगा हुआ सरिया तनाव युक्त होता है जिस कारण बीम में तनाव होता है और इस कारण उसके नीचे बैठे हुए व्यक्ति भी तनाव युक्त हो जाता है। वह व्यक्ति सही प्रकार से कार्य नहीं कर पाता है।
- अगर विद्यालय की भूमि, अपनी गुणवत्ता एवं ढलान के अनुरूप है तो इस प्रकार का विद्यालय निर्माण सर्वश्रेष्ठ है।
- इस नक्शे पर विचार करने पर पता चलता है कि यहाँ हर स्थान पर हुआ निर्माण वास्तु के अनुरूप है। लेकिन इसका द्वार पश्चिम में होने तथा इसका ढलान भी पश्चिम में होने पर, यह निर्माण यहाँ छात्रों, अध्यापकों को धन हानि एवं रोग दे सकता है।

अतः यह वास्तु के अनुरूप नहीं है। इसलिए इसके द्वार की दिशा अगर बदल सकती हो तो उत्तर या पूर्व की ओर कर लेनी चाहए। अन्यथा यह विद्यालय भवन छात्रों एवं शिक्षकों के लिए ठीक नहीं है।
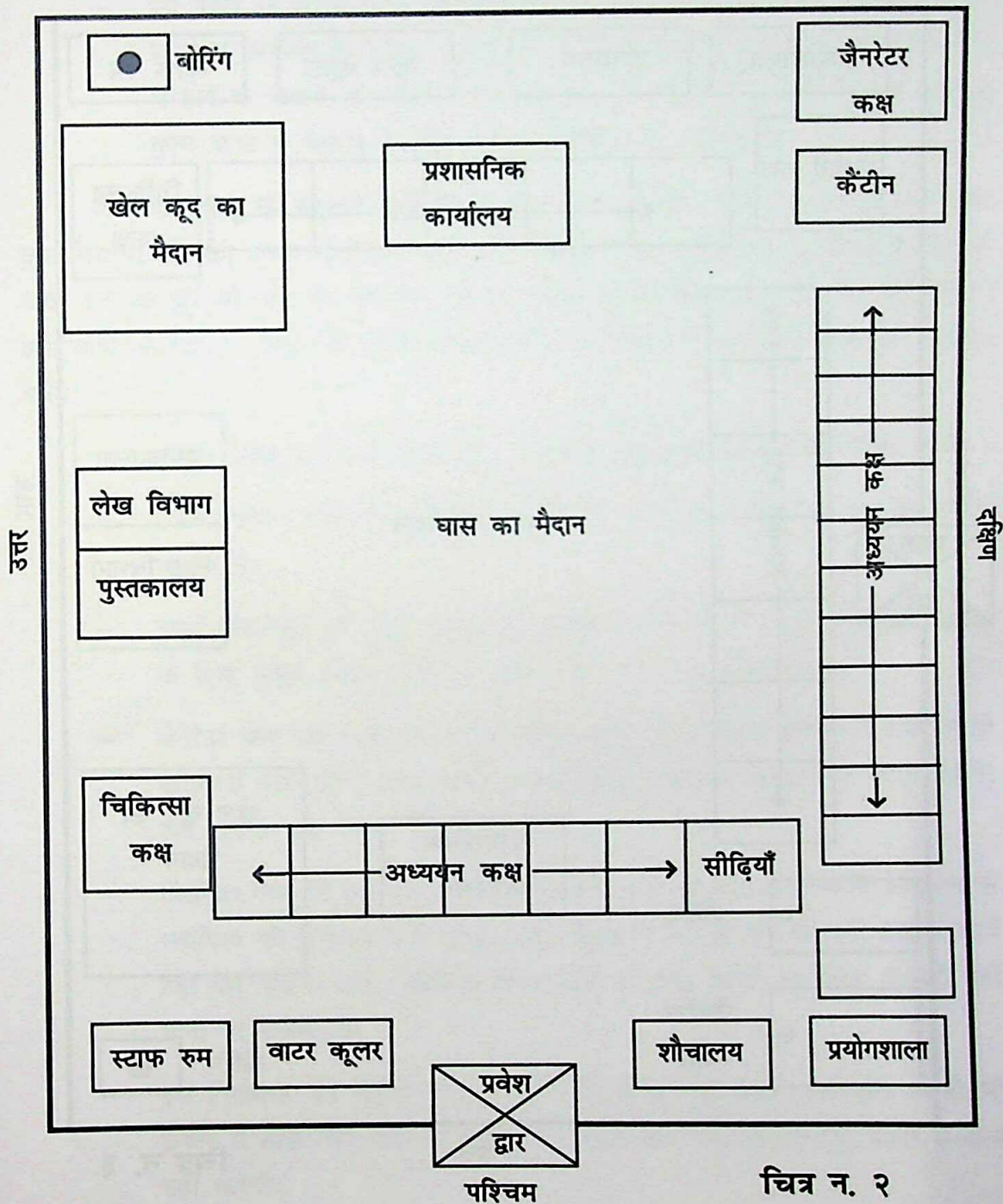
चित्र न. २

अब चित्र न. २ मे दिये गये स्कूल के नक्शे पर विचार करेंगे।
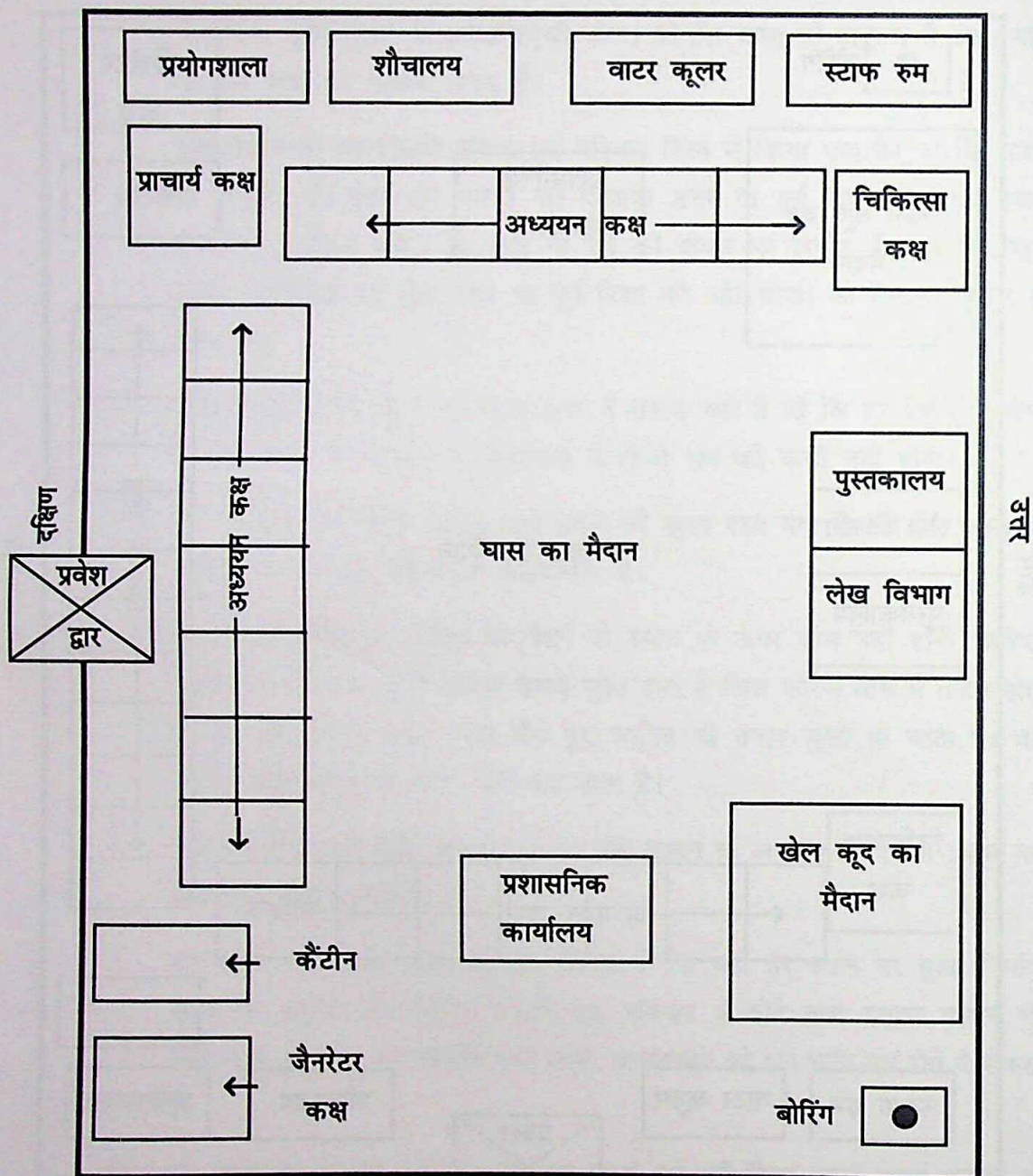
चित्र न. ३

अब चित्र न. ३ में दिए गए नक्शे पर विचार करेंगे।

- इस नक्शे पर विचार करने पर पता चलता है कि यहाँ भी हर स्थान पर हुआ निर्माण वास्तु के अनुरूप है। लेकिन इसका द्वार दक्षिण में होने तथा इसका ढलान भी दक्षिण में होने के कारण, यह निर्माण यहाँ के छात्रों, अध्यापकों को व्याधि, भय एवं मृत्यु तुल्य कष्ट दे सकता है और अध्ययन वाधित कर सवता है।

अतः यह वास्तु के अनुरूप नहीं है और इस कारण शिक्षक सही ढंग से पढ़ा नहीं पाएँगे तथा विद्यार्थी भी सही प्रकार से शिक्षा ग्रहण नही करवाएँगे। अतः इसके द्वार की दिशा एवं ढलान, अगर उत्तर या पूर्व की ओर कर ली जाए, तो यह नक्शा तब सर्वश्रेष्ठ नक्शा होगा जो कि शिक्षकों तथा छात्रों के लिए हर प्रकार से उन्नति कारक होगा। अब चित्र न० ४ में दिए नक्शे का अध्ययन करेंगे।

- इसका प्रवेश द्वार उत्तर दिशा में है। जो कि वास्तु के अनुसार सही दिशा में है।
- इसका बोरिंग उत्तर-पूर्व (ईशान) में जो कि वास्तु के अनुरूप है। जो कि उन्नति कारक है।
- इसमें खेल-कूद का मैदान उत्तर-पूर्व (ईशान) में है जो योग एवं शारीरिक व्यायाम के लिए वास्तु सम्मत दिशा है। अतः यहाँ पर इसका होना शुभ है।
- जैनेरेटर कक्ष इस स्कूल का वायव्य कोण में है। जिस कारण जैनेरेटर में अकारण ही खराबियाँ आती रहेंगी तथा इसका कारण बिजली व्यवस्था अकारण ही बाधित रहेगी। अतः इसका इस दिशा में होना अशुभ है।
- प्रिंसीपल रूम भी इस स्कूल का वायव्य तथा उत्तर के बीच है। जिससे प्रिंसीपल के स्थायित्व की संभावना कम रहेगी। इससे विद्यालय का प्रशासन भी सही तरह से कार्य नहीं कर पाएगा। अतः प्रिंसीपल कमरा यहाँ पर होना किसी भी प्रकार से सही नहीं माना जा सकता है।
- इस विद्यालय की कैंटीन उत्तर दिशा में है। अतः यहाँ कैंटीन का होना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता है। कैंटीन की व्यवस्था भी सही प्रकार से कार्य नहीं करेगी।

पश्चिम
अध्ययन कक्ष
जैनरेटर कक्ष
वाटर कूलर
प्रयोगशाला
प्रिंसीपल कक्ष
चिकित्सा कक्ष
स्टाफ रुम
कैंटीन
दक्षिण
उत्तर
प्रवेश द्वार
पुस्तकालय
लेख विभाग
शौचालय
खेल कूद का मैदान
प्रशासनिक कार्यालय
बोरिंग
सीढ़ियाँ
अध्ययन कक्ष
पूर्व
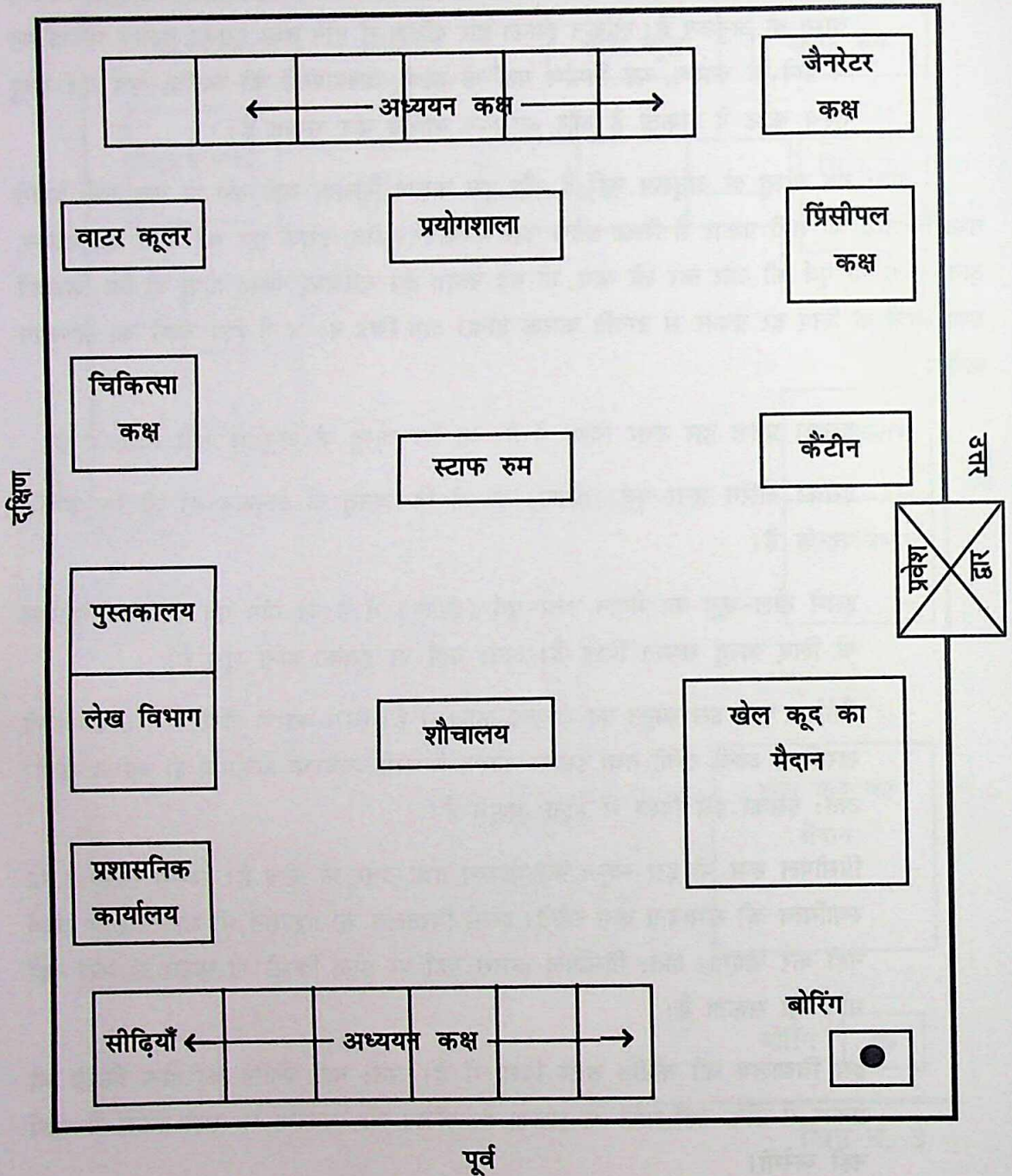
चित्र न. ४

– अध्ययन कक्ष इस विद्यालय में दो जगह पर है। एक पूर्व दिशा में एक पश्चिम दिशा में है। पश्चिम दिशा का निर्माण वास्तु के अनुरूप है लेकिन पूर्व दिशा में निर्माण वास्तु सम्मत नहीं है। यहाँ पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थी ठीक प्रकार से अध्ययन नही कर पाएँगे।

– वाटर कूलर दक्षिण पश्चिम दिशा में लगा हुआ है। अतः यह वास्तु विरुद्ध है।

– चिकित्सा कक्ष दक्षिण दिशा में बना हुआ है। जो कि स्थायित्व को दर्शाता है। यहाँ पर आया हुआ रोगी जल्दी ठीक नहीं होगा। अतः यहाँ पर चिकित्सा कक्ष को होना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं है।

– प्रयोगशाला इस विद्यालय में मध्य से पश्चिम की ओर है जो कि वास्तु सम्मत नहीं है। यहाँ पर प्रयोग करने वाले विद्यार्थी सही प्रकार से प्रयोग नहीं कर पाएँगे तथा गलतियों की संभावना ज्यादा रहेगी। अतः यहाँ पर प्रयोगशाला का होना ठीक नहीं है।

– स्टाफरूम मध्य क्षेत्र में बनाया गया है। जो कि किसी भी प्रकार से ठीक नहीं है। मध्य क्षेत्र (ब्रह्म स्थान) में किसी भी प्रकार का निर्माण अनिष्ट कारी है।

– पुस्तकालय तथा लेखा विभाग अपनी दिशा के विरुद्ध दक्षिण में बनाए गए हैं। ये यहाँ पर ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर पाएँगे। अतः इनका यहाँ पर होना अशुभ है।

– प्रशासनिक कार्यालय पूर्व से थोड़ा दक्षिण की तरफ है। जो कि अपनी दिशा में माना जा सकता है। और यह यहाँ पर भी ठीक प्रकार से कार्य करेगा।

अतः यह कहा जा सकता है कि सबसे प्रथम नक्शे के अलावा अन्य सभी में किसी-न-किसी प्रकार की कमी पाई गई। जिससे कि विद्यार्थियों का किसी-न-किसी प्रकार का नुकसान हो सकता है। अतः विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य के लिए वास्तु सम्मत शिक्षण संस्थान ही बनाना चाहिए, जिससे समाज एवं देश उन्नति की दिशा में अग्रसर होता रहे।

वास्तु में जल विन्यास

गणेशदत्त चतुर्वेदी

भारतीय मनीषियों ने अपने वैदिक शोध एवं चिन्तन के द्वारा मानवमात्र के कल्याणार्थ चारों वेदों के उपवेदों (ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद तथा अथर्ववेद का स्थापत्यवेद) की रचना की। वैदिक वाङ्गमय की हमेशा से यही विशेषता रही है कि जो कुछ भी मानव के लिए कल्याणकारी था उसे कर्म का एक भाग बनाकर उसको जीवन में ढालने का प्रयास किया गया ताकि उसका उपयोग कर मनुष्य अत्यधिक लाभ उठा सके।

जल का महत्व—समस्त ब्रह्माण्ड की रचना पाँच महाभूतों से हुई है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इन पंच महाभूतों में जल का द्वितीय स्थान है। जल शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों से हुई है 'ज' एवं ल। 'ज' अर्थात् जायते अर्थात् समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का कारण तथा 'ल' लीयते अर्थात् समस्त सृष्टि का उसी में लय हो जाना, जल तत्व समस्त सृष्टि को उत्पन्न तथा लय करता है। सृष्टि के आदि में जल ही था और प्रलय के बाद भी जल ही रहता है। इस पृथ्वी पर भी सम्पूर्ण क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग जल ही है और अद्यतन विज्ञान के अनुसार जल की उत्पत्ति गैसीय योग अर्थात् ऑक्सीजन के दो भाग और हाइड्रोजन का एक भाग मिलकर जल का निर्माण करते हैं। जल शुद्धता एवं शीतलता का प्रतीक है। वास्तुशास्त्र में जल की उपलब्धता को ध्यान में रखकर ही भवन, महल, देवालय, नगर, उपनगर एवं महानगरों का निर्माण किया गया है। देवालय के निर्माण के विषय में बृहत्संहिता में बताया गया है कि देवालय का निर्माण उसी स्थान पर करना चाहिए जहाँ पर प्राकृतिक एवं कृत्रिम जल की व्यवस्था हो तथा वह स्थान शान्त, रम्य एवं मनोहर हो।[१]

---

१. सलिलोद्यान युक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च।
स्थानेष्वेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवता।।

बृ. संहिता- प्रसाद लक्षण श्लोक-३

जहाँ पर पहले से जलाशय (कृत्रिम अथवा प्राकृतिक) फल एवं पुष्प का उद्यान हो ऐसे स्थानों पर देवता निवास करते हैं अर्थात् इस प्रकार के स्थान पर देवालय का निर्माण करना चाहिए।[१]

वनों नदियों, पर्वतों एवं झरनों के समीप में तथा बाग-बगीचों के युक्त नगरों के समीप भी देवता रमण करते हैं।

भवन निर्माण करते समय जल की व्यवस्था कहाँ होनी चाहिए इसके विषय में आचार्य रामदैवज्ञ कहते हैं कि-

यदि कुँआ वास्तु (घर) के मध्यभाग में हो तो धननाश, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैऋत्य में मृत्यु, पश्चिम में सम्पत्ति, वायव्यकोण में शत्रु पीड़ा और उत्तर में शुभ होता है।[२]

इसी प्रकार आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के दकार्गलाध्याय में ग्राम, पुर तथा नगर में कूप के शुभाशुभत्व का विचार करते हुए कहा है कि-

यदि गाँव, नगर अथवा पुर के आग्नेय कोण में कूप हो तो उस गाँव या नगर में नित्य अनेक प्रकार का भय होता है। अधिकतर आग लगती है और मनुष्य जलकर मरते हैं। नैऋत्य कोण में कूप हो तो बालकों का क्षय होता है और वायव्य कोण में कुआँ होने से स्त्रियों में भय उत्पन्न होता है। अतः उक्त तीनों दिशाओं को छोड़कर शेष पाँचों दिशाओं में शुभ होता है।[३]

यदि कुआँ का जल गंदला, कड़ुवा, खारा बेस्वाद तथा दुर्गन्ध वाला हो तो उसके जल को निर्मल, मधुर, सुन्दर गन्ध वाला, सुस्वादु तथा अनेक गुणों से युक्त होने के लिए बृहत्संहिता में

---

१. वनोपान्तनदीशैलनिर्झारोपान्तभूमिषु।
रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवस्तु च।।

बृ.सं. प्रसाद लक्षण श्लोक-८

२. कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यावृद्धिः।

बृ.वा.मा. जलराशि. ११५

३. आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत कूपः।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः।।
नैर्ऋत्यकोणे वालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये।
दिक्त्रयमेत्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः।।[३]

बृ.सं. दकार्गल, श्लोक ९७, ९८

आचार्य ने कहा है। कि– अंजन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला, कतक का फल इन सभी औषधियों को एकत्रित करके इसका चूर्ण बनाकर कूप (कूआँ) में डालें। इन औषधियों के मिश्रण से कूप का जल सुस्वादु एवं सुन्दर गंध वाला होता है।[१]

इष्ट कर्म (यज्ञ आदि) एवं पूर्त्त कर्म (वापी, तड़ागादि) का निर्माण कराने से मनुष्य को यश एवं धर्म की वृद्धि के साथ-साथ उत्तम लोक की भी प्राप्ति होती है। इष्ट और पूर्त्त कर्म के विषय में बताया गया है।[२]

जल की उपयोगिता एवं महत्व को ध्यान में रखकर जल भण्डारण करने की व्यवस्था के विषय में वास्तु शास्त्र में कहा गया है कि पुण्यवान व्यक्ति को ग्राम नगर एवं पुर के मध्य तथा बाहर १० प्रकार के कूप, ४ प्रकार की वापियाँ, ४ प्रकार के कुण्ड एवं ६ प्रकार के तालाबों का निर्माण करवाना चाहिए।

कूप के लक्षण एवं भेद–

कूपों के नाम इस प्रकार हैं श्रीमुख, वैजय (विजय) प्रान्त, दुन्दुभि, मनोहर, चूड़ामणि, दिग्भद्र, जय, नन्द एवं शंकर। इनमें प्रथम कूप श्रीमुख का प्रमाण ४ हाथ होता है एवं बाकी कूपों का प्रमाण क्रम से एक-एक हाथ बढ़ता जाता है जैसे ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ एवं १३ हाथ। जो कूप ४ हाथ से कम प्रमाण के होते हैं उस कूप को कूपिका कहते हैं।[३]

---

१. बृहत्संहिता दकार्गक्ताध्याय १२१-१२२

२. इष्टापूर्त्तादिभिर्यज्ञैर्यावत्कुर्वन्ति मानवाः।
अग्निष्ठोमादिपशुभिरिष्टं यज्ञं प्रकीर्तितम्।।
वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च।
स्वर्गस्थितिं सदा कुर्यात्तद्दानं पूर्त्तसंज्ञितम्।।[१]
बृ. सं. प्रासाद लक्षण, श्लोक २

३. कूपाः श्रीमुखवैजयौ च तदनु प्रान्तस्तया दुन्दुभिः
तस्मादेव मनोरश्च परतः प्रोक्तस्तु चूड़ामणि।
दिग्भद्रो जयनन्दशङ्करमतो वेदादिहस्तैर्मिता
विश्वान्तैः क्रमवर्द्धितैश्च कथिता वेदादधः कूपिका।।
राजवल्लभमण्डन, चतुर्थ अध्याय, श्लोक-२७

वापी के लक्षण एवं भेद–

अब वापी के भेद तथा लक्षण के विषय में कहा गया है कि पुण्यवान व्यक्तियों को ४ प्रकार की वापियों का निर्माण कराना चाहिए। उनके नाम इस प्रकार कहे गये हैं। एक मुख एवं तीन कूटों[१] वाली वापी को नन्दा, दो मुख एवं ६ कूटों वाली वापी को भद्रा, तीन मुख एवं नव कूटों वाली वापी को जया तथा ४ मुख एवं १२ कूटों वाली वापी को विजया कहते हैं।[२]

पूर्वापरा वापी में अधिक समय तक जल ठहरता है। दक्षिणोत्तरा वापी में जल नहीं ठहरता है क्योंकि वायु के तरंगों से वह वापी नष्ट हो जाती है यदि दक्षिणोत्तरायत वापी बनाना चाहें तो तरङ्गों से बचाने के लिए किनारों को मजबूत लकड़ी या पत्थर आदि से चिनवा दें तथा बनाने के समय मिट्‌टी की हरेक तह को हाथी घोड़े आदि से रौदवाया जाय जिससे कि मिट्‌टी दबकर विशेष मजबूत हो जाय।[३]

सरोवर के लक्षण तथा भेद–

सरोवर ६ प्रकार के कहे गये हैं। जिस सरोवर का निर्माण अर्धचन्द्राकार हो उसे अर्धचन्द्रक, जिस का निर्माण बौधयुक्त हो उसे 'हासर' जिसका निर्माण वृत्ताकार हो उसे 'वृत्तसर', चौकोर निर्माण वाले को "चतुष्कोण सर", जिस सरोवर का निर्माण गमन मार्ग से युक्त हो उसे "भद्रसर" तथा ४ गमन मार्ग एवं एक या दो बकस्थल से युक्त सरोवर को 'सुभद्र' कहते हैं। इनमें ज्येष्ठ सरोवर सहस्त्र दण्ड माप का, मध्यम सरोवर ज्येष्ठ के आधे माप का एवं कनिष्ठ मध्यम सरोवर के आधे माप का होता है। ज्येष्ठ सरोवर की लम्बाई १०० हाथ, मध्यम सरोवर की लम्बाई उसकी

---

१. कूट वापी का वह खण्ड है जिसके ऊपर स्तम्भ एवं शिखर आदि का निर्माण होता है।

२. वापी ना नन्दैकमुखी त्रिकूटा, षटकूटिका युग्म मुखा च भद्रा
जया त्रिवस्त्रा नवकूटयुक्ता त्वर्केस्तु कूटैर्विजया मता सा।।
राजवल्लभा मण्डन चतुर्थ अध्याय, श्लोक–२८

३. पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न योम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्पातमावारयेत्
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः।।
बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय श्लोक १८

आचार्य ने कहा है। कि– अंजन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला, कतक का फल इन सभी औषधियों को एकत्रित करके इसका चूर्ण बनाकर कूप (कूआँ) में डालें। इन औषधियों के मिश्रण से कूप का जल सुस्वादु एवं सुन्दर गंध वाला होता है।[१]

इष्ट कर्म (यज्ञ आदि) एवं पूर्त्त कर्म (वापी, तड़ागादि) का निर्माण कराने से मनुष्य को यश एवं धर्म की वृद्धि के साथ-साथ उत्तम लोक की भी प्राप्ति होती है। इष्ट और पूर्त्त कर्म के विषय में बताया गया है।[२]

जल की उपयोगिता एवं महत्व को ध्यान में रखकर जल भण्डारण करने की व्यवस्था के विषय में वास्तु शास्त्र में कहा गया है कि पुण्यवान व्यक्ति को ग्राम नगर एवं पुर के मध्य तथा बाहर १० प्रकार के कूप, ४ प्रकार की वापियाँ, ४ प्रकार के कुण्ड एवं ६ प्रकार के तालाबों का निर्माण करवाना चाहिए।

कूप के लक्षण एवं भेद–

कूपों के नाम इस प्रकार हैं श्रीमुख, वैजय (विजय) प्रान्त, दुन्दुभि, मनोहर, चूड़ामणि, दिग्भद्र, जय, नन्द एवं शंकर। इनमें प्रथम कूप श्रीमुख का प्रमाण ४ हाथ होता है एवं बाकी कूपों का प्रमाण क्रम से एक-एक हाथ बढ़ता जाता है जैसे ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ एवं १३ हाथ। जो कूप ४ हाथ से कम प्रमाण के होते हैं उस कूप को कूपिका कहते हैं।[३]

---

१. बृहत्संहिता दकार्गक्ताध्याय १२१-१२२

२. इष्टापूर्त्तादिभिर्यज्ञैर्यावत्कुर्वन्ति मानवाः।
अग्निष्ठोमादिपशुभिरिष्टं यज्ञं प्रकीर्तितम्।।
वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च।
स्वर्गस्थितिं सदा कुर्यात्तद्दानं पूर्त्तसंज्ञितम्।।[१]
बृ. सं. प्रासाद लक्षण, श्लोक २

३. कूपाः श्रीमुखवैजयौ च तदनु प्रान्तस्तया दुन्दुभिः
तस्मादेव मनोरश्च परतः प्रोक्तस्तु चूड़ामणि।
दिग्भद्रो जयनन्दशङ्करमतो वेदादिहस्तैर्मिता
विश्वान्तैः क्रमवर्द्धितैश्च कथिता वेदादधः कूपिका।।
राजवल्लभमण्डन, चतुर्थ अध्याय, श्लोक-२७

वापी के लक्षण एवं भेद–

अब वापी के भेद तथा लक्षण के विषय में कहा गया है कि पुण्यवान व्यक्तियों को ४ प्रकार की वापियों का निर्माण कराना चाहिए। उनके नाम इस प्रकार कहे गये हैं। एक मुख एवं तीन कूटों[१] वाली वापी को नन्दा, दो मुख एवं ६ कूटों वाली वापी को भद्रा, तीन मुख एवं नव कूटों वाली वापी को जया तथा ४ मुख एवं १२ कूटों वाली वापी को विजया कहते हैं।[२]

पूर्वापरा वापी में अधिक समय तक जल ठहरता है। दक्षिणोत्तरा वापी में जल नहीं ठहरता है क्योंकि वायु के तरंगों से वह वापी नष्ट हो जाती है यदि दक्षिणोत्तरायत वापी बनाना चाहें तो तरङ्गों से बचाने के लिए किनारों को मजबूत लकड़ी या पत्थर आदि से चिनवा दें तथा बनाने के समय मिट्टी की हरेक तह को हाथी घोड़े आदि से रौदवाया जाय जिससे कि मिट्टी दबकर विशेष मजबूत हो जाय।[३]

सरोवर के लक्षण तथा भेद–

सरोवर ६ प्रकार के कहे गये हैं। जिस सरोवर का निर्माण अर्धचन्द्राकार हो उसे अर्धचन्द्रक, जिस का निर्माण बौधयुक्त हो उसे 'हासर' जिसका निर्माण वृत्ताकार हो उसे 'वृत्तसर', चौकोर निर्माण वाले को "चतुष्कोण सर", जिस सरोवर का निर्माण गमन मार्ग से युक्त हो उसे "भद्रसर" तथा ४ गमन मार्ग एवं एक या दो बकस्थल से युक्त सरोवर को 'सुभद्र' कहते हैं। इनमें ज्येष्ठ सरोवर सहस्त्र दण्ड माप का, मध्यम सरोवर ज्येष्ठ के आधे माप का एवं कनिष्ठ मध्यम सरोवर के आधे माप का होता है। ज्येष्ठ सरोवर की लम्बाई १०० हाथ, मध्यम सरोवर की लम्बाई उसकी

---

१. कूट वापी का वह खण्ड है जिसके ऊपर स्तम्भ एवं शिखर आदि का निर्माण होता है।

२. वापी ना नन्दैकमुखी त्रिकूटा, षटकूटिका युग्म मुखा च भद्रा
जया त्रिवस्त्रा नवकूटयुक्ता त्वर्केस्तु कूटैर्विजया मता सा।।
राजवल्लभा मण्डन चतुर्थ अध्याय, श्लोक–२८

३. पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न योम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्पातमावारयेत्
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः।।
बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय श्लोक १८

आधी तथा कनिष्ठ सरोवर की लम्बाई मध्यम की आधी होती है।[१]

कुण्ड के लक्षण, एवं भेद–

चौकोर आकृति वाले कुण्ड को 'भद्रसंज्ञक', भद्रयुक्त आकृति वाले कुण्ड को 'सुभद्रक संज्ञक', प्रतिभद्र युक्त आकृति वाले कुण्ड को नन्दसंज्ञक तथा जिस कुण्ड के मध्य में भिट्ट का निर्माण हो उसे 'परिघ संज्ञक' कुण्ड कहते हैं। कुण्ड का निर्माण ८ हाथ से लेकर १०० हाथ तक होता है। इसमें ४ द्वार एवं मध्य में गवाक्ष का निर्माण करना चाहिए तथा चारों दिशाओं के कोणों में पट्टशाला का निर्माण होना चाहिए।[२]

कुण्ड के मध्य भिट्ट पर गंगा आदि नदियाँ, १२ आदित्य, विष्णु के दशावतार, ११ रुद्र, दुर्गा, भैरव मातृकाएँ, गणेश, तीनों प्रकार की अग्नियाँ, चण्डिका, दुर्वासा एवं नारदमुनि, द्वारकापुरी की कृष्णलीलाएँ एवं ब्रह्मा आदि देवगणों का अङ्कन करना चाहिए। कुण्ड के ऊपर श्रीधर संज्ञक माड का अंकन करना चाहिए। उनकी मूर्ति का दर्शन करने से काशी स्नान का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। ऐसे कुण्ड में विधियों के ज्ञाता यदि विधिपूर्वक स्नान करें तो उन्हें गंगा स्नान का पुण्य लाभ होता है।[३]

कूपचक्र (सूर्यभात्)[४]

दिशा	नक्षत्र	फल
मध्य	३	स्वादुजल
पूर्व	३	खण्डित जल

---

१. सरोऽर्द्धचन्द्रं तु महासरश्च वृत्तं चतुष्कोणकमेव भद्रम्।
भद्रैः सुभद्रं परिधैकयुग्मं बकस्थैलकद्वयमेव यस्मिन्।।
ज्येष्ठं मितं दण्डसहस्त्रकैस्तु मध्यं तदर्धेन ततः कनिष्ठम्।
ज्येष्ठं करैः पंचशतानि दैर्घ्ये तदर्धमध्यं तु पुनः कनिष्ठम्।।
राजबल्लभमण्डनम् ४.२७–३०

२. भद्राख्य कुण्डं चतुरस्त्रकं तु सुभद्रकं भद्रयुतं द्वितीयम्।
नन्दाख्यकं स्यात् प्रतिभद्रयुक्तं मध्ये सभिट्टं परिघं चतुर्थम्।।
कराष्टतो हस्तशतं प्रमाणं द्वारैश्चतुर्भिः सहितानि कुर्यात्।
मध्ये गवाक्षाश्च दिशो विभागे कोणे चतुष्कास्त्वपि पट्टशालाः।।
राजबल्लभमण्डनम् ४.३१–३२

३. तत्रैव ४.३३–३४

४. वृहद्वास्तुमाला पृष्ठ १४[illegible]

आग्नेय	३	स्वादुजल
दक्षिण	३	जलहानि
नैऋत्य	३	स्वादुजल
पश्चिम	३	क्षारजल
वायव्य	३	शीतलजल
उत्तर	३	मधुर जल
ईशान	३	क्षारजल

कूपमुहूर्त हेतु शुभ नक्षत्र–

हस्त, चित्रा, स्वामी, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा, तीनों उत्तरा और रोहिणी ये नक्षत्र कूपारम्भ के लिए शुभ हैं।[१]

ब्रह्मयामलोक्त तडागचक्र

ब्रह्मयामलोक्त तडाग चक्र का वर्णन करता हूँ– सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनें २-२ नक्षत्र आठों दिशा- विदिशाओं में ५ नक्षत्र मध्य में ६ नक्षत्र वारिवाह में स्थापित करके फल का विचार करना चाहिए। फल की जानकारी के लिए निम्नलिखित चक्र देखें।[२] सूर्य नक्षत्र से वर्तमान दिन के नक्षत्र तक गिनने पर यह विचार करना चाहिए। यथा– सूर्य नक्षत्र से २ नक्षत्र पूर्व में, फल बहुशोक होगा। इसी प्रकार वर्तमान तक गिने जहाँ वर्तनाम नक्षत्र पड़े वहीं फल समझना चाहिए।

सूर्यनक्षत्र से तडागचक्र–

दिशा	नक्षत्र	फल
पूर्व	२	बहुशोक
आग्नेय	२	बहुजल
दक्षिण	२	जलनाश

---

१. हस्तत्तिस्रो वासवं वारुणश्च मित्रं पित्र्यं त्रीणिं चैवोत्तराणि।
प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारम्भे श्रैष्ठ्यमाद्यैर्मुनीन्द्रैः।।
वृ.वा.मा.,पृष्ठ १४९ श्लोक १२६

२. बृ. वा. मा. पृष्ठ १४७ श्लो. १२७-१३०

नैऋत्य	२	अमृत जल
पश्चिम	२	स्वादु जल
वायव्य	२	जलशोषण
उत्तर	२	स्थिरजल
ईशान	२	कुत्सित जल
मध्य	५	शीघ्र जल
वारिवाह	६	जल की पूर्णता

तडाग मुहूर्त हेतु नक्षत्र विचार–

तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पुष्य, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, नक्षत्रों में तालाब का निर्माण करना शुभ होता है।[१]

वापीकूपारम्भ–

चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, मूल, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुष्य, श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, तीनों उत्तरा एवं रेवती नक्षत्रों में, मकर, कुम्भ एवं मीन लग्न में तथा शुभवारों में कुँआ, वावड़ी व तालाब आदि का निर्माण करना शुभ होता है।[२] जिस प्रकार प्रकृति के हर पदार्थों का निर्माण पाँच महाभूतों से होता है उसी प्रकार प्रकृति अपने पाँच गुणों से उन पदार्थों को पोषित करती है। प्रकृति के ये पाँचों गुण क्रम से शब्द, स्पर्श, रस, एवं गन्ध हैं जिनका ज्ञान हम अपने ज्ञानेन्द्रियों से करते हैं। इन पांचमहाभूतों में द्वितीय स्थान अन्न का है। जिसका प्रधान गुण रस है और रस ही पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी जड़ एवं जंगम जीवों को जीवत्व प्रदान करता है मनुष्य, पशु–पक्षी, कीट पतंग एवं वनस्पतियाँ जो कुछ आहार के रूप में ग्रहण करती हैं उसमें जल तत्व की प्रधानता रहती है। अतः जल प्रकृति का वह जीवनोपयागी अमृततत्व है जिसके बिना जीवन सम्भव नहीं है।

---

१. ध्रुव वसु जल पुण्यम् नैर्ऋत्यं मैत्रसंज्ञकम्।
नक्षत्रं शुभदं ज्ञेयम् तडागे सर्वदा बुधैः।।
वृ. वा. मा. तडागादिनिर्माण विचार श्लोक १३२

२. बृ. वा. मा. वापीकूयारम्भ श्लो. १३६–१३७

यद्यपि ब्रह्माण्ड में विद्यमान पञ्चमहाभूतों का अपना अपना विशेष महत्व है। ये सभी एक दूसरे के पूरक हैं तथा किसी एक के अभाव में सृष्टि का निर्माण असम्भव है। लेकिन इनमें से जलतत्व का सृष्टि के निर्माण में विशेष योगदान है। जल की प्रशंसा में विष्णुधमोत्तर पुराण में कहा गया है कि– भूलोक और स्वर्गलोक में जल के बिना जीवन सम्भव नहीं है। इसलिए धर्मात्मा एवं विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह अनेक स्थानों पर जलाशयों का निर्माण करायें। कुँआ खुदवाये, जिस का फल अग्निष्टोम यज्ञ के समान है, कुंआ भी यदि मरुस्थल में खुदवाया जाए तो उसका फल अश्वमेध यज्ञ के बराबर होता है। पर्याप्त जल वाला कूप खुदवाने वाले के समस्त पापों का नाश होता है।[१] कुँआ का निर्माण कराने वाला पुरुष स्वर्ग में जाकर सब प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में जल की गुणवत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– जिस ज्ञान से भूमिगत जल का ज्ञान होता है उस धर्म और यश को देने वाले दकार्गल को मैं कहता हूँ। जिस तरह मनुष्य के अंग में नाड़ियाँ हैं उसी तरह भूमि में ऊँची नीची शिराएँ हैं। आकाश से केवल एक वर्ण, रस तथा स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है किन्तु वही जल भूमि की विशेषता के कारण विभिन्न रस एवं वर्ण वाला हो जाता है। इस तरह भूमि के वर्ण और रस तथा स्वाद के समान जल के रस, स्वाद तथा वर्ण सिद्ध होते हैं। अतः भूमि के वर्ण एवं रस के अनुरूप ही जल के रस और स्वाद का परीक्षण करना चाहिए।[२]

पुर, ग्राम, नगर, उपनगर तथा भवन आदि में कुँआ, बोरिंग, नलकूप, हैण्डपम्प, जलाशय, बावड़ी आदि का निर्माण भूमि की गुणवत्ता के अनुसार ही करना चाहिए। भूमि परीक्षण से ही भूगर्भ जल की गुणवत्ता का पता चलता है।

राजवल्लभ मण्डन में जलाशय की प्रशंसा में लिखा गया है कि जिस जल से जीव अपना जीवन धारण करते हैं, उस जल के स्रोत कुँआ अथवा जलाशय का निर्माण जो व्यक्ति पृथ्वी पर गाय के पैर के बराबर भी करता है वह ६० हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में सम्पूर्ण सुखों का उपभोग करता है।[३]

---

१. विष्णुधर्मात्तरपुराण जल प्रशंसा श्लोक. १–३

२. बृहत्संहिता दकार्गलाध्याय श्लोक. १–२

३. राजबल्लभमनुन ४.३५

भूमि के अन्दर पाये जानी वाली जल की शिराओं के भेद तथा उनके शुभाशुभत्व पर पूर्वाचार्यों ने विचार करते हुए लिखा है कि– पूर्वादि दिशाओं के स्वामी क्रम से इन्द्र आदि देवता होते हैं यथा पूर्व के इन्द्र, अग्नि कोण के अग्नि, दक्षिण के यम, नैऋत्यकोण के राक्षस, पश्चिम के वरुण, वायव्यकोण के वायु, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के शिव, इन स्वामियों के नामों के अनुसार ही शिरायें भी होती हैं। यथा पूर्व दिशा की शिरा ऐन्द्री, अग्निकोण की आग्नेयी, दक्षिण की याम्या, आदि इसी प्रकार अन्य भी समझनी चाहिए। इस प्रकार ८ दिशाओं की आठ शिराएँ होती हैं। मध्य में महाशिरानामक नौवीं शिरा होती है।

इनके अतिरिक्त भी अन्य सैकड़ों शिरायें होती हैं। पाताल से उर्ध्व शिरा शुभ होती है। चारों दिशाओं की शिराएँ भी शुभ होती हैं। कोणों से सम्बन्धित शिरायें शुभ नहीं होती हैं।

भूमि के वर्ण एवं मिट्टी के स्वाद के अनुसार भूमि के अन्दर की जल शिराओं का ज्ञान होता है। जिस प्रकार की भूमि के अन्दर गुण दोष होगा वैसे ही जल की प्रकृति भी होगी।[१]

जो भूमि बालू युक्त तथा ताम्रवर्ण की हो वहाँ कषाय युक्त जल की प्राप्ति होती है। तथा जहाँ कषित वर्ण की भूमि हो उसके नीचे खारा स्वाद वाला जल पाया जाता है अपाण्डु रंग की भूमि के अन्दर लवण युक्त जल की प्राप्ति होती है तथा नीले वर्ण की भूमि के अन्दर मीठे जल की प्राप्ति होती है।[२]

जो भूमि सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊँट, गधा के वर्ण की हो वह निर्जला होती है। और जहाँ करीर वृक्ष लाल अंकुरों तथा दूध से युक्त हो, वहाँ की भूमि यदि लाल रंग की हो तो वहाँ पथर के नीचे जल होता है।[३] भूमि के गुण दोष, वर्ण एवं स्वाद के अनुसार भूमि के अन्दर पायी जाने वाली जल शिराओं के गहराई का भी ज्ञान होता है।

जहाँ की मिट्टी चिकनी, बैठी हुई, बालू वाली और शब्द करती हो अर्थात् जिस स्थान की मिट्टी खोदने पर शब्द दुनाई दे, ऐसी भूमि पर ४.५ या ५ पुरुष नीचे जल होता है।[४]

---

१. बृहत्संहिता, दकार्गल श्लो. ३, ५

२. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लो. १०७

३. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लोक १०९

४. यत्र स्निग्धा निम्ना सबालुका सानुनादिनी वा स्यात्।
तत्रार्धपश्चकैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा।।[४]

वृ. वा. मा. दर्कार्गल श्लोक ९४

जहाँ की भूमि उष्ण अर्थात् गर्म हो किन्तु उसके एक ओर शीतल अथवा सर्वत्र शीतल हो या किसी एक भाग में उष्ण हो तो वहाँ ३.५ पुरुष नीचे जल होता है। जहाँ पर इन्द्रधनुष अथवा मछली के आकार की भूमि हो या जहाँ वल्मीक हो वहाँ ४ पुरुष नीचे जल होता है।[१] अब पूर्वादि दिशाओं के जल शिराओं का वर्णन करते हैं।

पूर्वशिरा–

यदि जल रहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उस वृक्ष के उत्तर दिशा में तीन हाथ दूरी पर २ पुरुष नीचे पूर्वा शिरा बहती है। उसका लक्षण यह है कि एक पुरुष गहरा खोदने पर लोहे के गन्ध वाली मिट्टी मिलेगी उसके बाद सफेद रंग की मिट्टी उसके नीचे मेढक रहता है। इस के बाद जल शिरा मिलती है।[२]

दक्षिणशिरा–

ताड़ या नारीयल का वृक्ष यदि वल्मीक से युक्त हो तो उसके पश्चिम दिशा में ६ हाथ दूरी के बाद ४ पुरुष गहराई में दक्षिणा शिरा बहती है।[३]

पश्चिमशिरा–

जल रहित देश में यदि वेर की झाड़ी दिखाई दे तो उससे पश्चिम दिशा में ३ हाथ की दूरी पर १.५ पुरुष नीचे जल बह रहा है ऐसा समझें। इस स्थिति में पश्चिमशिरा बहती है। उसके चिन्ह इस प्रकार हैं कि उस स्थान पर आधा पुरुष गहराई पर पाण्डुरंग का मेढक पाया जाता है। उसके नीचे पीले वर्ण की मिट्टी इसके बाद नीचे पत्थर और उसके नीचे जल होता है।[४]

उत्तरा शिरा विचार–

यदि वल्मीक के पास छतिवन का वृक्ष हो तो वृक्ष के उत्तर एक हाथ दूरी पर पाँच पुरुष नीचे जल निकलेगा। इसके लक्षण इस प्रकार हैं। आधा पुरुष नीचे हरे रंग का मेढक मिलेगा उसके

---

१. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लो. ९७
२. बृ. वा. मा. दकार्गल श्लो. ११
३. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लो. ४३
४. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लो. ९ और १०

बाद हरिताल के वर्ण की भूमि निकलेगी उसके बाद मेध के रंग का पत्थर मिलेगा उसके नीचे उत्तरा शिरा होगी जिसका जल मधुर होगा।[१]

सुस्वादु जलशिरा–

यदि जलरहित देश में गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम की ओर तीन हाथ दूरी पर २ पुरुष नीचे सुस्वादु जल निकलता है। इसका लक्षण है कि पहले आधे पुरुष की गहराई पर सफेद साँप निकलेगा उसके बाद अंजन जैसा काला पत्थर दिखाई पड़ेगा, उसके नीचे जल शिरा होगी जिसका जल सुस्वादु होगा।[२]

क्षारीय जलशिरा–

पीलु वृक्ष से युक्त वेर का वृक्ष हो तो उससे पूर्व में ३ हाथ की दूरी पर २० पुरुष नीचे कभी न सूखने वाला किन्तु खारा जल रहता है।[३]

प्रचुर जलशिरा–

जिस भूमि पर कचनार का वृक्ष हो, उस वृक्ष से ईशानकोण में कुश से युक्त सफेद रंग का वल्मीक हो तो उस कचनार और वल्मीक के बीच में ४.५ पुरुष नीचे अक्षोभ (कभी न सूखने वाला) जल रहता है। यहाँ पर भूमि तल से खोदने पर एक पुरुष गहराई में साँप निकलेगा वहाँ पर भूमि का रंग कमल के सदृश लाल होगा उसके बाद हरे रंग का पत्थर होगा।[४]

न्यून जलशिरा–

बहेड़ा वृक्ष के पश्चिम दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से उत्तर एक हाथ भूमि छोड़कर ४.५ पुरुष नीचे जल शिरा बहती है। वहाँ पुरुष गहरा खोदने पर सफेद विश्वम्भर नामक जीव दिखाई देगा, उसके बाद कुंकुम जैसा लाल पत्थर होगा, उसके बाद पश्चिम दिशा में बहती हुई जल शिरा होगी जो तीन वर्ष बाद समाप्त हो जाती है।[५]

---

१. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लोक ३२–३३
२. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लोक १४
३. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लोक ७८
४. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लोक ३० और ३१
५. वृ. वा. मा. दकार्गल श्लोक २८ और २९

आधुनिक वर्षा जल संरक्षण (वाटर हार्वेस्टिंग) व्यवस्था–

पानी की कमी सर्वत्र बढ़ती जा रही है। पानी एक कीमती संसाधन है। इसलिए हर नागरिक की जिम्मेदारी है कि वह पानी की बचत करें। हाउसिंग सोसायटियों में जल की बचत के लिए अनेक उपाय किये गये हैं इन सभी में वर्षा जल संरक्षण (वाटर हार्वेस्टिंग) का सर्वोत्तम उपाय है लेकिन पर्याप्त जानकारी के बिना हर उपाय उचित फल नहीं देता। एक सर्वेक्षण के दौरान बहुत से बिल्डरों ने कहा कि वर्षा के जल संरक्षण के निमित्त काफी जगह छोड़नी पड़ती है जो उनके लिए एक कठिन कार्य है लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि वर्षा जल संरक्षण बहुत बड़ा तकनिकी प्रोजेक्ट नहीं है और न ही उसके लिए बहुत बड़ी जगह की आवश्यकता है। वर्षा जल संरक्षण के हाउसिंग सोसाइटियों में निम्न उपाय बताये गये हैं।

अधिक क्षेत्रफल बाकी प्रापर्टियों में ट्रेन्थ बोर गड्ढे का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें छतों से बारिस का जल पास में खाली जगह या पास में बने उद्यानों की तरफ मोड़ दिया जाता है जहाँ १ मीटर गहरा तथा १ से ५ मीटर चौड़ा गड्ढा खोदा जाता है। २ मीटर गहरे ५ मीटर बोर ड्रिल कर दिये जाते हैं और उन्हें टूटी हुई ईंटों से भर दिया जाता है। खुदे हुए गड्ढे को ग्रील से ढक दिया जाता है। वर्षा का जितना जल होता है उसे ट्रन्च (गड्ढे) में ट्रेप कर लिया जाता है। वहाँ से वह बोर पिट्स (गड्ढे) के जरिये जमीन के नीचे समा जाता है। वहाँ से इसका जल का प्रयोग कर सकते हैं। दूसरा तरीका यह है कि जिन घरों और कम्प्लेक्सों में काफी खुली जगह होती है उनमें पैबल बेड्ड बनाये जाते हैं यानी कम्पाउण्ड की दिवार के बराबर में गड्ढा खोद दिया जाता है उसे बड़ी बड़ी टूटी ईंटों से भर दिया जाता है। गड्ढे को फिर परफार्टेड आर.सी. सी स्लैब से ढक दिया जाता है। छत और अन्य जगहों का जल इस गड्ढे की तरफ मोड़ दिया जाता है। परकोलेखन के अच्छा तथा बेहतर बनाने के लिए पैबल को साल में एक बार साफ करना आवश्यक है। इस विधि से नुकसान यह है कि ट्रेन्च बोर पिट (गड्ढा) की तरह यहाँ भी नहीं मालूम की गड्ढा कितना गहरा होना चाहिए साथ ही इससे कम्पाउण्ड की दीवार भी कमजोर हो जाती है। तीसरी विधि यदि काम्पलेक्स में पहले से ही कोई कुँआ हो तो उसे फिर से चालू कर दिया जाता है। छत के जल को कुँआ की तरफ मोड़ दिया जाता है। छत का पानी साफ होता है यदि कम्पाउण्ड में पहले से कोई कुँआ नहीं है तो सर्विस कुँआ का निर्माण किया जाता है इसमें जो पानी एकत्र होता है उसका तुरन्त प्रयोग भी किया जा सकता है। सतह के पानी को गेट के निकट परफार्टेड लिड के साथ गटर में टैब किया जा सकता है फिर इस पानी को रिचार्ज कुएँ में पाइप के जरिए डाला जा सकता है।

जमीन के पानी को भी प्रभावी रूप से रिचार्ज किया जा सकता है। सॉक पिट (सोखने वाले गड्ढे) के जरिए जिनमें रेत की परतें हों और ब्रिक जैली भी इनसे घर के काम में बेकार बचा पानी इसमें डालकर रिचार्ज किया जा सकता है।

पानी गुणवत्ता के विषय में वर्ल्ड हेल्थ आरगनाइजेशन (डब्ल्यू. एच. ओ. ने निम्नलिखित दिशा निर्देश दिये हैं–

१. पानी साफ होना चाहिए।

२. रंगीन या मैला, बदबूदार और स्वाद में खराब नहीं होना चाहिए।

३. जल में अधिक खारापन और हार्डनेस न हो।

४. जल में क्लोराइड, आयरन, और मैगनीच, नाइट्रेट और आर्सेनिक निश्चित की गई सीमा से अधिक न हो।

५. जल में ई.कोली और टी सी बी जैसे बैक्टीरिया न हों यदि हों भी तो उनकी मात्रा तय सुदा अर्थात् निश्चित सीमा से कम हो।

आजकल उपरोक्त विधियों से वर्षा के जल का संरक्षण (वाटर हार्वेस्टिंग) किया जा रहा है और बहुत से जगहो पर सफलता भी मिली है लेकिन कई जगहों पर असफलता ही हाथ लगी है। इसका मुख्य कारण है कि यदि आधुनिक वैज्ञानिक या टेक्निसियन वास्तु शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार वर्षा के जल का संरक्षण (वाटर हार्वेस्टिंग) करने तथा वास्तु शास्त्र में जहाँ पर तथा जिस आवासीय ईकाई में कौन सी दिशा में जल भण्डारण करना चाहिए तथा छत से गिरने वाले जल के लिए नाली कौन सी दिशा में बनानी चाहिए, आवासीय ईकाइयों का कौन–सा भाग उन्नत होना चाहिए तथा कौन–सा भाग नीचा होना चाहिए। इन सभी सिद्धान्तों एवं नियमों से अवगत होकर वाटर हार्वेस्टिंग की व्यवस्था की जाती तो असफलता हाथ नहीं लगती बल्कि वर्षा का किया गया जल संरक्षण आज के समय में भीषण जल संकट से उत्पन्न नाना प्रकार के समस्याओं से मुक्ति दिला सकता है। अतः यह आवश्यक है कि वर्षा के जल संरक्षण (वाटर हार्वेस्टिंग) से पूर्व वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों एवं नियमों को अच्छी तरह से जानना चाहिए। आधुनिक समय में एक विशेष तरीके से सीवेज को भी रिसाइकिल किया जा रहा है। पानी की कमी की वजह से सीवेज खास प्रयोगों के लिए पानी का वैकल्पिक स्रोत बनता जा रहा है। खासकर इसलिए भी, क्योंकि

यह नियमित सप्लाई का स्रोत है। जब तक पानी घरेलू कार्यों में इस्तेमाल होता रहेगा सीवेज जेनरेट होता रहेगा दूसरा इससे लाभ यह है कि यह पानी प्रयोग स्थल पर ही उपलब्ध है। वाटर हार्वेस्टिंग पर आज कई सरकारी तथा गैर सरकारी एजेसिंयाँ काम कर रही है। इस प्रोजेक्ट में काफी धन खर्च किया जा चुका है लेकिन अब तक पूर्ण सफलता नहीं मिली। इसका मुख्य कारण है प्राकृतिक ऊर्जाओं तथा वास्तु शास्त्र के नियमों एवं सिद्धान्तों का पालन करना। जिनका वर्णन हमारे पूर्वाचार्यों ने वास्तुशास्त्र के कई ग्रन्थों में किया है। जल, पंचमहाभूतों में प्रमुख है इसका स्थान पंचमहाभूतों से बनने वाले आवासीय, व्यावसायिक एवं धार्मिक ईकाई में कहाँ होना चाहिए इसकी विवेचना वास्तु शास्त्र बहुत सुन्दर ढंग से करता है। अत: यह आवश्यक है कि वर्षा जल संरक्षण की जितनी विधियाँ बतायी गई हैं इन सबका उपयोग वास्तु शास्त्र के नियमों एवं सिद्धान्तां के अनुसार ही होना चाहिए।

गृहदोष

डॉ० रतनलाल शर्मा

गृह निर्माण सम्बन्धित विभिन्न विद्याओं के यथार्थ की सर्वसाधरण को आवश्यकता रहती है। वास्तुशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में इसकी चर्चा विस्तार से मिलती है। वास्तु का शाब्दिक अर्थ निवास से है। वास्तु शब्द व्याकरण "वस्" निवासे धातु एवं तुण प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। जहाँ मनुष्य निवास करते हैं। उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवालय, पुर नगर ग्रामादि अनेक भेद हैं। वास्तु के शुभाशुभ की परीक्षा आवश्यक है, क्योंकि उचित वास्तु में रहने से सुख-सौभाग्य एवं समृद्धि की अभिवृद्धि होती है और इसके विपरीत अशुभ वास्तु में रहने से इन सभी का ह्रास होता है।

भारतीय चिन्तनधारा के प्रमुख स्रोत वेद हैं। चारों वेदों के चार उपवेद भी हैं। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद् और अर्थवेद का स्थापत्य वेद हैं। स्थापत्यवेद का सीधा सम्बन्ध वास्तु से है। ऋग्वेद में भी वास्तुपुरुष वी चर्चा मिलती है। यहाँ एक वर्णन में वास्तोष्पत्ति से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि–

हे वास्तोष्पते। तुम हमें जानो। आप हमारे घर को रोग रहित करने वाले हो। जिस धन के लिए हम आपसे ·प्रार्थना करें कृपया उसे हमें दीजिए। आप हमारे द्विपद एवं चतुष्पदों के लिए कल्याणकारी बनों।[१]

अतः उपर्युक्त ऋचाओं के अनुसार व्यक्ति को अपनी सुख-सुविधा एवं सुरक्षा की दृष्टि से गृहनिर्माण अति आवश्यक है वैसे शास्त्रीय दृष्टि से गृह निर्माण करने पर गृहस्वामी को अनन्त पुण्यफल की प्राप्ति होती है। इसके विषय में कहा भी गया है कि पर्णशाला के निर्माण से करोड़ों

---

१. वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वादेशो अनमीवोभवानः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषश्व शं नोभवद्विपदे शं चतुष्पदे ।। ऋग्वेद ६.५४.१

गुणा, मिट्‌टी का घर बनाने से दस कोटि गुणा, ईंटों का घर बनाने से सौ करोड़ गुणा तथा पत्थरों का घर बनाने से अनन्तकोटि गुणा फल प्राप्त होता है।[१]

गृह निर्माण की आवश्यकता पर बल देते हुए आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार से दूसरों के अन्न का भक्षण करने वाला, दूसरों के वस्त्र को धारण करने वाला, दूसरों के वाहन में यात्रा करने वाला, दूसरों की स्त्रियों में आसक्त रहने वाला, दूसरों के घर में सतत निवास करने वाला कोई भी व्यक्ति समाज में स्वाभिमानपूर्वक नहीं रह सकता। ऐसा करने वाला कदाचित इन्द्र भी हो तो उसकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जायेगी।[२]

अतः समाज में स्वाभिमानपूर्वक रहने के लिए कच्चा अथवा पक्का मकान अपनी सामर्थ्यानुसार अवश्य बनवाना चाहिए परन्तु उससे पूर्व गृहनिर्माण कर्ता को भूमि का चयन, उसके परिवेष की स्थिति, उसकी मिट्‌टी का परीक्षण, भूमि की ऊँचाई-गहराई आदि से सम्बधित दोषों के विषय में अच्छी तरह से परीक्षण कर लेना चाहिए।

भूमि से सम्बन्धित दोषों के विषय में हम सर्वप्रथम भूमिप्लव (भूमि का ढ़लान) पर विचार करते हैं। नैऋत्य-वारुण, याम्य, वायव्य, आग्नेय इन दिशाओं की ओर जो भूमि झुकी हुई होती है। वह निन्दित कहलाती है। एवमेव मध्य प्लवाभूमि रोगवृद्धिकारक कही गई है। वायव्य प्लवा भूमि दारिद्रय को देती है। वह्निप्लवा भूमि अग्नि का भय देती है और पश्चिम प्लवा भूमि धन और धान्य का नाश करती है। दक्षिणप्लवा भूमि मृत्यु देती है। नैऋत्यप्लवा भूमि रोग लाती है। मरुतप्लवा भूमि कलह, प्रवास और रोग को देती है तथा मध्यप्लवा भूमि सर्वनाश का कारण बनती है।[३]

---

१. कोटिघ्नं तृणजेपुण्यं मृण्मयेदशसंगुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तफलं गेहे।। समराङ्गसत्रधार अ. ४

२. परान्नं परवस्त्रञ्च परयानं परस्त्रियः।
पर वेश्मानि वासश्च शक्रस्याऽपि श्रियं हरेत्।। शंख स्मृति

३. रक्षोम्बुनाथकीनाश मरुद्दहनदिक्प्लवा।
मध्यप्लवा च भूर्व्याधिदारिद्रयमरकावहा।।
वह्निप्लवा च वह्निभये मृतये दक्षिणप्लवा।
रुजे रक्षःप्लवा प्रत्यक्प्लवा धान्यधनच्छिदे।।
कलहाय प्रवासाय रोगाय च मरुत्प्लवा।
मध्यप्लवा तु भूमिर्या सर्वनाशाय सा भवेत्।। वास्तुसम - १०.२-४

भूमि के दोषों की चर्चा करते हुए आचार्य कहते हैं कि तुषा, हड्डी, केश, कीड़ों की खाल, शंख, भस्म, ऊसर आदि से युक्त तथा कर्परों और अंगारों, दुष्ट जन्तुओं एवं मनुष्यों वाली भूमि त्याज्य कही गई है।[१]

भवन निर्माण के विषय में कहा गया है कि किसी अच्छे मुहूर्त में किया गया निर्माण शुभफलदायी होता है। अतः निर्माण से पूर्व पंचाङ्ग का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। चैत्रमास में भवननिर्माण शोकारक कहा गया है। ज्येष्ठ मास में गृह मृत्युप्रदायक, आषाढ़ में पशुनाश करने वाला, भाद्रपद में नाश करने वाला, आश्विन में कलह करने वाला, कार्तिक में सेवकों का नाश करने वाला और माघ में अग्निभय को देने वाला होता है। अतः उपर्युक्त मासों में भवन निर्माण नहीं करना चाहिए।[२]

दिशा के अनुसार शुभ व अशुभ फलः–

वह्नि के पद में, पृष्ठवंश के पश्चिम भाग में तथा भवन के पूर्व प्रासाद कर्ण में कील (स्तम्भ) आदि की योजना पूर्व दिशा में उपयुक्त कही गयी है। वास्तु में पूर्व एवं पश्चिम दिशा का दोष प्रायः स्त्रियों के लिए हानिकारक कहा गया है और उत्तर दिशा का दोष वास्तु निर्माण कार्य को पूर्ण नहीं होने देता है तथा यह मृत्युदायक भी कहा गया है। अतः भवन एवं देवालय का निर्माण पूर्वाभिमुख अच्छा माना गया है।[३] भवन निर्माण में वलित, चलित, भ्रान्त, विसूत्र वास्तु त्याज्य कहा गया है। जिस वास्तु का मुख विनिष्क्रान्त होता है उसे वलित कहा गया है। पूर्व विनिष्क्रान्त वास्तु चलित, भ्रान्तसंज्ञक, दिङ्मूढ, और कर्णहीन विसूत्र

---

१. तुषास्थिकेशकीटत्व शङ्खभस्मोषरान्विताम्।
कर्पराङ्गारिणीं दुष्टसप्तवानार्यजनां त्यजेत्।। वास्तुसार १०.५

२. चैत्रे शोककरं वेश्म ज्येष्ठे मृत्युप्रदायकम्।
पशुनाशनमाषाढे शून्यं भाद्रपदे कृतम्।।
आश्विने कलहाय स्यात् कार्तिके भृत्यनाशनम्।
माघे चाग्निभयाय स्यान्मासेष्वेषु न कारयेत्।। तत्रैव १०.६-७

३. पावकस्य पदे पृष्ठवंशस्यापि च पश्चिमे।
पुरप्रासादकर्णे च कीलादि प्राक् प्रयोजयेत्॥
पूर्वपश्चिमदिङ्मूढं वास्तु स्त्रीनाशकृदभवेत्।
उदङ्मूढं न निष्पत्तिं याति सर्वं च नाशयेत्।।
यत्तु दक्षिणदिङ्मूढं जायते भरणाय तत्।
प्राग्वास्तुनि कुर्वीत प्रसादं मन्दिरं पुरे॥ तत्रैव १०.८-१०

संज्ञक कहलाता है।[1]

अप्रशस्त गृह–

पाद सहित अथवा तीन भाग सहित या डेढ और दुगुना वास्तु मुखायत वेश्म कहलाता है उसे गृह निर्माण के लिए अनिष्ट फलप्रदायक कहा गया है। जो द्विशाल-त्रिशाल अथवा चतु:शाल भवन मूषा रहित होता है उसे भी अनिष्टफल प्रदायक कहा गया है। भवन के अग्रभाग एवं पृष्ठभाग में, अथवा बगल से यदि अलिन्द वर्जितशाला होती है तो उसे प्रशस्त नहीं कहा गया है परन्तु देवमन्दिर के लिए उपयुक्त कहा गया है।[2] दूसरे घर के पृष्ठ पर स्थित द्वार वाला वेश्म खादक कहा गया है। यह वेश्म दोनों गृ-स्वामियों में परस्पर विरोध पैदा करने वाला होता है।[3]

भवन के मर्मदोष–

वेश्मों में चार प्रकार के मर्मदोष कहे गये हैं। सशल्य, पादहीन समसन्धि तथा शिरोगुरु। वास्तु क्षेत्र के जिस अंग में जिसका रास्ता प्रवर्तित होता है, उस वास्तु के उस भाग को छिन्न माना गया है। उस छिद्धे हुए अंग से युक्त भवन को विकल कहते हैं ऐसा भवन गृहस्वासियों के लिए भयदायक एवं सर्वदोषकारक कहा गया है। इस प्रकार का भवन गृह-स्वामी के उसी अंग को भंग करता है जिस अंग से वह गृह स्वयं छिन्न अथवा विकल है। इसका वेध भी अशुभ फल को देने

---

१. वलितं चलितं भ्रान्तं विसूत्रं च समुत्सृजेत्।
यत् स्यान्मुख विनिष्क्रान्तं वलित तत् प्रकीर्तितम्।।
चलितं पृष्ठनिष्क्रान्तं दिङ्मूढं भ्रान्तमुच्यते।
विसूत्रं कर्णहीनं स्यात् फलमेषां प्रवक्ष्महे।। वास्तुसारः १०.११-१२

२. सपादं सत्रिभागं वा सार्धद्विगुणमेव च।
यत् स्यान्मुखायतं वैश्य तदनिष्टफलप्रदम्।।
यद् द्विशालं त्रिशालं वा चतुःशालमपि वा।
मूषया रहितं वेश्म तदनिष्टफलप्रदम्।।
पुरतः पृष्ठतः पार्श्वे यदि वालिन्दवर्जिता।
गृहे न शस्यते शाला देवागारे तु शस्यते।। वास्तुसारः १०.१६-१८

३. अन्यपृष्ठस्थितद्वारं वेश्म खादमुच्यते।
परस्परविरोधाय तद् वेश्म गृहिणोस्तयोः।। तत्रैव १०.१९

वाला होता है।[१]

मार्गवेध

यदि मार्ग दोनों घरों के मध्य से जाता हो तो उन घरों के द्वार निश्चित रूप से वेधित होंगे और दोष को प्राप्त होंगे। दोनों घरों के पार्श्वों में से जब एक ही मार्ग जाता हो तो उसे मार्गबेध कहते हैं और वह गृहवासियों के लिए शोक एवं सन्तापकारक होता है।[२]

वास्तु प्रवेश विचार

गृह में प्रवेश चार प्रकार के बताये गये हैं। उत्सङ्ग, पूर्णबाहु, हीनबाहु और प्रत्यक्षाय। जहाँ पर वास्तु का द्वार गृह के सम्मुख होता है, उसको उत्सङ्ग कहते हैं। यदि गृह के दक्षिण भाग से प्रवेश किया जाये तो पूर्णबाहु, बायें से प्रवेश करने के लिए हीनबाहु और पीछे से गृहप्रवेश करने को विद्वानों ने प्रत्यक्षाय नाम से समुद्दिष्ट किया है।[३]

गृहारम्भ में निषिद्धतिथियाँ

प्रतिपदा को गृहनिर्माण करने पर दरिद्रता, चतुर्थी को धनहानि, अष्टमी को उच्चाटन, नवमी को शस्त्रभय, अमावस्या को राजभय और चतुर्दशी को स्त्रीहानि होती है। परन्तु महर्षि भृगु के मत में चतुर्थी, अष्टमी, अमावस्या तिथियाँ सूर्य, चन्द्र एवं मंगलवार को त्याग देना चाहिए।[४]

गृह निर्माण में त्याज्य मास

चैत्र-ज्येष्ठ, आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, माघ मासों में गृह निर्माण नहीं करना चाहिए ऐसा योगेश्वराचार्य जी का मत है।[५]

गृहनिर्माण सम्बन्धित दोष

जिस भवन में कटे-फटे गवाक्षादि अवलोकनों का निर्माण किया जाता है वहाँ पर प्रसूति नहीं होती है। यदि वहाँ पर होती भी है तो वह नष्ट हो जाती है। एवमेव दक्षिण दिशा की दीवार की

---

१. वास्तुसारः १०.२०-२२
२. तत्रैव १०.२३-२४
३. तत्रैव १०.२५-२७
४. वृहद्वास्तुमाला गणनाविचार श्लोक ६७-६०
५. वृहद्वास्तुमाला, मासादि. ५२

चिनाई करते समय यदि वह बाहर की ओर बढ़ जाये अथवा उसका झुकाव रहे तो व्याधि भय एवं नृप दण्ड भय समझना चाहिए। यदि पश्चिम की दीवार एवमेव बाहर चली जाये तो धनहानि और चोरों से भय समझना चाहिए। उत्तर की दीवार बाहर जाये तो गृहपति एवं स्थपति दोनों भयंकर व्यसन से ग्रसित होते हैं। एवमेव पूर्वाभिमुख भित्ति का अग्रभाग यदि चिनाई करते समय बाहर की ओर निकले तो गृहस्वामी के लिए अतिभयानक राजदण्ड भोगना पडता है। जब चीयमान प्राग्दक्षिण कर्ण बाहर निकल जाये तो भीषण अग्निभय एवं ईश्वर का संशय समुपस्थित हो जाता है। दक्षिण-पश्चिम कर्ण जब बहिर्मुख हो जाता है तो कलह आदि उपद्रव के साथ ही भार्या कष्ट भी कहा जा सकता है। जहाँ पर उत्तर-पश्चिम कर्ण बाहर निकला होता है वहाँ पर पुत्र-वाहन एवं नौकरों के साथ उपद्रव होता है। यदि पूवोत्तर कर्ण बहिर्मुख होता है तो गाय - बैलों का, एवं गुरुओं का नाशक कहा गया है।[1]

द्वार निर्माण सम्बन्धित दोष

भवन में नवीन द्वार पुराने द्वार से संयुक्त हो तो गृस्वामी के लिए मृत्युतुल्य कष्ट होता है। एवमेव नीचे से ऊपर की ओर विद्ध द्वार राजदण्ड को देने वाला होता है। उसे निन्दित संज्ञा से उद्बोधित किया गया है। एवमेव नया द्रव्य काष्ठ पुराने से संयुक्त होने पर क्लेशकारक अर्थात् झगड़ा पैदा करने वाला होता है। एवमेव मिश्रजाति के द्रव्य से निर्मित द्वार अथवा वेश्य (घर) अशुभ कहा गया है।[2]

दोषयुक्त द्वार

दोषयुक्त द्वारों के विषय में कहा गया है यदि दरवाजा स्वयं खुल जाये तो गृहवासियों के लिए उच्चाटन पैदा करने वाला होता है तथा धन-धान्यों एवं बन्धु-बान्धवों के साथ क्लेश करवाता है और जो द्वार स्वयं बंद हो जाये वह बहुत दुःख प्रदान करने वाला होता है। आवाज के साथ बंद होने वाला दरवाजा भयदाता व गर्भ नाशक कहा गया है।[3]

गृहदोष

गृह दोष के विषय में कहा गया है कि यह पांच प्रकार होता है। अतिक्षिप्र-चिरोत्पन्न-कृशद्रव्य-अपाहित तथा अप्रतिष्ठित। जिस प्रकार से मनुष्य अति छोटे एवं दुर्बलशरीर

१. समराङ्गणसूत्रधार अ.स. ४८ ४३-५१

२. वास्तुसार: १०.६०-६१

३. समराङ्गगण सूत्रधार ४८.७३-७४

युक्त होने पर हँसी का पात्र बनता है एवमेव प्रकार से अतिछोटे एवं अतिस्थूल तथा छोटे द्रव्य से भवन भी विरूप तथा अशक्त होता है।[१]

गृह के मध्य में द्वार निर्माण सम्बन्धित दोष–

गृह के मध्य भाग में द्वार का निर्माण करने पर यह निर्माण द्रव्य एवं कोश को नाश करने वाला, गृहपति के साथ भी कलह करवाने वाला, तथा गृहपत्नी के लिए दोष कारक होता है।[२]

शिल्पकार के कर्त्तव्य–

दोषों से युक्त य भवन निर्माण गृहपति एवं स्थपति (राजमिस्त्री) दानों को दोष देने वाला होता है। अतः उपर्युक्त दोषों से बचने के लिए स्थपति को गृहनिर्माण करते समय प्रमाद नहीं करना चाहिए। अतः अपनी कीर्ति की वृद्धि के लिए वास्तुशास्त्रान्तर्गत नियमों के अनुसार गृहनिर्माण करना चाहिए क्योंकि शास्त्रों में गृह निर्माण के विषय में कहा गया है कि गृहपति एवं स्थपति को अनन्त फल की प्राप्ति होती है। अतः गृहपति एवं स्थपति दोनों को ही बड़ी सूझ-बूझ एवं वास्तुशास्त्रीय नियमों के अनुसार गृह-निर्माण करके सांसारिक भोगों का आनन्द लेना चाहिए।[३]

---

१. समराङ्गण सूत्रधार ४८.१०८-१०९

२. गृहमध्ये कृतद्वारं द्रव्यकोशविनाशम्।
आवहेत् कलहं भर्तुभर्यां वास्य प्रदूषयेत्।। वास्तुसार १०.१२६

३. एवं विधं दोषकरं गृहं स्याद् भर्तुश्च-कर्तुश्च यतस्तदेते।
ज्ञेयाः सदा शिल्पिभिरप्रयतैस्त्याज्याश्च दोषाः शुभकीर्तिकामैः।। समराङ्गण सूत्रधार ४८.१४०

वास्तुशास्त्र में उत्तर दिशा का महत्व

आर.के. चतुर्वेदी

वैदिक वाङ्मय में वास्तु शब्द का अर्थ है गृह निर्माण करने योग्य भूमि 'वस् निवासे' धातु से वास्तु शब्द बना है। इसका अर्थ ऐसे मकान, भवन, महल, नगर एवं मंदिर आदि से है जिसमें मनुष्य रहते हैं। वैदिक काल में यज्ञ याज्ञादि के लिए कुण्ड, मण्डप एवं वेदियों के लिए प्रणीत इस वास्तुशास्त्र का विकसित रूप महाभारत में मय द्वारा निर्मित युधिष्ठर के सभाभवन के रूप में दिखलाई देता है। इस भवन का शिल्प इतना विलक्षण एवं समुन्नत था कि जल के स्थान पर स्थल और द्वार के स्थान पर दीवार मिलती थी। यही सभाभवन महाभारत युद्ध का कारण बना।

वास्तु शास्त्र का मुख्य उद्देश्य सर्वत्र सुखी एवं शांत सुरक्षित जीवन से है जहाँ रहकर व्यक्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। इस ब्रह्मांड में सबसे शक्तिशाली प्रकृति है जो निरंतर सृष्टि एवं विकास की द्योतक है। प्रकृति ही मानव जीवन के ह्रास एवं प्रलय का कारण बनती है। प्राकृतिक शक्ति वातावरण में तीन बलों पर आधारित है। (१) गुरुत्व बल (२) चुम्बकीय बल एवं (३) सौर ऊर्जा बल।

अतः इन तीनों बलों का पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के साथ समन्वय होना आवश्यक है।

वास्तु शास्त्र जीवन के संतुलन के लिए भूमि एवं भवन को संतुलन का प्रतिपादन करता है। वास्तु के अनुसार मनुष्य विभिन्न आकार के भवनों का निर्माण अपने उपयोग के लिए करता है। ताकि उसमें वह निरंतर प्रगति, विकास कर सन्तुष्टि तथा सुरक्षा प्राप्त कर सके।

जिस प्रकार हमारा शरीर पंच तत्वों से निर्मित है। उसी प्रकार वास्तु शास्त्र में भवन निर्माण करते समय हमें इन पंचमहाभूतों–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा प्राकृतिक शक्तियों का

समन्वय करना आवश्यक है। इसके साथ ही निम्नलिखित बातों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

(१) भवन निर्माण के लिए उत्तम भूखण्ड का चयन तथा उसके आस-पास का वातावरण ठीक हो।

(२) जिस प्रकार विवाह हेतु वर-वधु का मेलापक किया जाता है। उसी प्रकार मकान व मकान मालिक के नक्षत्रों का भी मिलान किया जाता है दोनो की एक नाड़ी का होना ही वास्तु में निर्माण के लिए शुभ माना जाता है।

(३) भूखण्ड का उचित परीक्षण कर उसमें दिशाओं के अनुरूप विभिन्न कक्षों का निर्माण करना चाहिए।

प्रस्तुत लेख में हमने उत्तर दिशा के अनुरूप निर्माण करने पर प्राप्त शुभ परिणामों की चर्चा की है।

दिशाओं की व्यवस्था

वास्तु एक व्यवस्था है, अनुशासन है, इसके अनुरूप चलने पर व्यक्ति को सुख-सुविधा एवं सुरक्षा का एहसाास बना रहता है। वास्तुविदों का ऐसा मानना है कि दक्षिण व पश्चिम से नकारात्मक एवं उत्तर व पूर्व से सकारात्मक शक्ति (ऊर्जा) मिलती है।

वास्तुशास्त्र के आचार्यों का मत है कि भवन के उत्तर में अधिक खुला स्थान छोड़ना, उत्तर की ओर खिड़की, दरवाजों एवं झरोखों का अधिक होना अच्छा होता है। उत्तर दिशा में जमीन का ढलान होना एवं उत्तर में भवन की ऊंचाई का कम होना भी शुभ होता है। जिस भवन या भूखण्ड में हम रह रहे हैं, उसकी दिशाओं और उनसे जीवन पर होने वाले प्रभाव को जानना भी जरूरी है।

दिशा नापने की विधियाँ

१. सूर्य—क्या सूर्य दिशा का वाचक है या नियामक? सूर्य प्रतिदिन निकलते समय स्थान बदलता है।

२. उत्तरी ध्रुव–ध्रुव तारे के माध्यम से हमारे वास्तुशास्त्रियों ने दिशा मापने की विधि बतलाई है।

३. शंकु द्वारा – मध्यान्ह में ठीक दिशा का ज्ञान होता है। हमेशा दिशा स्थान सापेक्ष होती है। इसी का अपना महत्व होता है।

शंकु व्यवस्था के अंतर्गत दिशा हमें किसी भी स्थान की स्थिति का सही ज्ञान बताती है। उदाहरण–पुरी का कोर्णार्क मंदिर, मथुरा में रंगनाथ जी एवं द्वारिकाधीश मंदिर आदि इसी व्यवस्था पर आधारित हैं। कोर्णार्क मंदिर में सूर्य घड़ी एवं उसमें प्रयुक्त पावरफुल मैग्नेट की व्यवस्था वास्तु सम्मत की गई थी। इस मैग्नेट के कारण कोई भी पानी का जहाज मीलों दरू से ही अपनी दिशा बदल लेता था। अंग्रेजों को जब इसका पता चला तो वे उस पावरफुल मैग्नेट को वहाँ से निकाल कर अपने साथ ले गए।

उत्तर दिशा की वास्तुशास्त्रीय स्थिति

इस भूमण्डल में मुख्यतः चार दिशाएं हैं वास्तुशास्त्र में आठ दिशाओं का विचार किया जाता है। प्रत्येक दिशा का अपना महत्व है। व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले उत्तर दिशा के परिणाम इस प्रकार हैं–

१. चुम्बकीय बल के प्रभाव से उत्तर की ओर सिराहना करने पर व्यक्ति को ठीक से नींद नहीं आती, जिस कारण पूरा विश्राम नहीं मिलता। परिणमतः व्यक्ति को अनिंद्रा, सिरदर्द, जोड़-दर्द आदि विभिन्न बीमारियों का सामना करना पड़ता है।

२. उत्तर एवं पूर्व द्वार वाले कक्षों में तथा भूखंड के पूर्व ईशान एवं उत्तर भाग में बने कमरों में सौर ऊर्जा के प्रभाव के कारण इसमें रहने वाले लोगों में चुस्ती एवं स्फूर्ति पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है तथा इन भूखंडों पर रहने वाले लोग जीवन में प्रगति करते हैं।

३. पूरा ब्रह्माण्ड एक चुम्बकीय क्षेत्र है। पृथ्वी भी एक बहुत बड़ी चुम्बक है ओर उसके दो ध्रुव होते हैं। किंतु पृथ्वी का चुम्बकीय उत्तर ध्रुव दक्षिण गोल में और उसकी चुम्बकीय दक्षिण ध्रुव उत्तर गोल में होता है। चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं। (१) उत्तर ध्रुव (२) दक्षिण ध्रुव। चुम्बक के टुकड़े को किसी चीज से बाँधकर लटका दिया जाय तो याम्योत्तर रेखा में रहता है और उसके सिरे उत्तर-दक्षिण दिशाओं को दिखलाते हैं।

वास्तु सम्मत–उत्तर दिशा में निर्माण के परिणाम निम्नलिखित स्थितियों में पाये जाते हैं। उत्तरदिशा को ध्यान में रखकर किए गए भवन निर्माण से शुभ फलों की प्राप्ति होती है।

(१) वास्तुशास्त्र के अंतर्गत हम चारों दिशाओं और चारों कोणों के आधार पर ८ वीथियाँ बनाते हैं। इसके अन्तर्गत गजवीथि का उत्तर दिशा में नीचा होना शुभ माना गया है जो मंगलकारी एवं धन-धान्य का सूचक है।

(२) भूखंड से उत्तर या पूर्व की ओर कोई नदी, नहर या नाला हो, जिसका प्रवाह दक्षिण से उत्तर या पश्चिम से पूर्व की ओर हो तो शुभ होता है।

(३) भूखंड के उत्तर, पूर्व या ईशान कोण में भूमि गत जलस्रोत कुंआ, तालाब एवं बावड़ी आदि होना शुभ होता है।

(४) भूखंड के पूर्व, उत्तर (ईशान) कोण में उत्तर या पूर्व की ओर विस्तार होना या करना बहुत ही शुभ एवं भाग्यप्रद होता है।

(५) ईशान कोण में उत्तर दिशा की ओर इस भूखण्ड का विस्तार प्रगति एवं अभिवृद्धि दायक होने के कारण अत्यन्त शुभ है।

(६) भूखंड का ईशान कोण में उत्तर एवं पूर्व दोनों दिशाओं में विस्तार प्रगति एवं समृद्धिदायक होता है।

(७) भूखण्ड के वायव्य (उत्तर पश्चिम) में कटान ईशान कोण में विस्तार देता है। अतः यह शुभ है।

(८) जिस भूखंड के तीन ओर मार्ग हो, वह मध्यम होता है। दक्षिण दिशा बंदहो, ऐसा भूखंड लाभदायक होता है तथा इसमें उत्तर में द्वार शुभ होता है।

(९) जिस भूखण्ड के उत्तर एवं पूर्व में मार्ग हो, वह भूखंड आवास एवं व्यापार सभी के लिए प्रगति एवं समृद्धिदायक होता है।

(१०) जिस भूखंड का आकार शुभ हो, उसके पूर्व एवं उत्तर में सड़क हो, उत्तर या पूर्व में वेध हो, दक्षिण व पश्चिम भाग ऊँचा हो, उत्तर या पूर्व में नदी, तालाब, बावड़ी या कोई जलाशय हो और पूर्व में ढलान हो इस प्रकार का भूखण्ड उच्च श्रेणी का होता है।

(११) उत्तर दिशा में कुँआ, नलकूप या भूमिगत टंकी बनाने से शुभ फल मिलता है। उत्तर दिशा में जल होने से अत्यंत सौख्य मिलता है। उत्तर दिशा में भवन नीचा होने से सुख एवं समृद्धि आती है।

(१२) नगदी एवं बहुमूल्य वस्तुओं को रखने के लिए कोषागार का उचित स्थल उत्तर दिशा है। कोषागार की तिजोरी इस प्रकार बनाई जाए कि उसका मुँह उत्तर की ओर खुले।

(१३) संक्रामक रोग से ग्रस्त पारिवारिक सदस्य को विश्राम करने के लिए मकान के उत्तर एवं ईशान के बीच में औषधिकक्ष की जगह पर रखना चाहिए।

(१४) मुख्य रूप से उत्तर दिशा में निम्नलिखित कक्षों को बनाया जाना चाहिए।

कोषागार, भण्डार, स्वागत कक्ष, पानी की टंकी, घर द्वार, कुँआ, लिबिंग रूम, ड्राइंग रूम, पूजाघर, बेसमेंट, लॉन एवं पौधे लगाये जा सकते हैं।

(१५) दुकान या शोरूम का मुख पूर्व एवं उत्तर की ओर होना व्यापारिक दृष्टि से अधिक लाभदायक होता है तथा दुकान के बिक्री काउन्टर पर खड़े सेल्समेन या सेल्सगर्ल का मुँह पूर्व या उत्तर की ओर तथा ग्राहक का मुँह पश्चिम या दक्षिण की ओर होना चाहिए।

(१६) अस्पताल में आपातकालीन (एमरजेंसी) वार्ड, वायव्य कोण के समीप उत्तर में अथवा पूर्व में बनाना उचित है। इसी प्रकार मरीजों को देखने के लिए डाक्टरों के कमरे या ओ पी डी उत्तर या पूर्व दिशा में होनी चाहिए।

(१७) उत्तर की ओर मुख वाला भवन जिसका द्वार भल्लाट संयुत हो तथा जिसकी शाला छागली हो, उसे पुष्कर नाम से पुकारते हैं। इस पुष्कर नामक भवन में रहने वाला व्यक्ति शीलवान, नित्यसंतुष्ट, सहृदय एवं सज्जन होता है। ऐसा व्यक्ति बड़ा ही सौभाग्यशाली, बहुपुत्र एवं धन-धान्य से युक्त होता है।

(१८) राजा, महाराजा एवं विशिष्ट व्यक्तियों के द्वार भी उत्तर दिशा में शुभ होते हैं।

मन्दिर वास्तु

गुरुभगत बरार

वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो नुषस्व, शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।[१]

वैदिक वाङ्मय में वास्तु शब्द का अर्थ गृह निर्माण करने योग्य भूमि है। वस् वासे नामक धातु से वास्तु शब्द बनता है। इस शब्द का वित्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है जिसमें मनुष्य रहते हैं। इस प्रकार वे मकान, भवन, महल, नगर एवं मंदिर आदि जिनमें भी मानव निवास करते हैं सभी वास्तु कहलाते हैं। वास्तु शास्त्र के वैदिक देवता का नाम वास्तोष्पति है। विश्व की प्राचीनतम रचना ऋकसंहिता में वास्तोष्पति से अनेक बार रक्षार्थ प्रार्थना की गयी है।

वैदिक काल में लोगों को भवन निर्माण के शिल्प की जानकारी नहीं थी, परन्तु वैदिक साहित्य का परिशीलन करने पर यह धारणा निर्मूल सिद्ध होती है। वस्तुतः उस समय के ऋषि एवं विद्वान यज्ञों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के कुण्ड मण्डप एवं वेदियों का निर्माण करते थे जिनमें ईंटों का प्रयोग होता था। उपनिषदों में वर्णित अनेक प्रसंगों में आश्रमों में निर्मित पर्णकुटी, यज्ञशाला, गौशाला एवं छात्रावास तथा राजाओं के महलों और मंदिरों का वर्णन मिलता है। इनका निर्माण करने की प्रविधि शुल्बसूत्रों में बतलायी गयी है। अतः यह कहना कि वैदिक काल में लोग भवन निर्माण की प्रक्रिया से अनभिज्ञ थे, यह एक भ्रान्त धारणा है। यह कह सकते हैं कि उस समय वास्तु एवं भवन निर्माण का शिल्प अपनी प्रारम्भिक अवस्था में रहा होगा जिसका विकास आगे चलकर स्थापत्य वेद, पुराण एवं वास्तु के स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में परिलक्षित होता है। वास्तुशास्त्र के प्रमुख तीन भेद किये जा सकते हैं– आवासीय वास्तु, व्यावसायिक वास्तु एवं धार्मिक वास्तु।

---

१. ऋग्वेद ७-५४-१

धार्मिक वास्तु के भेद

१.	पूजास्थल	–	मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च, आदि
२.	साधनास्थल	–	आश्रम, मठ, स्थानक आदि
३.	सार्वजनिक स्थल	–	धर्मशाला, विश्रामालय, आदि
४.	जलाशय	–	कुआँ, बावड़ी, सरोवर आदि
५.	संस्थान	–	वेद पाठशाला, मदरसे, धर्मशालाएें, आधुनिक शिक्षा संस्थान, चैरिटी कार्य आदि।

भारतीय देव प्रासाद अत्यन्त पवित्र कल्पना है। जगत् के सृष्टा देवाधिदेव का निवास देवालय में ही माना जाता है। देवमन्दिर का गर्भ गृह ही सृष्टि का मूल प्राण तत्त्व है उसे ही हिरण्य कहा जाता है। अतः प्रत्येक देव प्राण तत्व है, वही हिरण्य है। **"एकं सद्विप्राः बहुधावदन्ति"** के अनुसार सत्य स्वरूप एक ही देव अनेक देवों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। यह मानव शरीर और इसके भीतर प्रतिष्ठित प्राणतत्व विश्वकर्मा की सबसे रहस्यमयी कृति है। देवमन्दिर का निर्माण भी सर्वथा इसी की अनुकृति है। जो चेतना या प्राण है वही देव-विग्रह या देव प्रतिमा है, मन्दिर उसका शरीर है। प्राण प्रतिष्ठा के उपरान्त पाषाण निर्मित प्रतिमा देवत्व प्राप्त करती है। जिस तरह इस प्रत्यक्ष जगत् में भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक। ये तीन लोक हैं, उसी प्रकार मानव शरीर और देव मन्दिर में भी तीन लोकों की परिकल्पना है। पैर पृथ्वी है, मध्यभाग अन्तरिक्ष और सिर द्युलोक है। इसी प्रकार देवमन्दिर की जगती या अधिष्ठान-पादस्थानीय, गर्भगृह मध्यस्थानीय तथा शिखर-द्युलोक या शिरस्थानीय भाग है। वास्तव में मानव देह, अखिल ब्रह्माण्ड और देवालय इन तीनों का स्वरूप सर्वथा एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ एवं प्रतीकात्मक है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है और जो उन दोनों में है उसी का मूर्त रूप देवालय है। इसी सिद्धान्त पर भारतीय वास्तु विद्या में देवालय-निर्माण की ध्रुव कल्पना हुई है। मन्दिर के गर्भ गृह में जो देव-विग्रह है वह शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभावात्मक अनादि और अनन्त ब्रह्मतत्व का प्रतीक है। वस्तुतः देव और भूत ये दो ही तत्व हैं जिनसे सम्पूर्ण विश्व की रचना हुई है। यह देवतत्व, अमृत, ज्योति और सत्य स्वरूप है जबकि मूल तत्त्व; मर्त्य, तम और अनृत है। मानव जाति की एक ही समस्या है कि मृत्यु, अन्धकार और असत्य से अपनी रक्षा करना तथा अमृत, ज्योति और सत्य की शरण में जाना। यही देवाराधन और देवाश्रय है। देव की शरणागति ही मनुष्य के उद्धार के लिए एकमात्र मार्ग है।

कोई ऐसा प्राणी नहीं जो मृत्यु और अन्धकार से बचकर अमृतत्व और प्रकाश की कामना न करता हो। अतएव ईश्वर की उपासना एवं देवाराधना ही एकमात्र श्रेयपथ है।

देवतत्व मूल रूप में अव्यक्त है। विवेकशील व्यक्ति ध्यानावस्थित होकर आत्मशक्ति के जागरण से उस देव तत्व का साक्षात्कार करता है। योगीजनों के ध्यान की इस अद्‌भुत शक्ति को ही अनन्य प्रेम या भक्ति कहते हैं। भक्ति की शक्ति से ही देवालय में देव दर्शन से तथा यज्ञ-यागादि अनुष्ठान के माध्यम से व्यक्ति के त्रिविध-ताप का शमन तथा जीवन सुखमय एवं सुरक्षित होता है। वस्तुतः देवालय का निर्माण एवं यज्ञ का अनुष्ठान इन दोनों में भी प्रतीकात्मक समानता है। यज्ञों के द्वारा देवतत्व की उपासना तथा देव मन्दिरों के द्वारा उसी देवतत्व की आराधना - ये दोनों ही भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में समान प्रतीक हैं। भारतीय वास्तु विद्या में देवालय निर्माण एवं देव-प्रतिष्ठा के सन्दर्भ में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

भारतवर्ष की संस्कृति में धर्म प्रमुख स्थान रखता है। धार्मिक विचार मानव-जीवन के कर्मों का संचालन करता है और मनुष्य का जीवन दर्शन भी उसी पर आधारित है। पुरुषार्थ में मोक्ष की प्राप्ति को सर्वोपरि समझ कर सारे कार्य उसी की उपलब्धि के निमित्त किए जाते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में वर्णन आता है कि यति तपस्या का जीवन व्यतीत कर ब्रह्म में लीन होने का प्रयत्न करते हैं, ताकि संसार के बंधनों से मुक्त हो जाएँ जिस मनुष्य को वेदान्त का परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता, वह संसार में पुनः जन्म लेता है। उपनिषदों में विशेषकर छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक में कर्म के सिद्धान्त पर बल दिया गया, जिससे व्यक्ति को जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ाने का अवसर एवं प्रोत्साहन मिलता रहे।

वैदिक युग में प्राकृतिक-देवों की पूजा का विधान था। दार्शनिक विचारों के साथ रुद्र तथा विष्णु पूजा का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में रुद्र का वर्णन आता है। वह प्रकृति के देवता वनस्पति तथा पशुचारण से संबंधित थे। दूसरे देवता विष्णु यज्ञ के देवता माने जाते थे। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि पुराणों में विष्णु की कल्पना वेदों से ली गई हैं वामन या वराह का उल्लेख भी ब्राह्मण ग्रन्थों से मिलता है।

यह कहना उचित होगा कि कालान्तर में देवताओं की पूजा जिस रूप में की जाने लगी, वह प्रकार वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है परन्तु ज्ञान प्राप्ति के लिए मनन तथा देवता का चिंतन आवश्यक था। वैदिक दर्शन में शक्ति के लिए स्थान न होने पर भी देवपूजन को स्थान मिल चुका

था। यही कारण है, 'देवालय' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में मिलता है। यद्यपि प्राचीन भारतीय संस्कृति में सामूहिक धार्मिक कृत्यों का अभाव सा था किन्तु व्यक्तिगत रूप में देवपूजन की प्रथा प्रचलित थी। समाज में देवता के रूप या आलय (स्थान) की स्थिति अज्ञात नहीं थी। वैदिक संस्कृति में देवपूजा के लिए पुरोहित की तथा क्षत्रियों के लिए धार्मिक स्थानों की नितान्त आवश्यकता थी। अतएव, वैदिककालीन देवालय को मंदिर (पूजास्थान) कहना उपयुक्त होगा। पश्चिमी विद्वानों का अनुमान है कि वेदों में देवालय (मंदिर) नामक संस्था का अभाव दिखता है परन्तु उनके कथन में कोई तथ्य नहीं है। मंदिरों का निर्माण देवालय के रूप में वैदिक युग के पश्चात होने लगा। महाभारत में वास्तुकला का विशेष परिचय मिलता है। इन भवनों में शिल्पकला उच्च कोटि की थी। यथा–

यस्तु प्रासादमुख्योऽन्न विहितः सर्वशिल्पिभिः।
अतीव रम्यः सोऽप्यत्र प्रहसन्निव तिष्ठति।।

इष्टदेवों के स्थान निश्चित थे जिन्हें देवस्थान देवातयन या मंदिर की संज्ञा दी जाती थी। सभी का अर्थ है - रहने का स्थान। यह कहना उचित होगा कि वैदिक परम्परा में मंदिर के लिए स्थान नहीं था।

प्राचीनकाल में चौथी शती से गुप्त सम्राटों का शासन आरम्भ होता है। उस युग में वैष्णवधर्म राजधर्म का स्थान ले चुका था। अतएव भक्तिभावना से प्रेरित होकर राजा तथा प्रजा ने देवता के स्थान की प्रतिष्ठा की। उसी को मंदिर कहेंगे। बौद्धकाल में विहारों के केन्द्रीय स्थान में बुद्ध प्रतिमा स्थापित होने लगी थी जिसे गर्भगृह कहा जाता था। एलौरा में ऐसी गुफाएँ हैं जहाँ बुद्ध प्रतिमा स्थापित है।

मंदिरों की आध्यात्मिक भावनाएँ

भारत की प्राचीन स्थापत्यकला में मंदिरों का विशिष्ट स्थान है। भारतीय संस्कृति ने बाहरी बातों को सदैव आत्मसात किया। भारतीय मंदिर देश की परम्परा की उपज है। प्राचीन भारत की कला में धर्म के लोकप्रिय स्वरूप की छाप दृष्टिगोचर होती है। मंदिर का वास्तु न केवल साधारण जन के आवास से भिन्न है अपितु गर्भ गृह के ऊपर विमान की उच्चता आध्यात्मिक भावना तथा विशिष्टता का प्रतीक है। मंदिर का शिखर दूर से ही उच्च स्वर में ईश्वर की सर्वव्यापकता का उद्घोष करता है। समीप आते ही मानव भक्ति में विभोर हो जाता है। संसार की ओर से हटकर

आध्यात्मिक भावना जग जाती है। मंदिर की भित्तियों, स्तम्भों तथा छतों पर उत्कीर्ण अथवा उभरी हुई आकृतियों के मध्य दर्शक अपने को भूल जाता है। देवी देवताओं के सम्मुख भक्त नतमस्तक हो जाता है तथा अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप कर निर्मल एवं पवित्र भावों के निमित्त जागरूक होता है। मंदिरों के विभिन्न स्थानों पर कलाकारों ने पशु पक्षी, पुष्पलता पौराणिक दृश्यों और लोकप्रथाओं का प्रदर्शन कर सामाजिक चित्रण उपस्थित किया है तथा तरुणियाँ एवं कामोत्तेजक प्रसंगों के द्वारा दुष्टों के आसुरी कर्मों को दिखाया गया है। भक्तों के सामने देवों के प्रणय चरित्र का चित्रण मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है, यानी मंदिर का स्थापत्य तथा शिल्प धार्मिक भावना का संचार करते हैं। भक्तों को यह आभास तक न होता कि जीवन में अनास्था रखने से ही कार्य की सिद्धि होगी। भगवान के पूजन से ही जीवन में पवित्र स्त्रोत मिलेगा और संसार में धार्मिक समुन्नति हो सकेगी। शिल्पियों में आत्मत्याग की इतनी गहरी भावना थी कि कहीं भी उन्होंने अपना नामोल्लेख तक नहीं दिया। यही कारण है कि कलाकृतियों के रचयिता के नाम अज्ञात हैं। मंदिरों की रचना कला सांसारिक तो थी नहीं, धार्मिक भावनाओं सहित आध्यात्मिक साधना का एक मार्ग बना। इन बातों को ध्यानपूर्वक सोचा जाए तो प्रकट होगा कि मंदिर केवल पूजा गृह ही नहीं थे, बल्कि सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र भी थे। मंदिरों की स्थापना तथा निर्माण से केवल वातावरण ही परिवर्त्तित नहीं होता था अपितु आसपास की धार्मिक प्रवृत्तियों के जागरण में भी सहायता मिलती है। मंदिर अपनी विशालता तथा दृढ़ता से उन विचारों को स्थापत्य प्रदान करता, जिनका उद्देश्य आदर्शों तथा मूल्यों की रक्षा करना है। जिस भू-भाग में मंदिर, निर्मित होता है, उस क्षेत्र में बसी जनता की धार्मिक गतिविधि वहीं केन्द्रित हो जाती। राजा तथा प्रजा समीप की भूमि को मंदिर के लिए दान देकर धार्मिक पिपासा को शान्त करते हैं और स्थानीय जनता को प्रेरणा भी देते हैं। आध्यात्मिक चिंतन तथा जीवन के मूल्यों की सार्थकता भक्तजन मंदिरों में प्रवेश कर ही प्राप्त कर सकते हैं।

मंदिर शिखर के स्वरूप

मंदिरों में छत के ऊपर चारों तरफ एक प्रकार के गुंबद का आकार बना होता है जिसे 'शिखर' कहते हैं। 'शिखर' शब्द से मंदिर के गर्भगृह की छत की ऊपरी बनावट से तात्पर्य है। छठी सदी से गर्भगृह की चपटी (समतल) छत के ऊपर नया आकार बनने लगा। बनावट चारों दिशाओं से एक साथ आरम्भ होती है। वह क्रमशः सिमटती जाती है चारों तरफ ऊपरी आकार की पंक्तियाँ एक स्थान पर मिल जाती हैं जिसे भारतीय वास्तुकला में 'शिखर' के नाम से पुकारा जाता

हैं। इस बिन्दु के ऊपर दो आकार होते हैं। सबसे ऊपरी भाग को कलश तथा निचले भाग को आमूलक कहते हैं। इस प्रकार का शिखर उत्तर भारत के मंदिरों में पाये जाते हैं इसीलिए इसे आर्यशिखर कहते हैं, भारत के मंदिरों में कई प्रकार के शिखर होते हैं।

सभी क्षेत्रों के नामकरण में भी विभिन्नता आ गई। प्राचीन काल में अधिक भू-भाग में स्थित पवित्रतम् स्थल को विमान कहा जाता था। उसके ऊपर शुण्डाकार को 'शिखर' कहते थे, उसे 'मीनार' भी कहा जा सकता है। विमान के भीतरी भाग में इष्टदेव की प्रतिमा स्थापित की जाती थी। उसके पूर्वी भाग में एक प्रवेश द्वार रहता था। गर्भगृह के सम्मुख एक स्तम्भसहित मण्डप निर्मित्त होता था जहाँ उपासक पूजा के निमित्त एकत्रित होते थे। सातवीं सदी से मंदिर निर्धारित स्वरूप में बनाए गए और शिल्पशास्त्र के आदेशों का कलाकारों ने अक्षरशः पालन किया। शिल्पशास्त्र में स्थापत्यकला के संबंध में नागर, द्राविड़ एवं वेसर जैसे तीन प्रकार के शिखरों का उल्लेख मिलता है—

शिल्पशास्त्र में वर्णित शैलियों के समाने कोई उदाहरण उपस्थित नहीं किया जा सकता। सभी नाम क्षेत्रीय आधार (भौगोलिक आधार) पर स्थिर हुए। पहली नागर शैली उत्तरी भारत में प्रयुक्त मिलती है। हिमालय से विन्ध्य पर्वतमाला के मध्य भाग में नागर शिखर दीख पड़ते हैं। द्राविड़ रीति का प्रयोग द्राविड़ देश (कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक का भाग) में होता रहा। सर्वप्रथम शिखर शैली पर मंदिरों को वर्गीकरण किया गया, किन्तु कालान्तर में दोनों प्रकार के मंदिरों के मापचित्र तथा ऊँचाई में भी विभेद होता गया। उत्तर में नागर तथा द्राविड़ देश में प्रचलित द्राविड़ शैली के अतिरिक्त अस्पष्ट रूप में तीसरी वेसर शैली का उल्लेख मिलता है जिस रीति का प्रयोग विन्ध्य तथा कृष्णा नदी के मध्य भाग में किया गया। इस भाग में चालुक्य वंश का राज्य था। अतः पुरातत्ववेत्ता उसे 'चालुक्य शैली' भी कहते हैं परन्तु यह मिश्रित रीति अधिक समय तक काम न कर सकी। इसमें कुछ अवयव दोनों शैलियों से ग्रहण किये गये। मिश्रित होने के कारण ही नाम वेसर विख्यात हुआ। दसवीं सदी के बाद भारत में नागर तथा द्राविड़ मूल्यों को लेकर मंदिर तैयार किए गए। वास्तुशास्त्र में वर्णन आता है कि नागर मंदिर आधार से सर्वोच्च अंश तक चतुष्कोण होता है। परन्तु, इस प्रकार का चतुष्कोणों वाला उल्लेख सभी इमारतों के संबंध में प्रस्तुत किया गया है। द्राविड़ रीति में आठ कोण आकार दीख पड़ता है तथा वेसर में गोल आकार। इनके आधार पर उन शैलियों का विशेष मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थिति में पृथक-पृथक शैली का प्रत्यक्ष रूप (आकार) देखकर ही उसकी विशेषता बतलायी जा सकती है।

उत्तरी भारत के मंदिरों के दो प्रमुख लक्षण हैं। प्रथम उनकी योजना तथा द्वितीय ऊँचाई। छठी शताब्दी के मंदिरों में स्वस्तिकाकार योजना सर्वत्र दीख पड़ती है। इसके अतिरिक्त वक्ररेखीय ऊँचाई को भी विशिष्टता दी गयी है। भारत के उत्तरी भाग में इन विशेषताओं के साथ मध्य युग तक मन्दिर बनते रहें। नागर वास्तुकला में दोनों विशिष्ट बातें सदा दृष्टिगत होती हैं वर्गाकार योजना के आरम्भ होते ही दोनों कोनों पर कुछ उभरा भाग प्रकट हो जाता है जिसे 'अस्त्र' का नाम दिया गया है। इस शैली के प्रमुख मंदिरों में देवगढ़ (झाँसी, उत्तर प्रदेश) का दशावतार, नाचना कुठारा का महादेव मंदिर तथा भीतर गाँव कानपुर का ईंटों के मंदिरों का नमूना उपस्थित किया जा सकता है। इन सब में नागर आर्य शिखर का आरम्भ दीख पड़ता है। चौड़ी समतल छत से उठते हुए शिखर की प्रधानता है।

द्राविड़ शैली में विमान का ऊपरी भाग पिरामिड की तरह ऊँचा होता चला जाता है। उसमें शिखर कई मंजिल के होते हैं। गर्भगृह की द्राविड़ शैली के शिखर की प्रतिकृति प्रत्येक मंजिल में दीख पड़ती है यह बौद्ध स्तूप से ऊपरी आकार का अनुकरण हुआ ऐसा जान पड़ता। उसमें गोली के आकार का शवकक्ष है। इसके कारण यह स्तूपी या स्तूपिका कहलाता है।

शिखर मंजिल के ऊपर मंजिल की बनावट तथा प्रत्येक ऊपरी भाग में केन्द्रीय शिखर की छोटी स्तूपी द्राविड़ शैली की विशेषता है। इस शैली की योजना में भीतरी वर्गाकार गर्भगृह को विस्तृत चौकोर अहाते में निर्मित करते थे जिसकी छत प्रदक्षिणा पथ को ढ़क लेती है। बाहरी दीवार को स्तम्भों से ताक का रूप दिया जाता है। गुंबदी भाग अर्द्ध गोलाकार या रेल के डिब्बे के ऊपरी हिस्से के सदृश गोल बनाया गया है। दक्षिण भारत के मंदिरों में लम्बे गलियारा तथा विस्तृत स्तम्भोयुक्त मण्डप द्राविड़ शैली के आवश्यक अंग हैं। इस शैली में निचली बड़ी मंजिल से ऊपरी आकार घटता जाता है। इस प्रकार मंजिल के बाद मंजिल की इमारत बन जाती है। यदि उत्तरी भारत के कला नमूनों में द्राविड़ शैली का मूल है, तो भी वह चौथी शताब्दी से पहले का अनुकरण नहीं माना जा सकता। द्राविड़ शैली में विमान का आकार ही केन्द्रक बन गया। यदि यह माना जाय कि उत्तरी भारत से इसे नकल किया गया और मंजिल वाली इमारत को द्राविड़ शैली में कार्यान्वित किया गया तो यह विवादास्पद हो जायेगा कि किस मार्ग से वह शैली दक्षिण पहुँची तथा उत्तरी भाग में वह आकार प्रकार त्याज्य क्यों हो गया? उत्तर भारत के विस्तृत भू भाग में नागर शैली का वर्णन शिल्पशास्त्र में मिलता है। विन्ध्य से हिमालय तक के भौगोलिक क्षेत्र में स्थानीय विभिन्नता का अनुमान सरलता से किया जा सकता है। स्थानीय विभेद का यह अर्थ नहीं है कि मूल स्वरूप

में परिवर्तन आ गया, अथवा विषय की दृष्टि से उसमें मौलिक लक्षणों का अभाव हो गया है। यही कारण है कि भारत के प्राचीन मंदिरों का एक साथ विवरण उपस्थित करना कठिन है। भौगोलिक दृष्टि से क्षेत्रीय शैली सदैव प्रभावी रहती है।

चतुषष्टिपदवास्तु

मन्दिर रचना का मुख्याधार चतुष्षष्टिपद वास्तु है। इसमें चारों दिशाओं में द्वार, उत्तर-पूर्वी भाग में वास्तुपुरुष के सिरवाले क्षेत्र में गर्भगृह तथा दक्षिण-पश्चिमी भाग में वास्तुपुरुष के पैर वाले क्षेत्र में गोपुर या सिंहपौर (मुख्य प्रवेश द्वार) बनाया जाता है।

देवताओं के सहित चतुषष्ठीपदवास्तु चक्र

ईशान — आग्नेय

उत्तर — दक्षिण

शिखी दिति	पर्यन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	अन्तरिक्ष अनिल
अदिति	पर्जन्य अदिति	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश पूषा	पूषा
भुजङ्ग	भुजम	आपवत्स आप	अर्यमा	अर्यमा	सविता सवित्र	वितथ	वितथ
सोम	सोम	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	बृहतक्षत	बृहतक्षत
भल्लाट	भल्लाट	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	यम	यम
मुख्य	मुख्य	रुद्र राजयक्ष्मा	मित्र	मित्र	इन्द्र जयन्त	गन्धर्व	गन्धर्व
नाग	नाग शोष	असुर	वरुण	कुसुमदन्त	सुग्रीव	भृंगराज दौवरिक	भृंगराज
रोग पापयक्ष्मा	शोष	असुर	अर्यमा	कुसुमदन्त	सुग्रीव	दौवरिक	मृग पितर

वायव्य — पश्चिम — नैऋत्य

मंदिर के लिए ब्राह्मणी भूमि प्रशस्त होती है। भूमि के घनत्व एवं शल्य परीक्षा की वास्तु शास्त्रीय नियमों के अनुसार करनी चाहिए। इसके लिए मार्ग एवं वेध का विचार भी सामान्य नियमों से ही किया जाता है। मंदिर निर्माण के लिए वर्गाकार, आयताकार वृत्ताकार अष्टभुजाकार या षड्भुजाकार भूखण्ड शुभ होता है। मंदिर बनाने में सर्वप्रथम गर्भगृह की स्थिति और उसका माप निर्धारित कर लेना चाहिए। गर्भगृह के मान के बराबर दायीं एवं बायीं ओर के कक्ष और गर्भगृह से तीन गुना मुख्य मण्डप बनाया जाता है। गर्भगृह से दोगुना विस्तार और चार गुना मंदिर की ऊँचाई होती है। गर्भगृह के चौथाई मान का द्वार होता है द्वार के मान में से उसका अष्टमांश घटाने से प्रतिमा का मान होता है। मंदिर के विस्तार एवं गर्भगृह के मान के अनुसार बृहत्संहिता एवं अन्य वास्तुग्रन्थों में बीस प्रकार के मंदिरों का उल्लेख मिलता है।

यथा–

१. मेरु	२. मन्दर	३. कैलाश
४. विमानच्छन्द	५. नन्दन	६. समुद्र
७. पद्म	८. गरुड़	९. नन्दिवर्धन
१०. कुञ्जर	११. गुहराज	१२. वृष
१३. हंस	१४. सर्वतोभद्र	१५. घट
१६. सिंह	१७. वृत्त	१८. चतुष्कोण
१९. षोडशाश्रि	२०. अष्टाश्रि	

इन मंदिरों के निर्माण एवं इनके शिल्प पर दर्जनों ग्रन्थ लिखे गये हैं। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहद् संहिता में मन्दिर की संज्ञा प्रासाद की है इसलिए उन्होंने प्रत्येक के साथ प्रासाद शब्द को जोड़ा इन बीस प्रसादों का वर्णन इस क्रम में वृहत्संहिता में उपलब्ध होता है। यथा–

१. **मेरु प्रासाद**–इस प्रासाद में छः कोण, बाहर भूमि, अनेक प्रकार की खिड़कियाँ, चारों दिशाओं में द्वार और चौड़ाई ३२ हाथ होती है।

२. **मन्दर प्रासाद**–यह प्रासाद छः कोण, तीस हाथ की चौड़ाई, दस भूमि तथा कई शिखरों वाला होता है।

३. **कैलाश प्रासाद**—यह प्रासाद छः कोण, आठ भूमि, अट्ठाईस हाथ चौड़ाई तथा कई प्रकार के शिखरों वाला होता है।

४. **विमान प्रासाद**—यह प्रासाद अनेक प्रकार की जालीदार खिड़कियों, इक्कीस हाथ चौड़ाई, छः कोण और आठ भूमियों वाला होता है।

५. **नंदन प्रासाद**—यह प्रासाद छः कोण, छः भूमि, तथा बत्तीस हाथ चौड़ाई वाला होता है।

६. **समुद्र प्रासाद**—यह प्रासाद एक भूमि वाला तथा आकार में गोल व शृंग युक्त होता है।

७. **हंस प्रासाद**—यह प्रासाद हंस पक्षी के आकार का बारह हाथ चौड़ा, एक भूमि तथा एक शृंग वाला होता है।

८. **घट प्रासाद**—यह प्रासाद घड़े या कलश के आकार का, आठ हाथ चौड़ाई, एक शृंग और एक भूमि वाला होता है।

९. **सर्वतोभद्र प्रासाद**—यह प्रासाद चारों दिशाओं में द्वार युक्त अनेक शिखरों, अनेक चंद्रशालाओं, छब्बीस हाथ चौड़ाई वाला चतुष्कोण और पाँच भूमियों से युक्त होता है।

१०. **सिंह प्रासाद**—यह प्रासाद प्रमुख द्वार पर सिंह की बड़ी प्रतिमाओं से युक्त द्वादशकोण, आठ हाथ चौड़ाई, एक भूमि तथा सामान्य शिखर वाला होता हैं।

११. **वृत्त प्रासाद**—इस प्रासाद का आकार एक वृत्त की भाँति होता है। इस प्रासाद में भीतर प्रकाश कम होता है। यह आठ हाथ विस्तार एवं एक भूमि वाला होता हैं।

१२. **चतुष्कोण प्रासाद**—यह प्रासाद चौकोर यानी चार कोणों वाला होता है। यह भी कम प्रकाश से युक्त होता है।

१३. **पद्म प्रासाद**—यह प्रासाद एक भूमि, पद्माकार एवं एक शृंग वाला होता है।

१४. **गरुड़ प्रासाद**—यह प्रासाद शीर्ष से गरुड़ के आकार वाला होता है। इसमें चौबीस हाथ चौड़ाई, चौबीस शिखर तथा सात भूमियाँ होती हैं।

१५. **नंदिवर्धन प्रासाद**--यह प्रासाद भी गरुड़ के आकार का होता है लेकिन इसमें पूँछ व पंख नहीं होते। इसमें सात भूमियाँ, चौबीस हाथ चौड़ाई, चौबीस शिखर एवं छः कोण होते हैं।

१६. **कुंजर प्रासाद**–यह प्रासाद गजपृष्ठ सदृश सोलह हाथ चौड़ाई, भूमि एक तथा तीन चंद्रशालाओं से युक्त होता है।

१७. **गुहराज प्रासाद**–यह प्रासाद गुह के आकार का होता है। सोलह हाथ चौड़ाई तथा तीन चंद्रशालाओं से युक्त होता है। यह गुफा जैसा ही दिखता है। भगवान् कार्तिकेय का नाम भी गुहाराज है।

१८. **वृष प्रासाद**--यह प्रासाद एक भूमि एक शृंग, बारह हाथ चौड़ाई वाला तथा चारों ओर से वृत्ताकार होता है।

१९. **षोडशाश्रि प्रासाद**–यह प्रासाद सोलह कोणों वाला होता है इसमें अन्दर प्रकाश कम होता है। आठ हाथ विस्तार से युक्त एक भूमिवाला होता है।

२०. **अष्टाश्रि प्रासाद**–यह प्रासाद आठ कोणों वाला होता है। यह भी कम प्रकाश युक्त होता है। एक भूमि तथा आठ हाथ विस्तार के साथ सामान्य शिखर से सुशोभित होता है।

मंदिर निर्माण विधि

मंदिर का जितना विस्तार हो उससे दुगुनी ऊँचाई और ऊँचाई का तिहाई (१/३) कटि होती है, सीढ़ी के ऊपर जहाँ से देवालय का प्रारम्भ होता है उसको कटि कहते हैं। विस्तार का आधा गर्भ, शेष सब दिशाओं में भित्ति बनती हैं, गर्भ के चतुर्थांश के तुल्य द्वार की चौड़ाई होती है तथा चौड़ाई का दुगुणा द्वार की उचाँई होती है। द्वार की ऊँचाई के चतुर्थाश ने तुल्य शाखा (चौखट) का बाजू और उदुम्बर (चौखट के ऊपर की लकड़ी) की चौड़ाई होती है। शाखा की चौड़ाई के तुल्य अन्य शाखाओं की मोटाई होती है। शाखाओं की चौड़ाई के बीच में तीन, पाँच, सात या नौ शाखाऐं होने से द्वार श्रेष्ठ होता है। दोनों शाखाओं के नीचे की चौड़ाई में दो प्रतिहारियों की मूर्ति खुदवानी चाहिए। शाखाओं के तीन चौथाई भागों को हंस आदि शुभ पक्षी, बेल, स्वस्तिक, कलश, स्त्री पुरुष का जोड़ा, पत्ते और लताओं से सुशोभित करें। द्वार के ऊचाँई में से अष्टमांश न्यून करके

जो बचे उतनी देव प्रतिमा पिण्डिका के सहित होनी चाहिए। इसमें से दो भाग प्रतिमा तथा एक भाग पिण्डका का होना चाहिए। अतः कह सकते हैं कि मन्दिर निर्माण का सम्बन्ध एक दूसरे से अन्योन्याश्रित है। विस्तार से प्रतिमा और प्रतिमा के विस्तार का ज्ञान हो सकता है।

मंदिर देवताओं के निवास गृह होते हैं इसलिए साधारण लोगों के आवासीय भवनों की उपेक्षा मंदिरों में सौन्दर्य और उनकी दृढ़ता पर खास ध्यान देना आवश्यक समझा जाता है जिससे वे चिरस्थायी रहें। इसलिए मंदिर निर्माण में ईंट, पत्थर, धातु तथा रत्न के उपयोग को पुण्य फल प्रदायक कहा गया है। मंदिर निर्माण में भूखण्ड के पश्चिम में रथशाला, मठ (प्रमुख धर्मगुरु का स्थान) और उत्तर में रथ का प्रवेश द्वार बनाना चाहिए। मंदिर जिस आकार का हो उसी आकार की उसकी जगती अर्थात् अधिष्ठान बनाना चाहिए, क्योंकि यही देवालय का आसनरूप होता है। मुख्य देवमंदिर के आगे, पीछे, बायीं तथा दाहिनी ओर जो दूसरे मंदिर बनवाये जायें उन सबका निर्माण इस प्रकार हो कि मुख्य मंदिर के गर्भगृह का वैध न हो। शिवलिंग के सामने पूजा हेतु किसी भी अन्य देवता की स्थापना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जैसे सूर्य के तेज से अन्य ताराओं की आभा नष्ट हो जाती है वैसे ही दूसरे देवताओं की प्रभा नष्ट हो जाती है, जिससे वे देवता भोगादि सुख सम्पत्ति नहीं दे सकते। मंदिर में शिव के सम्मुख शिव, ब्रह्मा के सम्मुख ब्रह्मा, विष्णु के सम्मुख विष्णु, जिस देव के सामने जिन देव और सूर्य के सामने सूर्य, इस तरह परस्पर स्वजातीय देव के स्थापित करने पर दोष नहीं माना जाता।

चण्डिका आदि देवी मन्दिर के सामने मातृदेवता, यक्ष, क्षेत्रपाल और भैरव आदि देवों को स्थापित करने पर दोष नहीं होता, क्योंकि ये परस्पर हितैषी हैं। ब्रह्मा और विष्णु ये दोनों देव एक नाभि में हों अर्थात् उनका देवालय परस्पर सामने हों तो दोष नहीं है। भगवान शिव के सामने दूसरे देव का दृष्टिवेध होता है जिससे बड़ा भय उत्पन्न होता है। शिवालय और अन्य देवों के देवालय, इन दोनों के बीच में प्रसिद्ध राजमार्ग (जन सामान्य के लिए रास्ता) हों, अथवा दीवार हो तो दोष नहीं होता। शिव स्नानोदक गुप्त मार्ग से चण्डगण के मुख में गिरे, इस प्रकार स्नान के जल की निकासी के लिए गुप्त नाली का निर्माण करना चाहिए। शिव स्नान का जल जिस नाली से बह रहा हो उसके ऊपर अगर कोई आच्छादक न हो तो दिखते हुए स्नान जल का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। स्नान जल का उल्लंघन करने से पूर्वार्जित पुण्य का नाश होता है। पूर्वाभिमुखी और पश्चिमाभिमुखी द्वार वाले देवालय में जल के निकास हेतु नाली उत्तर दिशा में रखनी शुभ है। शिवलिंग के लिए तो यह नियम विशेष रूप से प्रशंसनीय है। मण्डप में जो देव स्थापित हों उनके

स्नान जल के निकास के लिए नाली बायीं तथा दाहिनी ओर रखनी चाहिए, अर्थात् मुख्य देवता के बायीं ओर स्थापित देवों के स्नानोदक के निकास की नाली बायीं ओर तथा दाहिनी ओर स्थापित देवों के स्नान जल के निकास हेतु नाली दाहिनी ओर ही बनवायें। जगती या अधिष्ठान (मन्दिर के मूलाधार) के चारों ओर नाली बनाकर निकास उत्तर की ओर रखें।

पूर्वपश्चिमाभिमुखदेव

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र और कार्तिकेय ये देव पूर्व और पश्चिम मुख वाले हैं। इनका मुख दक्षिण और उत्तर में नहीं होना चाहिए। अतः इन्हें इस प्रकार स्थापित करना चाहिए कि इनका मुख पूर्व और पश्चिम की ओर ही रहे। नगर के मध्य और बाहर स्थापित किये हुए देवों का मुख नगर के सम्मुख रखना श्रेष्ठ होता है। गणेश, कुबेर और मां लक्ष्मी देवी को नगर के द्वारों पर वास्तु के अनुसार स्थापित करना सुखदायक होता है।

दक्षिणाभिमुखदेव

गणेश, भैरव, चण्डी, नवग्रह, मातृदेवता और कुबेर इन देवों को दक्षिणाभिमुख स्थापित करें तो शुभ फल देने वाले होते हैं।

विदिशाभिमुखदेव

वानरेश्वर पवनतनय हनुमानजी का मुख नैर्ऋत्य विदिशाभिमुख रखें, तो श्रेष्ठ होता है। शेष अन्य किसी भी देवता का मुख नैक्तृत्यादि विदिशा में कभी भी नहीं रखना चाहिए।

सूर्य आयतन

सूर्य के पंचायतन देवों में—मध्य में सूर्य उसके प्रदक्षिणा क्रम से गणेश, विष्णु, चण्डी देवी और भगवान शिव को स्थापित करें तथा नवग्रह की मूर्तियाँ भी स्थापित करनी चाहिए।

गणेश आयतन

गणेश के पंचायतन देवों में मध्य में गणेश, उसके बाद प्रदक्षिणा क्रम से चण्डी देवी, महादेव विष्णु और सूर्य की स्थापना करें तथा द्वादश गणों की मूर्तियाँ भी स्थापित करना श्रेयस्कर होता है।

विष्णु आयतन

विष्णु के पंचायतन देवों में–मध्य में विष्णु को स्थापित करके उसके प्रदक्षिणा क्रम में गणेश, सूर्य, अम्बिका और शिव को स्थापित करें। गोपियों की और अवतारों की मूर्तियाँ तथा द्वारिका नगरी को स्थापित करें।

शिवायतन

शिव के पंचायतन देवों में–मध्य में शिव को स्थापित करके, उसके प्रदक्षिणा क्रम से सूर्य, गणेश, चण्डी और विष्णु को स्थापित करें।

त्रिदेव स्थापना

त्रिपुरुष मंदिर में शिव की स्थापना मध्य भाग में करें। उनकी बायीं ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा की स्थापना करनी चाहिए। इसके विपरीत स्थापना भयदायक होती हैं।

त्रिपुरुष मंदिर में ब्रह्मा, विष्णु और शिव–इन तीनों देवों को एक ही गर्भगृह में या पृथक् गर्भगृह में स्थापित करना हो तो शिव से न्यून विष्णु, विष्णु से न्यून ब्रह्मा की ऊँचाई रखनी चाहिए। शिव मुख का एक तिहाई भाग कम करके दो तिहाई भाग तक विष्णु की ऊँचाई रखें, और विष्णु के मुखार्द्ध भाग तक ब्रह्मा की ऊँचाई रखें। ब्रह्मा की ऊँचाई के बराबर मां पार्वती देवी की ऊँचाई रखें। इसके अनुसार देवों का मान रखने पर सुख एवं अभिप्सित फल की प्राप्ति होती है।

देव वाहन स्थापना

देवों के वाहन स्थापित करने के स्थान पर चौकी बनायें। यह चौकी देवता के सम्मुख मंदिर से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः अथवा सात पद जितनी दूर चाहें बना सकते हैं। मूर्ति के उदयमान का नव भाग करें, उनमें से पाँच, छः अथवा सात भाग के मान का वाहन रखें। अथवा गुहा, नाभि या स्तन पर्यन्त वाहन का उदयमान रखें। यह तीन-तीन प्रकार का वाहन का मान कहा गया है। वाहन की दृष्टि देवमूर्ति के चरण, जानु अथवा कमर पर्यन्त ऊँचाई तक ही रहनी चाहिए।

परिक्रमा

यज्ञ के अनुष्ठान और मंदिर के विधान में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार यज्ञ को भुवनत्रय की नाभि से अभिहित किया जाता था और यज्ञाग्नि जिस वेदि से प्रज्वलित होती थी उस वेदि को इस भूमण्डल का केन्द्र माना जाता था। ठीक उसी प्रकार देवमंदिर के रूप में समष्टि

विश्व व्यष्टि के लिए मूर्त बनता है और जो समष्टि का सहस्रशीर्षा पुरुष है वह व्यष्टि के लिए देव-विग्रह के रूप में मूर्त होता है। अतः देवमंदिर में जो मूर्त विग्रह की प्रदक्षिणा या परिक्रमा की जाती है उसका अभिप्राय यही है कि हम अपने आपको उस दिव्य प्रभाव क्षेत्र में लीन कर देते हैं जिसे देव या मूर्त-विग्रह की महती प्राणशक्ति या महिमा कहा जा सकता है। अंग-प्रत्यंग से खण्डित मूर्ति को मंदिर में रखकर पूजा नहीं करनी चाहिए। विद्वानों को चाहिए कि ऐसी भग्न मूर्ति विसर्जन कर दें।

एकत्रदेवपूजा निवेध

गृह में एक साथ दो शिवलिंग, तीन गणेश, तीन शक्ति (दुर्गा), दो चक्रधारी नारायण, दो शालिग्राम और दो शंखों की पूजा नहीं करनी चाहिए। इनके पूजन से गृह-स्वामी को मानसिक पीड़ा एवं उद्वेग होता है।

मंदिर में पूज्य प्रतिमा मान

मंदिर में किस मान की प्रतिमा की पूजा की जानी चाहिए? इस संदर्भ में मत्स्य पुराण एवं रूपमण्डन में कहा गया है कि–

तदूर्ध्व नवहस्तान्तं पूजनीया सुरालये।
दशहस्तादिती या अवां प्रसादेन विनाऽर्चयेत्।।

अर्थात् बारह अंगुल की प्रतिमा से लेकर नौ हाथ ऊँचाई तक की प्रतिमा मंदिरों में पूजा के योग्य है।

दश हाथ से अधिक ऊँची प्रतिमा बिना मंदिर के भी पूजी जा सकती है। दश हाथ से छत्तीस हाथ ऊँचाई तक की प्रतिमा पृथक्-पृथक् रूप में स्थापित कर पूजी जा सकती है किन्तु छत्तीस से पैंतालीस हाथ तक ऊँची प्रतिमा चबूतरे (चौकी) पर स्थापित करके ही पूजनी चाहिए।

देवों की स्थापना, और दर्शन करने से मनुष्यों के समस्त पापों का नाश होता है। पूजा से धर्म की वृद्धि तथा अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वास्तुशास्त्र एवं वृक्ष

डॉ० एस.के. बर्मन

वृक्ष हमारे जीवन, समाज व देश की धरोहर हैं जिसकी महत्ता हमारे ऋषि-मुनियों ने बहुत वर्षों पहले पहचान ली थी। शास्त्रों में इनका देवता तुल्य पूजनीय वर्णन कर उनके संरक्षण की व्यवस्था की गयी। मनुष्य ने प्रकृति से प्राप्त हुए इस वरदान का आदर न करके इसका दोहन व शोषण ही किया है। केवल इसी का क्यों? बल्कि प्रकृति से प्राप्त सभी पंच महाभूतों का शोषण व दोहन किया जा रहा है: यदि यह क्रम इस द्रुत गति से चलता गया तो भविष्य के लिए हम इस धरोहर को केवल नाममात्र के लिए ही बचा पाएँगे। जिसके कारण आगे आने वाली पीढ़ी का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है क्योंकि यदि ये पंचमहाभूत अनियन्त्रित हो जाएँ तो ये वास्तव में भूतों की तरह मनुष्य को परेशान करने की क्षमता रखते हैं,

वृक्ष व वनस्पति की प्राचीन अवधारणा

वास्तुशास्त्र में वनस्पति व वृक्षों का विशिष्ट स्थान है। इसकी उपयोगिता व महत्ता हमारे दैनिक जीवन में इतनी अधिक है कि इसके बिना जीवन की एक क्षण भी कल्पना नहीं की जा सकती है। पंच महाभूतों (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश) के संतुलन में पर्यावरण की और पर्यावरण को संतुलित रखने में वृक्षों की उपयोगिता सर्व-विदित है। आयुर्वेद शास्त्र में प्रत्येक वनस्पति के गुण-धर्म व उसकी रोग निवारण क्षमता का विस्तार से उल्लेख मिलता है।

वनस्पति की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि शास्त्रों में वृक्षों को देवता-तुल्य स्थान दिया गया है। जिससे समाज में इनका संरक्षण व विकास निरंतर होता रहे। पेड़-पौधे तथा वनस्पति केवल प्रकृति की विराटता व योगदान का ही अनुभव नहीं कराते अपितु व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को भी सुखद अनुभूति की प्राप्ति कराते हैं। ऋषि-मुनि तपस्या व चिंतन के लिए वनों में ही निवास करते थे, आदिकाल में मानव सभ्यता का विकास भी वन्य जीवन से प्रारम्भ हुआ था और भोजन के रूप में वह फल-फूल, पत्तों को ही ग्रहण करता था। वैदिक काल

में भारतीय मनीषी प्रकृति के आराधक थे, वे वनस्पतियों को अपने अनुष्ठानों में विशेष महत्त्व देते थे। उस काल में सूर्य, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, रुद्र, वरुण आदि के साथ-साथ वृक्ष व वनस्पति को भी देवता कहा गया है। रुद्र के विराट स्वरूप को देखकर वैदिक ऋषि ने कहा–**"नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमः"** अर्थात् हरे पत्ते रूप केश वाले कल्पतरु स्वरूप रुद्र को नमस्कार है।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के समय के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें भी वृक्ष, लता आदि की आकृतियाँ धार्मिक भाव को व्यक्त करती हुई मिलती हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को अश्वत्थ बताया और स्वयं को अर्पण की जाने वाली वस्तुओं में स्वर्ण, रत्न व बहुमूल्य वस्तुओं के स्थान पर केवल **"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति"** की इच्छा व्यक्त की है। भारतीय कला और साहित्य में वृक्ष पूजा के अनेक संदर्भ मिलते हैं कुछ विशेष त्यौहारों में विशेष वृक्षों की पूजा की परम्परा है। महाभारत में भी वृक्षों की पूजा का वर्णन मिलता है।[१] वस्तुतः पत्तों, डालों, फूलों और फलों से लदा वृक्ष देवता के लक्षणों से युक्त माना जाता है। वृक्ष को देव स्वरूप इसलिए माना जाता है क्योंकि वह जीवित है और श्वास प्रक्रिया व भोजन संबंधी सभी कार्य करते हैं जिस प्रकार देवता केवल देते हैं जिसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं होता उसी प्रकार वृक्ष भी केवल देते ही हैं। जैसे–फल-फूल, औषधि, ईंधन व निर्माण संबंधी काष्ठ आदि।

लोक कथाओं व साहित्यिक रचनाओं में नायिकाएँ वृक्षों को अपनी व्यथा व खुशी को व्यक्त करती हुई मिलती हैं। फल वाले वृक्षों की तुलना गुणवान व्यक्तियों से करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार फल आने पर वृक्ष की डाली झुक जाती है उसी प्रकार सद्गुण प्राप्त होने पर व्यक्ति में विनम्रता आ जाती है किन्तु सूखा हुआ ठूँठ शुष्क वृक्ष व मूर्ख व्यक्ति किसी के सामने नहीं झुकते हैं।[२]

वृक्ष व देवत्व

प्राचीन ग्रन्थों एवं पुराणों की रचना वृक्ष के नीचे या जंगलों में बैठकर की गई। गौतम बुद्ध को भी बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। सम्राट अशोक ने विकास कार्यों के नाम पर सड़कों

---

१. एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत् पर्णफलान्विता।
चैत्यो भर्वात निर्ज्ञाविरर्चनीय सुपूजितः।।

२. नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्कं काष्ठं च मूर्खं च न नमन्ति कदाचन।।

के दोनों ओर बहुत से छायादार वृक्ष लगवाए। आदिवासियों में वृक्ष पूजा व वनोत्सवों की परम्परा आज भी प्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति में भी त्यौहारों पर वृक्ष-पूजन की मान्यता है। पूजा के लिए फलों, बेल पत्र, आम के पत्तों, दूर्वा, कुशा, चन्दन आदि का प्रयोग सामान्यतः होता दिखाई देता है। कृष्ण को कदम्ब, अशोक को कामदेव का रूप माना जाता है। लक्ष्मी को कचनार के फूल तो शिव को बेल-पत्र प्रिय है। पीपल के वृक्ष पर राक्षस का वास माना जाता है। तुलसी को विष्णु की पत्नी के रूप में माना जाता है। विभिन्न देवों के यज्ञ में समिधा के रूप में विशेष वृक्षों की लकड़ी का उपयोग किया जाता है। यथा[१]– यज्ञ कार्य हेतु पलाश, खादिर, अश्वत्थ, शमी, बड़, उदुम्बर, अपामार्ग, अर्क, दूर्वा, कुश, न्यग्रोध, प्लक्ष, बिल्व, चन्दन शाल, देवदारु, गुग्गल, सरल, खेजड़ी इत्यादि **यज्ञीय वृक्ष** कहे गए हैं। इनकी समिधा पज्ञ कार्य में उपयोग में आती हैं। ग्रह विशेष के लिए विशिष्ट वृक्ष की लकड़ी का हवन में उपयोग किया जाता है। जैसे–सूर्य के लिए अर्क (अकड़ा), चन्द्रमा के लिए पलाश, मंगल के लिए खादिर, बुध के लिए अपामार्ग, गुरु के लिए दूर्वा, केतु के लिए कुश का हवन किया जाता है जबकि पलाश की समिधा सभी ग्रहों के हवन हेतु काम में लायी जा सकती है।

वृक्षों का योगदान

पेड़-पौधों, फूलों, जड़ी-बूटियों व वृक्षों का वातावरण व पर्यावरण को संतुलित करने में बहुत बड़ा योगदान है। इस योगदान की महत्ता आज के प्रदूषित वातावरण में और बढ़ जाती है। ऊर्जा के मुख्य स्रोत के रूप में भी वृक्षों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता चाहे वह ईंधन के रूप में हो या वातावरण को शुद्ध करने में या भूरक्षण में रूप में। खेती योग्य भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने व बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने में वृक्षों का बड़ा योगदान होता है। वृक्ष मृदा संरक्षण के द्वारा बाढ़ रोकने में मदद करते हैं तथा भूमि का जल संतुलन बनाने में भी सहायक होते हैं।

वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि एक घन इंच भूमि को (उपजाऊ) बनाने में प्रकृति को सैकड़ों वर्ष लगते हैं और प्रकृति की इस अनमोल देन को बचाने में वृक्ष ही सक्षम है। ऐसी मान्यता है कि एक हेक्टेयर हरा-भरा जंगल लगभग दस हजार किलोग्राम प्रदूषित वायु ग्रहण करके लगभग ६२५ किलोग्राम ऑक्सीजन प्रदान करता है। वृक्षों का योगदान १५ से २० प्रतिशत वायु गति को

---

१. पलाशः खदिरोऽश्वत्थः शमी वट उदुम्बरः।
अपामार्गार्कदुर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः।।

कम करने २५-३५ प्रतिशत प्रदूषण पर नियंत्रण रखने, १०-१२ प्रतिशत विकिरण को कम करने तथा ८० प्रतिशत धूल कम करने, १५ प्रतिशत ध्वनि प्रदूषण को कम करने व तापमान को नियंत्रित करने में होता है।

देश की खुशहाली व विकास में इसके योगदान के बावजूद इसका संरक्षण पूर्ण रूप से नहीं किया जाता। बहुत सी औषधीय गुणों से भरपूर जड़ी-बूटियाँ या तो लुप्त हो गई हैं या लुप्त होने की कगार पर हैं। इस संसार में बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ हैं जो औषधि के रूप में उपयोगी हैं। प्रदूषण के कारण जड़ी-बूटियों की विधिन्न प्रजातियों में से बहुत सी प्रजातियाँ समाप्त हो चुकी हैं। भारत में वनों व हरित क्षेत्र का प्रतिशत यूरोप के अन्य देशों की तुलना में लगभग आधा है। गत वर्षों में इसमें भी तेजी से गिरावट आई है।

आज हमें वृक्षों की महत्ता को व उसकी अनिवार्यता की गंभीर रूप से चिन्तन करने की आवश्यकता है। हमें इस बात को स्वीकार कर लेना चाहिए और सदैव याद रखना चाहिए कि वृक्षों के बिना हमारा जीवन संभव नहीं है। वृक्षों के विनाश के साथ-साथ उससे भी तीव्र गति से हमारा विनाश होता जाएगा। एक वृक्ष के कटने के साथ ही संतुलन डगमगा जाता है। औषधीय पौधों के नष्ट होने के साथ ही हम निरोग करने एवं रोग निवारण के साधनों से वंचित होते जाएंगे। तुलसी, मालती, गुलाब, अशोक, नीम, चमेली, बकुल, दाड़िम, अडूसा, हल्दी, परिजाद, पलाश, बेल, केसर, लवंग आदि सैकड़ों पेड़-पौधे औषधीय गुणों से परिपूर्ण माने जाते हैं। वस्तुतः कोई ऐसा पेड़-पौधा या जड़ी-बूटी नहीं है जिसका घरेलू नुस्खे के रूप में उपयोग न होता हो। पेड़ का ऐसा कोई भाग तना, छाल, फूल-फल व जड़ नहीं है जिसे दवा के रूप में उपयोग न किया जाता हो। पेड़-पौधों के फूलों या बीजों से तेल, इत्र आदि भी बनाए जाते हैं जिनका व्यवहारिक तथा व्यवसायिक उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है।

प्राचीन काल में शयन कक्ष में पुष्प शय्याएं होती थी। गुलाब जल से स्नान व छिड़काव भी किया जाता था। आज भी फूलों की सुगंध को तनाव समाप्ति तथा नींद लाने में सहायक माना जाता है।

वनस्पति व वृक्ष में अन्तर

वैसे तो सभी प्रकार के जंगली वृक्ष, लताएं पुष्प, वनौषधि एवं यज्ञीय वृक्ष वनस्पति जगत का विषय है पर मनुस्मृति के अनुसार जिनके पुष्प नहीं लगते और फल उगते हैं उन्हें **"वनस्पति"** कहते हैं। आयुर्वेद ग्रंथ **"भाव-प्रकाश"** के अनुसार नन्दी वृक्ष, अश्वत्थ, प्ररोह, गजपादप, स्थाली वृक्ष, क्षयतरू, क्षीरी वृक्ष, बिल्व वृक्ष वनस्पति की श्रेणी में आते हैं।

जो केवल हरा-भरा रहता है, जिसका तना नहीं बनता, जिससे जलने योग्य लकड़ी प्राप्त नहीं होती तथा जिनकी ऊँचाई आदमी की ऊँचाई से कम हो ऐसे सभी वृक्ष पौधों की श्रेणी में आते हैं। जो किसी वृक्ष, भूमि या स्तम्भ के सहारे-सहारे आगे बढ़ती हों, स्वतंत्र रूप से सीधी खड़ी नहीं हो सकती वे लताएं कहलाती हैं।

पंचमहाभूतों के घटक वायु तत्व का मुख्य स्रोत - वृक्ष

वास्तुशास्त्र केवल पंचमहाभूतों व प्राकृतिक शक्तियों के प्रबंधन व समन्वय पर आधारित है। पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में सभी तत्वों की अपनी-अपनी महत्ता है। सभी तत्व विभिन्न ऊर्जाओं का संचार करते हैं। जिनके संतुलित समन्वय से व्यक्ति का जीवन सरल, सुःखद, शांतिपूर्ण व स्वस्थ रहता है।

वायु तत्व वातावरण में सदैव विद्यमान रहता है वातावरण में इसकी शून्यता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। उसी प्रकार शरीर में भी वायु तत्व सदैव सक्रिय रहता है जिसकी निष्क्रियता का अर्थ जीवन का अंत होना है। शरीर में वायु का प्रवाह श्वास, स्पंदन, धड़कन आदि के रूप में होता है। इसके असंयमित होने से हिचकी, डकार, वात रोग आदि होने की संभावना होती है।

आवास में भी शुद्ध वायु का सुचारु प्रवाह न होने पर वहाँ निवास करने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कार्यक्षमता में कमी, बेचैनी, घबराहट आदि अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस प्रकार के वास्तु से सम्बधित दोष छोटे फ्लैटों, मकानों, फैक्ट्रियों आदि में अक्सर पाये जाते हैं। अधिक से अधिक स्थान का उपयोग करने की दृष्टि से तथा पूर्व, उत्तर-पूर्व और उत्तर दिशाओं को अधिक ऊँचा व भारी करने पर भी यह दोष उत्पन्न हो जाता हैं। स्थानाभाव व आर्थिक सीमाओं के कारण सामान्य व्यक्ति के लिए बड़ा मकान व इच्छित भूखंड खरीदना संभव नहीं होता फिर इस प्रकार के वायुजन्य वास्तु दोष का निवारण किस प्रकार किया

जाए? इसके निवारण के लिए हम पौधों, गमलों, वृक्षों आदि की सहायता ले सकते हैं। जिसके फलस्वरूप हमें शुद्ध वायु तो मिलेगी ही साथ ही वातावरण भी प्रदूषण मुक्त मिलेगा। पेड़-पौधे शुद्ध वायु के साथ वातावरण की शोभा बढ़ाते हैं, तथा हमारे मन-मस्तिष्क पर भी विशेष प्रभाव डालते हैं यदि ये वास्तु सम्मत दिशाओं में लगाये जायें तो इनका प्रभाव अधिक होता है। कुछ वृक्ष हमारी जीवन शैली व वास्तु में अपना विशेष स्थान रखते हैं। जैसे-

अश्वत्थ-इसका दूसरा प्रचलित नाम पीपल है। यह वृक्ष दिव्य तथा पूजा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि वृक्षों में मैं अश्वत्थ हूँ। भारतीय परम्परा के अनुसार इसे मंदिर के निकट या मंदिर के प्रांगण में लगाना विशेषकर पश्चिम दिशा में लगाना शुभ होता है। आवास में या आवास के निकट इसे लगाना निषेध है। जिस भूखंड में पीपल का वृक्ष लगा हो उसे नहीं खरीदना चाहिए क्योंकि इसकी जड़ें मोटी व मजबूत होती हैं और दूर-दूर तक फैलती हैं। इसे काटकर उखाड़ने से भी शास्त्रों में दोषों का वर्णन किया गया है। आग्नेय कोण में पीपल पीड़ा व मृत्युतुल्य कष्ट देता है।

नीम-नीम औषधीय गुणों से सम्पन्न वृक्ष है इसका कीटनाशक व त्वचा संबंधी रोगों में बहुत प्रयोग होता है। यह पूरा वृक्ष फल, पत्तियों, छाल आदि के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे पश्चिम व दक्षिण-पश्चिम दिशा में लगाया जा सकता है।

तुलसी-यह एक अतुलनीय पौधा है। इसका सभी धार्मिक अनुष्ठानों व पूजा में प्रयोग किया जाता है। इसमें लगभग २७ खनिज व तीन सौ से अधिक दवाईयाँ बनाने में इसका उपयोग होता है। तुलसी की पत्तियों में पारा पाया जाता है। इसमें बहुत से असाध्य रोगों, को ठीक करने की क्षमता होती है। इसकी अनेक जातियाँ होती हैं जैसे सफेद तुलसी, श्यामा तुलसी, राम तुलसी आदि। तुलसी को सूर्योदय से पूर्व बिना नाखून लगाये तोड़ना चाहिए। रविवार को इसे नहीं तोड़ना चाहिए। ग्रहण के समय सभी खाद्यान्न में तुलसी पत्र के डालने मात्र से ग्रहण की विकिरणों का प्रभाव शून्य हो जाता है व खाद्य पदार्थ अशुद्ध नहीं होता ऐसी भारतीय परम्परा में मान्यता है। तुलसी के पौधे को आवास में उत्तर-पूर्व दिशा में लगाना उत्तम है। घर के आँगन में तुलसी लगाने की भारतीय परम्परा है परन्तु इसे घर के बीचों बीच नहीं लगाना चाहिए।

बेल-इसे बिल्व के नाम से भी जाना जाता है। शंकर भगवान की पूजा में बिल्व की पत्तियों विशेषतः शिवरात्रि के दिन चढ़ाना विशेष फलप्रद होता है। बेल में स्वर्ण का अंश विद्यमान होता

है। मन्दिर के आँगन में बेल लगाने की भारतीय परम्परा है, वैसे इसे सभी दिशाओं में लगाया जा सकता है।

केला–केला वर्ष भर उपलब्ध रहने वाला फल है इसे घर में लगाना शुभ नहीं माना जाता। पूजा के लिए मन्दिर के पूर्व में लगाना श्रेष्ठ है।

घरों में लगाने योग्य वृक्ष

- आवासीय घर के समीप बेल (बिल्व वृक्ष), अनार (दाड़िम), नागकेसर, कटहल और नारियल के वृक्ष हमेशा शुभ फलकारी होते हैं।[१]
- जंभीरी, आम्र, केला निर्गुडीं, जौ, अशोक, शिरसा और चमेली आदि सुगन्धित वृक्ष[२] घर के समीप वाटिका में शुभ होते हैं।
- देवदारु, चन्दन, शमी, खादिर, शाल सभी के लिए समान रूप से श्रेष्ठ हैं।
- घर के पूर्व व उत्तर में छोटे फूलदार पौधे लगाने चाहिए।
- तुलसी का पौधा उत्तर-पूर्व में लगाना शुभ होता है।
- ऊँचे व घने पत्ते वाले वृक्ष घर के दक्षिण व पश्चिम भाग में लगाने चाहिए।
- घर के मध्य भाग में किसी प्रकार का वृक्ष कदापि नहीं होना चाहिए।
- आर्थिक संपन्नता के लिए अनार का वृक्ष आग्नेय कोण में लगाना चाहिए।
- श्वेतार्क का पौधा घर में किसी भी दिशा में लगाने पर समृद्धि देता है।
- गुलाब या शतावरी जैसे पौधे जो औषधीय गुणों से परिपूर्ण होते हैं उन्हें काँटेदार होने पर भी लगाया जा सकता है।

---

१. यत्र तत्र वृक्षा बिल्ववृक्ष बिल्वदाड़िम्बकेशराः।
पनसो नारिकेलश्च शुभम् कुर्वन्ति नित्यशः।।

२. जम्बीरश्च रसालश्च रम्भा शेफालिकास्तथा।
यवाशेक शिरीषश्च मल्लिकाद्याः शुभ प्रदाः।।

घर में न लगाने योग्य पौधे

- मोतिया, चम्पा, केलड़ा, कुन्द, मुनि वृक्ष (पतंग) और आँवले का वृक्ष घर के समीप अशुभ होते हैं।[१]
- अत्यधिक सुगंधित व ठण्डक देने वाले पौधों के नीचे जहरीले साँप व कीड़ों आदि का निवास होता है। सुरक्षा की दृष्टि से इनको नहीं लगाना चाहिए।

  इमली, बरगद, पाकड़, खोखला पीपल, दूध वाले तथा काँटे वाले वृक्ष घर के समीप अशुभ फलदायक होते हैं।[२]
- फलदार वृक्ष पुत्र संतान को कष्ट देते हैं।
- स्त्री के नाम वाले जैसे मालती, चम्पा, चमेली, जूही इत्यादि तथा दूध वाले व फल वाले वृक्ष आवास में त्याज्य हैं। ये वृक्ष पुत्र कष्ट देते हैं।[३]
- पक्षियों के घोंसले, स्वयं टूटा या सूखा वृक्ष, देव निवास या श्मशान में स्थित हरड़, बहेड़ा, विभीतक, नीम, अरणि आदि वृक्षों को छोड़कर शेष वृक्षों के काठ गृह कार्य के लिए उपयोगी होते हैं।[४]
- खजूर, अनार, केला, बेर, नींबू जिस घर में स्वयं उत्पन्न होंगे, उस घर का सर्वनाश होगा व वहाँ कलह रहेगा।[५]

---

१. मालती चैव चम्पा च केतकी कुन्देमेव च।
मुनिवृक्ष ब्रह्मवृक्षं वर्जयेद् गृह सन्निधौ।।

२. तिन्तिडीको वटः प्लक्षः पिप्पलश्च सकोदरः।
क्षीरी च कष्टकी चैव निषिद्धास्ते महीरुहाः।।

३. स्त्रीनाम्ना ये च तरवस्ते वर्ज्या गृहकर्मणि।
क्षीरिणाः क्षीरनाशाय फलिनः पुत्रनाशनाः।।

४. खगनिलयभग्रसंशुष्कदग्धदेवालयशमशान स्थान।
क्षीततरुधवविभितकनिम्बारठि वर्जिजार्श्छिन्धात।।

५. खर्जूरी दाडिम रम्भा कर्कन्धू बीजपूरिका।
उत्पद्यन्ते गृहे यत्र तस्मिन् कृन्तति मूलतः।।

- काँटों वाला वृक्ष कलह कारक होता है। जिस वृक्ष पर कौए बैठते हैं वह धन का नाश करता है। जिस वृक्ष पर गिद्ध बैठते हैं वह रोग देता है तथा श्मशान का वृक्ष मृत्यु प्रदाता होता है।[१]
- जो वृक्ष बिजली गिरने से क्षति ग्रस्त हो जाते हैं ऐसे वृक्षों की लकड़ी भी गृह-कार्यों में त्याज्य है।
- जिन वृक्षों पर केवल एक बार ही फल आते हैं जैसे–केला, बाँस आदि भी त्याज्य हैं।
- चटक चाँदनी का पौधा यदि आस-पास के वातावरण में रहे तो दमे की बीमारी देता है।

वर्णों के अनुसार शुभ-अशुभ वृक्ष

ब्राह्मणों के लिए शुभ वृक्ष–

देवदारु, चन्दन, शमी (छोकर) महुआ ये वृक्ष ब्राह्मणों के लिए शुभ और सब कर्मों के लिए श्रेष्ठ हैं। कुछ विद्वान इन्हें ब्राह्मण वृक्ष भी कहते हैं। ज्ञान पिपासु एवं आध्यात्मिक लोगों के लिए ये वृक्ष उत्तम फल को देने वाले कहे गए हैं।[२]

क्षत्रियों के लिए शुभ वृक्ष–

शाल, खादिर, तुनिका, सरल ये वृक्ष क्षत्रियों एवं राजकर्मियों के लिए शुभ होते हैं। इनकी कठोरता एवं दृढ़ता के कारण ये वृक्ष क्षत्रिय वृक्ष कहलाते हैं।[३]

वैश्यों के लिए शुभ वृक्ष–

वैश्यवर्ग के लिए, व्यापारी लोगों के घरों के बाहर खादिर, सिन्धु, स्पंदन ये वृक्ष शुभफलदायी कहे गए हैं।[४]

---

१. कण्टकी कलहं कुर्यात्काकच्छन्नं धनक्षयम्।
गृध्रवृक्षं महारोगं श्मशानस्थं मृतिप्रदम्।।

२. सुरदारु चन्दन शमी मधूकतरवः तथा।
ब्राह्मणानां शुभा वृक्षा सर्वकर्मषु शोभनाः।।

३. क्षत्रियाणां तु खादिर बिल्वार्जुन कंशिशियाः।
शाल त्वीक सरला नृपवेश्पि सिद्धिदा।।

४. वैश्यानां खादिरं सिन्धुस्यंदनाश्च शुभवहाः।

शूद्र लोगों के लिए शुभ वृक्ष–

तिन्दुक, अर्जुन, शाश, वैसर, आम, कंटक और अन्य जो क्षीरवृक्ष (दूध देने वाले) वृक्ष हैं, वे शूद्रों के लिए, सेवाधारी व्यक्तियों के लिए शुभ कहे गये हैं।[१]

राशि के संबंधित वनस्पति

१.	मेष	–	धान्य	७.	तुला	–	तिल
२.	वृक्ष	–	वनफल	८.	वृश्चिक	–	ईख
३.	मिथुन	–	हरितपत्रवृक्ष	९.	धनु	–	अश्ववृक्ष
४.	कर्क	–	उत्तम अन्न	१०.	मकर	–	जलीय वृक्ष
५.	सिंह	–	वनवृक्ष	११.	कुंभ	–	जलीय वृक्ष
६.	कन्या	–	मूंग	१२.	मीन	–	जलज, फलपुष्पादि

नक्षत्रों से संबंधित वनस्पति एवं वृक्ष

१.	अश्विनी	–	अश्वत्थ (पीपल)	२.	भरणी	–	मकरतरु (धात्री)
३.	कृतिका	–	गूलर (उदुम्बर)	४.	रोहिणी	–	जामुन
५.	मृगशिरा	–	खादिर (खैरा)	६.	आर्द्रा	–	कृष्णवृक्ष
७.	पुनर्वस	–	पुनर्नवा	८.	पुष्य	–	पीपल
९.	श्लेषा	–	नागवृक्ष	१०.	मघा	–	वट - बरगद
११.	पू० फा०	–	पलाश	१२.	उ० फा०	–	पाकड़
१३.	हस्ता	–	अरिष्टवृक्ष	१४.	चित्रा	–	श्रीवृक्ष (बेल)
१५.	स्वाति	–	अर्जुन	१६.	विशाखा	–	विकंक

---

१. तिन्दुकार्जुनशाशाश्च वैसराम्राश्च कण्टकाः।
ये चान्यो श्रीरिवृक्षाश्च ते शूद्राणां शुभावहा।।

१७.	अनुराधा	-	बकुल	१८.	ज्येष्ठा	-	अशोक
१९.	मूला	-	सर्ववृक्ष	२०.	पू० षा०	-	जामुन
२१.	उ० षा०	-	कटहल	२२.	श्रवणा	-	अर्कवृक्ष
२३.	धनिष्ठा	-	शमी	२४.	शतभिषा	-	कदम्ब
२५.	पू० भा०	-	आम	२६.	उ० भा०	-	महुक
२७.	रेवती	-	मधुवृक्ष				

वृक्ष रोपण मुहूर्त

शुक्लपक्ष में, शुभ तिथियों में, शुक्र, चन्द्र एवं गुरुवार इन दिनों में ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी और शतभिषा), क्षिप्र (अश्विनी, पुष्य और अभिजित्) मृदु (चित्रां, अनुराधा, मृगशिरा और रेवती), इन नक्षत्रों में वृक्षों का आरोपण करना शुभदायक होता है।[1]

वृक्ष लगाने के नक्षत्र

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी तथा हस्त नक्षत्र में बीज बोने व वृक्षारोपण के लिए श्रेष्ठ है।

वृक्ष एवं वास्तुदोष

- पीपल या बरगद का ईशान कोण में होना।
- मुख्य द्वार पर किसी भी बड़े वृक्ष का होना।
- पूर्व व उत्तर में बड़े व घने वृक्ष होना तथा पश्चिम व दक्षिण में छोटे वृक्षों का होना।
- घर या व्यवसायिक भूखण्ड के बीचों बीच किसी भी वृक्ष का होना।
- चारों ओर से वृक्षों की छाया के बीच में आवास का होना।
- तुलसी का पौधा दक्षिण या नैऋत्य में लगाना।

---

१. शुक्लपक्षे तिथौ शस्ते शुक्रे चन्द्रे गुरावपि।
तरुणां रोपणं शस्तं ध्रुवक्षिप्रमृदूडुभिः।।

- यदि किसी भूखण्ड में पीपल या बड़ का पूर्ण विकसित वृक्ष लगा हो तो उसे नहीं खरीदना चाहिए।
- भूखण्ड में पीपल, नींबू, अनार, आम, खजूर, केला, बेर आदि का स्वयं उत्पन्न होना अशुभ होता है।
- जिस घर में वृक्ष की छाया प्रथम प्रहर से अधिक व दो प्रहर तक रहती हों उस वृक्ष की शाखायें काटकर छायादोष को समाप्त कर देना चाहिए।
- जिस घर में वृक्षों की छाया प्रथम और अन्तिम प्रहर को छोड़कर दो-तीन प्रहरों तक बराबर रहती हो, वह छाया सदा दुःख देने वाली होती है।

वृक्षों से वास्तुदोषों का निवारण

- ईशान कोण में यदि बड़े वृक्ष हैं तो उन्हें काट दें।
- ईशान कोण में लगे काँटेदार पौधों को हटा दें।
- असामान्य आकार के भूखण्ड को वृक्षों की पंक्ति द्वारा सामान्य आकार का बनाया जा सकता है।
- श्वेतार्क के पौधे को घर के दक्षिण या नैऋत्य में लगायें परन्तु यदि कहीं से उखाड़कर लगाना हो तो उसे विधिवत् निमंत्रित करके ही रोपित करें। ऐसी मान्यता है कि इसकी जड़ गणेशाकृति की होती है जिसमें गणपति का वास होता है।
- पूर्व दिशा कटी होने पर दोष निवारण संभव न होने पर काले-धतूरे का पौधा दोष निवृत्ति में सहायक होता है।
- वास्तुदोष वाले वृक्षों के कारण यदि संतति संबंधी कष्ट हो रहे हों तो उनका निवारण करने के पश्चात् सार्वजनिक व धार्मिक स्थलों में फलदार वृक्षों को लगाना चाहिए। कुछ समय पश्चात् शुभ फल प्राप्त होने लगेंगे।
- यदि कोई भूखण्ड खाली है तो उसमें आग्नेय कोण में अनार का वृक्ष शुक्ल पक्ष में हस्त नक्षत्र में लगाये। यह प्रयोग सुख समृद्धि तथा अर्थ प्राप्ति कारक होगा।

- दक्षिणमुखी चन्द्रभेदी भूखण्ड के मुख्य द्वार के दोनों ओर ऊँचे व घने वृक्ष लगाने से नकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव कम होगा तथा मकान में गर्मी का प्रकोप भी कम होगा।
- भूखण्ड चयन करते समय यदि भूमि पर तुलसी के पौधे लगे हो तो ऐसे भूखण्ड को खरीदा जा सकता है।
- यदि आवास के पीछे अवांछित दिशा में तालाब, झरना, नदी, पहाड़ इत्यादि हो तो वहाँ दिशा के अनुसार निर्दिष्ट वृक्षों की कतार लगाकर दोष का संकुचन किया जा सकता है।
- अशुभ शालभवनों के शालदोष के निवारणार्थ भी वृक्षों की सहायता ली जा सकती है।
- यदि घर के अगल-बगल यदि कोई धार्मिक स्थल है या सम्मुख देव मूर्ति वेध है तो वृक्ष की कतार लगाकर वास्तुदोष का निवारण किया जा सकता है।
- आवास के बाहर अशुभ वृक्ष होने पर, आवास व वृक्षों के बीच शुभ वृक्ष लगाकर इनकी अशुभता को कम किया जा सकता है।
- पश्चिम में कमलों सहित जल हो, उत्तर में खाई हो, पूर्व में फल वाले वृक्ष हो व दक्षिण में दूध के वृक्ष हों, जिस मन्दिर के मध्य में बेल, आम, अनार के वृक्ष हो उसमें वेध का दोष नहीं होता यह बात ब्रह्मा के मुख से निकली है।[१]
- 'वृहद्वास्तुमाला' में वर्णन है कि जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली, तीन कैथ, तीन बेल, तीन आँवला और पाँच आम के वृक्ष लगाता है वह नरके के दर्शन नहीं करता है अर्थात् उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती हैं।

वृक्ष के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी

चारों दिशाओं में शुभ वृक्ष—अरिष्ट, अपराजिता, अशोक, आम, अनार, बेल, चन्दन, चमेली, दाल-चीनी, फलिन, जबाकुसुम, जयंती, केसर, महुआ, नागर, निम्ब, नारियल, नागकेसर, पुन्नाग, वच।

---

१. अन्तरारोपितां वृक्ष बिल्वदाडिमकेसराः।
न तत्र वेधदोष स्यात् सत्यं ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।।

वृक्षों की आदर्श स्थिति–ईशान कोण में आँवला, पूर्व में बरगद, आग्नेय में अनार, दक्षिण में गूलर, नैऋत्य में इमली, पश्चिम में पीपल, वायव्य में बेल तथा उत्तर में पाकड़ (उदुम्बर) आदि वृक्ष शुभ होते हैं।

अशुभ दिशाओं में वृक्षों के फल–पूर्व में पीपल भय देता है। दक्षिण में पाकड़ पराभव, पश्चिम में बरगद होने पर राज्य संबंधी कष्ट तथा उत्तर में गूलर होने पर नेत्र व्याधि देता है।

शुभ वृक्ष–शमी, अरिष्ट, नागकेसर, अनार, कटहल, अशोक, मौलश्री, चन्दन।

अशुभ वृक्ष निम्नफल देते हैं–

काँटेदार वृक्ष जैसे बेर, बबूल, कैक्टस - कलह

दूधवाले वृक्ष जैसे रबड़, आक - धन हानि

फलदार वृक्ष, आम, केला - संतति कष्ट

- आँवला, हरड़, बहेड़ा भूमिगत जल का शोधन करते हैं।
- बगीचे या खेत की पूर्व दिशा में फलवाले वृक्ष उत्तम फल देते हैं।
- देवस्थान, आश्रम, मठ, धर्मशाला, तीर्थस्थान में लगे वृक्ष को नहीं काटना चाहिए।
- घड़े के जल से सींचे गए वृक्ष को नहीं काटना चाहिए।
- नदी के संगम के पास के वृक्षों को नहीं काटना चाहिए।

निजी अनुभव में ऐसा देखने में आया कि आवास में **पीपल का वृक्ष लगाने से चाहे वह किसी भी दिशा में क्यों न हो केवल कष्ट ही देता है** यद्यपि पश्चिम में इसे श्रेष्ठ बताया गया है परन्तु व्यक्तिगत विचार से पश्चिम में **केवल फार्म हाऊस इत्यादि या बहुत बड़े भूखंड में ही शुभ होता है।** विशेषकर आवास में ईशान कोण में पीपल का वृक्ष संतान संबंधी कष्ट देता है। फलदार वृक्ष भी आवास में विशेषकर आम, अमरूद, केला संतान संबंधी कष्टों में वृद्धि करते हैं।

इसी प्रकार **श्वेतार्क** का वृक्ष यदि आवास में लगा हो तो सब प्रकार की **सुख समृद्धि** प्राप्त होती है यह दो प्रकार का होता है–बैंगनी रंग व सफेद फूलों वाला किन्तु सफेद फूलवाला आक अपेक्षाकृत बड़ा होता है। यह श्वेतार्क आसानी से प्राप्त होता है।

वास्तुदोषों के निवारण हेतु जहाँ तोड़-फोड़ संभव न हो और दोष निवारण हेतु उपाय भी न किये जा सके वहाँ श्वेतार्क लगाने से लाभ होते देखा गया है। यद्यपि वास्तुशास्त्र में वर्णित वृक्षों से संबंधी नियम अकाट्य हैं परन्तु वृक्ष संबंधी नियमों में परिपूर्णतः प्रमाणिकता कभी-कभी व्यवहार में देखने को नहीं मिलती हो सकता है कि अन्य ज्योतिषीयों व क्षेत्रीय कारणों के कारण ऐसा होता हो। आज के परिप्रेक्ष्य में इसमें शोध की आवश्यकता है जिसे वास्तुशास्त्र के नियमों के साथ तथा विभिन्न दिशाओं में विभिन्न पौधों के रोपण के साथ रखकर देखा जाना चाहिए। स्थानाभाव के कारण आजकल घरों में वृक्ष लगाना तो बहुत दूर की बात है, छोटे गमले व पौधे लगाने तक का स्थान उपलब्ध नहीं होता। ऐसे में वृक्षों के संबंध में वास्तु की दृष्टि से विचार एक कठिन कार्य के साथ-साथ दुरुह कार्य भी है।

ऐसा मेरा निजी मत है कि शास्त्रों में वृक्ष या वनस्पति की महत्ता की चर्चा उनकी मानव जीवन में अमूल्य उपयोगिता को ध्यान में रखकर की गई है किन्तु जहाँ तक वृक्षों का संबंध दिशाओं से है उसका निर्धारण सूर्य की रश्मि, ऊर्जा व भूमि में जल को सोखने की क्षमता व भूमि की नई तथा वायु में व्याप्त आर्द्रता को विभिन्न दिशाओं में वृक्षों पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान में रखकर किया गया है। विभिन्न दिशाओं में भिन्न वृक्षों के निर्देशित भौतिक फलों के संबंध में भी अभी पुनः शोध के पश्चात् ही कोई धारणा बनाना उचित होगा। भिन्न-भिन्न दिशाओं के विभिन्न वृक्षों की रोपण प्रक्रिया का निर्णय उस दिशा के गृह स्वामित्व के आधार पर ही हो सकता है। अन्य दिशाओं में निषेध वृक्षों को लगाने पर उस ग्रह से संबंधित दोष या पीड़ा के सीधे-सीधे रूप में दुष्परिणाम मानव जीवन को प्रभावित करें या ग्रह दोष निवारण या वास्तु दोष निवारण के लिए उस ग्रह से संबंधित वृक्ष को मात्र लगाने से कष्टों का निवारण होता है यह भी शोध की एक लम्बी प्रक्रिया के पश्चात् ही कुछ कहना उचित होगा।

वास्तु की दृष्टि से पौधे के प्रभावों का अवलोकन करना तो अधिक कठिन हो जाता है क्योंकि प्रायः पूर्णतः वास्तु सम्मत आवास ही देखने को नहीं मिलते तो इस बात का निर्धारण करना कि जो अशुभ फल या दुष्परिणाम प्राप्त हो रहे हैं इसके पीछे वास्तु असम्मत निर्माण का दोष है या केवल आवास में वृक्ष या पौधों के कारण ऐसा हो रहा है क्योंकि शास्त्रों में निषिद्ध वृक्षों को लगाने के दुष्परिणाम बताये गये हैं अतः एसे वृक्ष नहीं लगाने चाहिए। किन्तु निजी विचार से मेरा ऐसा मानना है कि इसमें अभी शोध की और अधिक आवश्यकता है। शास्त्र केवल मार्गदर्शन करता है और समय के साथ-साथ परिवर्तन भी अपेक्षित होते हैं।

आवासीय वास्तु में द्वार विधान

डॉ० दीपक कुमार

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव के लिए अपने अनुपम अनुभव के आधार पर अथक परिश्रम एवं लगन से वास्तु विज्ञान की रचना की है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में मानव के निवास स्थान के लिए प्रकृति के विभिन्न नियमों एवं इनका मानव के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में विशेष ज्ञान प्रदान किया है। वास्तु भारत का प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान है। इसकी प्रामाणिकता वेद एवं पुराणों के समान ही है। वास्तु के सिद्धांतों का अनुपालन मनुष्य के जीवन में सुख एवं शान्ति का परिचायक है। यदि हम अपने बड़े बूढ़ों से भी भवन निर्माण के बारे में चर्चा करते हैं, तो वे भी यही कहते हैं कि भवन पूर्वोन्मुख होना चाहिए, भूखण्ड का आकार सिंह मुखाकार न हो। यह वास्तु का एक मुख्य नियम है। अर्थात् हमारे बुर्जुग भी वास्तु के प्रति सचेत हुआ करते थे।

वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत समस्त देश एवं नगरों की निर्माण योजना से लेकर छोटे-छोटे भवनों और उसमें रखी जाने वाली वस्तुओं तक की योजना सम्मिलित है परन्तु सामान्यतः इसे भवन-निर्माण कला से सम्बद्ध किया जाता है। एक अन्य मतानुसार 'वास्तु' बस् धातु से बना है। इसका अर्थ है वास करना। 'वास्तु' मात्र भवन-निर्माण कला का पर्यायवाची शब्द नहीं है अपितु, 'वास्तु' का क्षेत्र भवन-निार्माण कला से अत्यन्त विशाल एवं विस्तृत है। भवन-निर्माण कला एक चमत्कारिक गहन विद्या है। 'वास्तु' का संस्कृत में शाब्दिक अर्थ-मनुष्य तथा देवताओं का निवास स्थान है। सम्पूर्ण राष्ट्र, नगर, सभा भवन एवं विभिन्न प्रकार के पलंग, बैठने के आसन आदि वस्तुएँ तथा इनके अतिरिक्त वे सभी वस्तुएँ जिनका उपयोग व्यवहारिक जीवन में होता है, सभी के लिए वास्तु शास्त्र के सिद्धान्तों का पालन कल्याणकारी है।

वास्तु का वर्तमान पुनर्प्रचलन केवल मानव-आवास तक सीमित है, परन्तु वास्तु शास्त्र के ध्येय अथवा क्षेत्र जिसे कि स्थापत्य भी कहा जाता है, का विस्तार मन्दिरों के अभिकल्प अथवा नमूने, मूर्ति, विद्या, शहरी आवास योजनाओं, सड़कों, रेलवे लाइनों, नहरों आदि का निर्माण ही नहीं

अपितु उससे कहीं आगे है। दक्षिण भारत के अधिकतम मन्दिर जैसे–तिरुपति में भगवान वेंकटेश्वर का मन्दिर, मदुराई में मीनाक्षी मन्दिर, पुट्टापर्दी एवं सांई बाबा का आश्रम, मध्य प्रदेश में स्थित उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर इसी शास्त्र पर आधारित है। राजस्थान की राजधानी जो कि सन् १९२७ में महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा स्थापित की गयी भी, वास्तु के अनुसार ही निर्मित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य कोई भी ज्ञान यह निश्चित नहीं कर सकता है कि भवन का निर्माण सही हुआ अथवा नहीं।

यदि कोई निर्माण कार्य वास्तु के नियमों के अनुसार नहीं हुआ तो इन स्थानों में काम करने वाले अथवा निवास करने वाले व्यक्तियों के विचार तथा कार्यशैली विकासवादी नहीं होगी। एसी स्थिति में व्यक्ति की परेशानियाँ एवं मानसिक अशांति की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसके विपरीत यदि भवन–निर्माण अथवा मकान में निवास करने में वास्तुशास्त्र के नियामों को व्यवहार में लाया जाए, तो समस्त दैवी शक्तियाँ उन व्यक्तियों को जो इन निर्माण स्थलों में वास करते हैं अथवा कार्य करते हैं, सोच विचार तथा कार्य शैली को विकासवादी बनाने में सहायक होती हैं। प्राचीन भारत में भवन निर्माण मात्र एक शैली ही नहीं अपितु एक पवित्र एवं धार्मिक कृत्य माना जाता था।

वास्तु में सूर्य की महत्ता

वास्तुशास्त्र के अनुपम सिद्धांतों का निर्धारण सूर्य की स्थिति एवं ब्रह्माण्ड पर उसके प्रभाव को ध्यान में रखकर किया गया है। इस शास्त्र में सूर्य के प्रकाश एवं ताप का महत्वपूर्ण स्थान है। इस शास्त्र के सिद्धांतों में प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। इस शास्त्र के सिद्धांतों को इस प्रकार बनाया गया है कि प्राकृतिक स्रोतों द्वारा सर्वाधिक ऊर्जा उपलब्ध हो ताकि भवन में निवास करने वालों को उत्तम स्वास्थ्य, सुख एवं शांति प्राप्त हो सके। इस शास्त्र में अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा सूर्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। सूर्य ही समस्त संसार को प्रकाशित करते हैं। सूर्य हमें ऊर्जा प्रदान करते हैं। सूर्य की गर्मी से ही पृथ्वी पर जीवन संभव है। सूर्य के प्रकाश एवं ताप का हमारे जीवन पर ऋतुओं के रूप में एवं अनेक प्रकार से प्रभाव पड़ता है। सूर्य से ऊर्जा पाने की दृष्टि में पूर्व और पश्चिम दिशाओं का विशेष महत्व है। भवन का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि सूर्य की जीवनदायिनी किरणों के प्रवाह में कोई बाधा न आए। वास्तुशास्त्र का प्रमुख नियम है कि भवन निर्माण में उत्तर दिशा वाला भाग दक्षिण दिशा वाले भाग की अपेक्षा नीचा रखा जाए। इसी से जुड़ा दूसरा नियम है यह है कि पूर्व की दिशा का भाग पश्चिम दिशा वाले

भाग से नीचा रहे। इसी प्रकार पूर्व एवं उत्तर-पूर्व दिशा की ओर अन्य दिशाओं की अपेक्षा अधिक खुलनी जगह होनी चाहिए। ताकि प्रातःकाल के सूर्य की किरणों का लाभ भवन में निवास करने वाले को मिल सके।

वास्तु एवं चुंबकीय शक्ति

उत्तरी ध्रुव से दक्षिण ध्रुव की ओर सतत् प्रवाहित होने वाली चुम्बकीय शक्ति के प्रवाह में कोई बाधा उत्पन्न न हो, वास्तुशास्त्र में इसका ध्यान रखा जाता है। यदि मनुष्य की शारीरिक ऊर्जा और उसके निवास में प्रवाहित चुम्बकीय तरंगों का ताल मेल ठीक नहीं होगा तो परिणाम विपरीत ही होंगे। भवन में जहाँ द्वार है, उससे १८० अंश पर यदि बन्द दीवार है तो ऊर्जा का चक्र पूरा नहीं होगा। इससे उस दरवाजे से होकर गुजरने वाले हर व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार का अशुभ फल भुगतना होगा, किन्तु इसके विपरीत, यदि उस दरवाजे के सामने दूसरा दरवाजा या खिड़की या उसी प्रकार की पेंन्टिंग टंगी हो तो, ऋणात्मक और धनात्मक ऊर्जाओं का चक्र पूरा हो जाएगा और शुभ होगा। चुम्बकीय तरंगों के अबाधित प्रवाह के लिए वास्तुशास्त्र का एक मुख्य नियम है कि शयन के समय सिर दक्षिण और पैर उत्तर दिशा की ओर रहें।

वास्तु में पञ्चमहाभूतों की महत्ता

इस संसार का निर्माण पाँचतत्वों से हुआ है। ये पाँचतत्व हैं– पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और जल। इनका संतुलन ही प्राकृतिक संतुलन कहलाता है। प्राकृतिक असंतुलन के कारण ही ऋतुओं के समय एवं अवधि में परिवर्तन हो रहे हैं। गर्मियों में भीषण गर्मी, सर्दियों में अत्यंत सर्दी एवं बरसात में अतिवृष्टि का कारण इन्हीं पाँचतत्वों का असंतुलन माना जाता है। भवन निर्माण में भी इन्हीं पाँचतत्वों का उचित समावेश ही उसमें निवास करने वाले मनुष्य के जीवन में सुख एवं मानसिक शांति की वृद्धि करता है। यदि भवननिर्माण में इन पाँचतत्वों का समावेश उचित प्रकार से हो तो यह निश्चित है कि भवन में निवास करने वाले मनुष्यों का जीवन अशांत होगा।

हमारा शरीर इन्हीं पंचतत्वों से मिलकर बना है। जब हमारे शरीर में इन पाँचतत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है, तो हम रोगग्रस्त हो जाते हैं॥ जैसे–अग्नितत्त्व की अधिकता से एसिडिटी, हाईब्लड प्रेशर आदि रोग, एवं पृथ्वी तत्व की अधिकता से पथरी आदि रोग हमारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार जब हमारे भवन में इन पाँचतत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है, तो उसका

वातावरण रोगग्रस्त हो जाता है। इसका प्रभाव भवन में निवास करने वाले मनुष्यों के जीवन में अनेक परेशानियां उत्पन्न कर देता है। जिस प्रकार इस शरीर में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती है तथा शरीर में रोग के उपचार के लिए दवाईयों एवं शल्य चिकित्सा आदि का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार भवन के वातावरण को शुद्ध करने के लिए और इन पाँचतत्वों का उचित संतुलन बनाने रखने के लिए ही वास्तुदोष निवारण करना होता है।

वास्तु से आशय यह कदापि नहीं है कि इसके नियमों का पालन करने से मनुष्य भाग्य के विपरीत समस्त सुख समृद्धि प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के भाग्य में विधाता ने जो कुछ लिख दिया है, वह तो उसे भोगना ही है, परंतु वास्तु के नियमों के पालन करने से भाग्य दोषों के प्रभाव को ठीक उसी प्रकार कम किया जा सकता है, जैसे तेजाब में जल मिलाकर उसकी तीव्रता को कम किया जाता है। अतः हमें वास्तु के नियमों का पालन करना चाहिए।

आधुनिक युग एवं वास्तुशास्त्र

प्राचीन समय में विशाल भवन, दुर्ग, मंदिर, राज प्रसाद, पाठशाला, पुस्तकालय, तालाब, सरोवर, कूप-बावड़ी, बाग-बगीचों, मंत्रियों के निवास के लिए भी वेद-पुराण और शास्त्रों में वर्णित स्थापत्य कला एवं वास्तु विद्या को ही आधाार बनाकर निर्मित किये जाते थे परन्तु सैकड़ों वर्षों की गुलामी और पाश्चात्य एवं विदेशी प्रभाव की चली उल्टी हवा में हमारी भवन निर्माण और स्थापत्य कला विकृत होती गयी। साथ ही जनसंख्या की तीव्र गति से होती बढ़ोत्तरी ने महानगरों, नगरों और कस्बों तक में भूमि की कमी उत्पन्न कर दी। भूमि की इस कमी ने बहुमंजिली इमारतों को जन्म दिया, ताकि भूमि का उपयोग ज्यादा से ज्यादा हो सके। पाश्चात्य जगत की उल्टी गंगा की चकाचौंध, लोहे व सीमेन्ट से बने भवनों ने आधुनिक कारीगरों को वास्तुशास्त्र के नियमों की अवहेलना शुरू करा दी तथा कम से कम जगह के उपयोग ने शास्त्रों को असमंजस में डाल दिया-कहां किस वस्तु का निर्माण हो यह सोचे बिना ही वे अपने आपको बढ़ाने में लगे रहे। इन अशास्त्रीय पद्धति से बने विशाल भवनों में लोग दुःख, क्लेश रोग से संतप्त एवम् उदासीन रहने लगे और मानव जीवन की सार्थकता ही खोने लगी। मनुष्य अति विलासी एवं भौतिक जीवन से तंग आकर साथ ही दैनिक जीवन की परेशानियों से ऊबकर पुनः यह सोचने को बाध्य हुआ कि आखिर क्या गलत है? क्योंकि जीवन में परेशानियाँ हैं और इसी प्रवाह ने उसे वास्तुशास्त्र की ओर मुख मोड़ने को मजबूर किया। भारत ने पुनः सोई पड़ी वास्तुविद्या को जाग्रत किया और वास्तु के

नियमानुसार चलने पर लोगों के घर में सुख, शांति, एवं यथेष्ट कार्य करने पर जीवन में आश्चर्यजनक सुख की अनुभूति की है।

विदेशों में भी आज भारतीय वास्तुकला को लेकरबड़ा चिंतन एवं विचार-विमर्श हो रहा है। अनेक शोधकार्य हो रहे हैं। इस विषय में सबसे बड़ा कार्टा जर्मनी में हुआ जहाँ हमारे वास्तु शास्त्रों का अंग्रेजी भाषा एवम् अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद एवं प्रकाशन हुआ। आज विदेशों में भी जब कोई नूतन भवन निर्माण होता है तो सर्वप्रथम घर का मुख्य द्वार, पाकशाला, शयन कक्ष, अध्ययन कक्ष आदि कहाँ बनाए जाएं- इस पर पूर्ण विचार होता है। यह सब वास्तुशास्त्र के अनुसार ही किया जा रहा है। वैज्ञानिक प्रगतिशील एवं अत्याधुनिक देश के रूप में पूरे विश्व में अपनी पहचान बनाने वाले अमेरिका में भी अब हमारे वेद, शास्त्रों और वास्तुग्रन्थों को लेकर भवन निर्माण होने लगे हैं। अमेरिका के शहर लास एंजिल्स में हाल ही में जनवरी १९९५ को आर्किटेक्टों ने अर्थर्ववेद स्थापत्य शास्त्र पर आधारित विश्व का प्रथम भवन बनाने का दावा किया है। छोटे गाँवों, कस्बों में एवम् मध्य श्रेणी के शहरों में तो लोग अपनी इच्छानुसार भूमि लेकर वास्तुपद्धति के द्वारा भवन निर्माण कर सकते हैं परंतु महानगरों और व्यस्त नगरों में तैयार फ्लैट खरीदने वालों के पास परिवर्तन करने का पूर्ण विकल्प नहीं होता। बिल्डर और आर्किटेक्टों के द्वारा मनमाने ढंग से बनाए गए बहुमंजिली इमारतों में लोग नाना प्रकार के क्लेश और दुःखों से परेशान रहते हैं। अधिकांशतः यह शिकायत रहती है कि जबसे यह मकान खरीदा है घर में गृहिणी बीमार रहती है, धंधे की प्रगति रुक गई है, मानसिक तनाव हमेशा रहता है, संतान कहना नहीं मानती है। हमारे भाइयों में परस्पर शत्रुता हो रही है आदि-आदि।

महानगरों के इन विशाल भवनों में पूर्ण रूप से वास्तु नियमों को लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि फ्लैट के मुख्य द्वार को बदलना असंभव है। कटे हुए कोणों को बढ़ाना व बढ़े हुए को कम करना भी असंभव सा प्रतीत होता है। किंतु अपने फ्लैट में रसाई, बैडरूम, टॉयलेट की दिशा, पलंग एवं बैठने की दिशा, आलमारी, खिड़िकियां की संख्या में हल्का सा परिवर्तन करके अपने फ्लैट को अनुकूल कर सकते हैं, गृह में वास्तु अनुसार परिवर्तन होने पर परेशानियों से पार पाया जा सकता है।

तोरण द्वारों का निर्माण

विशाल राजमहल हो या छोटे से ऋषि-मुनि का आश्रम सभी जगह घर के बाहर वनस्पति और पेड़-पौधों की शाखाओं से तोरण द्वार बनाए जाते थे। तोरण द्वार कुछ ऐसे होते थे, जो विशाल

भवनों, बंग्लों के वास्तु दोष को दूर करते थे, वहीं अतिथि और आगंतुक को भी सुरुचि सम्पन्नता का परिचय देते थे। आज भी हम देखते हैं कि शहरों में शादी ब्याह के पंडाल के बाहर या किसी उत्सव समारोह-स्थल के मुख्य द्वार पर विशेष अतिथियों के स्वागत-सत्कार में सड़कों ओर मार्गों पर लकड़ी आदि के सजावटी तोरण द्वार बनाए जाते हैं। बौद्धकालीन वास्तुकला में तोरण द्वारों का महत्व सर्वाधिक दिखाई देता है। जैन वास्तु शिल्प में द्वार को शुभ और अशुभ फल देने वाला एक झरोखा समझा गया है। यद्यपि आज इस तोराण द्वार परंपरा की जगह फाटक, शटर या लोहे के गेटों ने ले ली है, फिर भी हम स्पष्ट कर दें कि भारतवर्ष के अलावा दुनिया में बड़े से बड़े राजमहलों या भव्य आलीशान आवासों में कहीं भी तोरण द्वार बनाने की कोई लोकप्रिय परंपरा नहीं है। आज से लगभ २५०० वर्ष पूर्व गुप्त कालीन भारत में आचार्य वराहमिहिर ने 'बृहत् संहिता' में बताया है कि एक अच्छे वास्तु के नियमानुसार बने घर के बाहर चारों तरफ की घेर बाड़ के बाद मुख्य द्वार से बीस हाथ यानी ३०-४० फीट आगे नगर के ईशान कोण की ओर गूलर, शीशम, बाँस या नीम जैसे वृक्ष की तख्तियों से तोरण द्वार बनाने चाहिए। तोरण की ऊँचाई २० फीट, चौड़ाई १० से १५ फीट तक होनी चाहिए। सारनाथ के बौद्ध मंदिरों में, उड़ीसा के साँची और दक्षिण भारत के चेन्नई, तिरुअनंतपुरम् नगरों में मध्य कालीन वास्तु के तोरण आज भी भारतीय पुरातत्व की अनमोल धरोहर है। मानसार नामक प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार-उस समय की माँग को देखते हुए विभिन्न प्रकार के तोरण द्वार बनाने की व्यवस्था थी।

१. **पत्र तोरण**-यह मंगल कार्य विवाह अथवा यज्ञ आदि के समय बनाया जाता है।

२. **पुष्प तोरण**-राजा या उसके समतुल्य अतिविशिष्ट अतिथि के स्वागत में पुष्प तोरण बनाए जाते हैं।

३. **रत्नतोरण**-प्रासाद, राजमहल के दरबार आदि के बाहर या देवालय मंदिरों में रत्न-जड़ित सोने-चाँदी के तोरण बनाए जाते हैं। गुजरात के सोमनाथ मंदिर में सोने चाँदी के स्तम्भों और पट्टिकाओं से रत्न तोरण बने थे। जो मुगल साम्राज्य से पहले अहमदशाह अब्दाली और महमूद गजनबी, मुहम्मद गौरी ने अनेक बार इस मंदिर के तोरण द्वार उखाड़ करके काबुल, कंधार पहुचा दिये, कहते हैं कि सोमनाथ मंदिर को विदेशी हमलावरों ने सोलह बार लूटा।

४. **चित्र तोरण**—ऐसे तोरण द्वारों को अभिलेखागार, कोशागार या मंदिरों आदि के बाहर बनाया जाता है।

५. **काष्ठ तोरण**—ऐसे तोरण छोटे घरों, मुहल्लों, आश्रमों, झोपड़ियों और पर्णकुटिया में बनाए जाते थे।

६. **पाषाण तोरण**—पाषाण तोरण मुख्यत: राजमहल, प्रासाद, दुर्ग और सैनिक छावनियों, शास्त्रागारों के भण्डार गृहों के आगे बनाए जाते थे। आगरे का ताजमहल, दिल्ली की कुतुबमीनार, लालकिला, जामामस्जिद आदि के चारों दिशाओं में पाषाण के तोरण द्वार आज भी दिखाई देते हैं।

७. **लौह तोरण**—लोहे की भारी भरकम सिल्लियों के द्वारा मंदिरों, बहुमंजिला इमारतों, कोठियों एवं महलों में लोह तोरण द्वारा बनाए जाते हैं। इन्हें भवनों की सुरक्षा हेतु बनाया जाता है।

मंदिर की रचना का मुख्य आधार चतुषष्टिपद वास्तु है। इसमें चारों दिशाओं में चार द्वार, उत्तर-पूर्वी भाग में वास्तु पुरुष के सिर वाले क्षेत्र में गर्भ गृह तथा दक्षिण-पश्चिम भाग में वास्तु पुरुष के पैरों वाले क्षेत्र में गोपुर या सिंहपोर बनाया जाता है।

आवासीय वास्तु में द्वार विधान

वास्तुशास्त्र में सबसे महत्वपूर्ण प्रवेश द्वार होता है। पूरे निवास की सुन्दरता व भव्यता प्रवेश द्वार पर निर्भर करती है। किसी भी नियोजन में द्वार का निर्णय एक महत्वपूर्ण निर्णय है। अत: जब भी हम किसी नगर, गांव, प्रासाद, राजमहल, आवासीय या धार्मिक भवन का निर्माण करते तो एसी स्थिति में सर्वप्रथम हमें द्वार का निर्णय करना होता है क्योंकि द्वार का महत्व भवन में उतना ही है, जितना हमारे शरीर में मुख का। अत: हम यह कह सकते हैं कि द्वार भवन का मुख होता है। जिस प्रकार हम किसी का मुख देखकर उसके आचार-विचार और व्यवहार का विचार करते हैं, उसी प्रकार हम भवन का द्वार देखकर वहाँ निवास करने वाले व्यक्तियों के जीवन के बारे में विचार कर सकते हैं। द्वार जितना सुन्दर और मांगलिक चिन्हों से अलंकृत होगा उतना ही शुभ होगा।

शास्त्र ने हमें द्वार की सुंदरता के साथ-साथ उसके स्थान और निर्णय करने की भी सुविधा दी है। हम अपने भवन का द्वार किस स्थान पर किस दिशा में रखें ताकि हम उस भवन में रहते

हुए अधिक से अधिक सुख, सुविधा और सुरक्षा का आनंद उठा सकें। इसके लिए पौराणिक काल में हमारे शास्त्रीय ग्रंथों में अलग-अलग नामों के द्वारों का वर्णन मिलता है जो कि उस दिशा के देवता या दिग्पाल के नामों पर या उनके गुण धर्मों के आधार पर आधारित है। इससे हमें यह ज्ञान मिलता है कि सही दिशा और सही स्थान पर द्वार निर्मित करने से उस दिशा, स्थान एवं देवता के गुणधर्म उस द्वार के माध्यम से हमें सहयोग देते हैं। जो विशेष कार्य की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

आवासीय वास्तु में भवन का द्वार मकान का दरवाजा ही नहीं है अपि तु वास्तुशास्त्र के अनुसार रहने वाले लोगों की सफलता या असफलता का दरवाजा भी है। प्राचीन वास्तु शास्त्र के आचार्यों का कथन है कि भवन-निर्माण शास्त्र सम्मत होने पर भी यदि घर का द्वार निषिद्ध स्थान पर हो तो उसमें रहने वाले लोगों को अनेक समस्या या संकटों का सामना करना पड़ता है। अतः भवन के द्वार का निर्णय सावधानीपूर्वक करना चाहिए। हमारे आचार्यों ने द्वार का निर्धारण करने के लिए कई प्रकार की विधियों का वर्णन किया है।

गृहस्वामी की राशि एवं वर्ण के अनुसार

कर्क, वृश्चिक और मीन राशि वालों के लिए पूर्व दिशा में, कन्या, मकर और मिथुन राशिवालों के लिए दक्षिण दिशा में, तुला, कुम्भ और वृष राशिवालों के लिए पश्चिम दिशा में एवं मेष, सिंह और धनुराशि वालों के लिए उत्तर दिशा में द्वार बनाना उत्तम फलदायी होता है। इसी विषयवस्तु को कुछ आचार्यो ने मतान्तर से इस प्रकार कहा– वृश्चिक, मीन और सिंह राशिवालों के लिए पूर्व दिशा में, कन्या, कर्क और मकर राशिवालां के लिए दक्षिण दिशा में, धनु, तुला और मिथुन राशिवालों के लिए पश्चिम दिशा में और कुम्भ, वृष तथा मेष राशिवालों के लिए उत्तर दिशा में मकान का दरवाजा बनाना उत्तम होता है।

ब्राह्मण राशि (४.८.१२) वालों को पूर्व दिशा में, वैश्य राशि (२.६.१०) वालों को दक्षिण दिशा में, शूद्र राशि (३.७.११) वालो को पश्चिम दिशा में एवं क्षत्रिय राशि (१.५.९) वालों को उत्तर दिशा में घर का द्वार बनाना उत्तम होता है।

राशि एवं वर्ण के अनुसार द्वार चक्र

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	द्वार दिशा
कर्क	कन्या	तुला	मेष	ज्योतिर्निबन्ध के अनुसार
वृश्चिक	मकर	कुम्भ	सिंह	
मीन	मिथुन	वृष	धनु	
वृशिचक	कन्या	धनु	मेष	वास्तुराजबल्लभ के अनुसार
मीन	कर्क	तुला	वृष	
सिंह	मकर	मिथुन	कुंभ	
ब्राह्मण	वैश्य	शूद्र	क्षत्रिय	बृहद्दैवज्ञरंजन के अनुसार
४.८.१२	२.६.१०	३.७.११	१.५.९	

ध्वाजादि आयों के आधार पर द्वार दिशा

ध्वजादि आठों आय अपनी-अपनी दिशा के गृह द्वार में शुभ होते हैं अर्थात् जिस गृह के भूखण्ड का क्षेत्रफल जिस आय के अनुसार निर्धारित होगा उसे निर्धारित आय वाली दिशा में ही भवन का मुख्य द्वार बनाना चाहिए। जैसे-जिस गृह भूखण्ड का क्षेत्रफल ध्वज आय के अनुसार निर्धारित होगा उस गृह का मुख्यद्वार पूर्व में होना चाहिए। ध्वज आय के वैशिष्ट्य के कारण कहा गया है कि **"ध्वजः सर्वगतो देयो"** अर्थात् ध्वज आय वाले गृह का प्रवेश द्वार पू. द. प. उ. इन चारों दिशाओं में से किसी एक या किन्हीं दो या किन्हीं तीन या चारों ही दिशाओं में बनाया जा सकता है। इस प्रकार ध्वज आय अन्य समस्त आयों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। सिंह आय द्वारा निर्धारित क्षेत्रफल वाले गृह का प्रवेश द्वार पू. द. उ. दिशाओं में से किसी एक या किन्हीं दो या तीन दिशाओं में, वृष (गौ) आय द्वारा निर्धारित क्षेत्रफल वाले भवन का मुख्य द्वार केवल पूर्व में ही शुभ होता है। गज आय द्वारा निर्धारित क्षेत्रफल वाले गृह का प्रवेश द्वार पूर्व एवं उत्तर दिशाओं में से किसी एक या दोनों दिशाओं में बनाने का वास्तु शास्त्र में निर्देश है।

'टोडरमल' विरचित "वास्तुसौख्यम्" ग्रंथ के अनुसार ब्राह्मण को ध्वज आय वाले घर में पश्चिामिभमुख, क्षत्रियों को सिंह आय वाले भवन में उत्तराभिमुख, वैश्य को वृष आय वाले भवन में पूर्वाभिमुख तथा शूद्र को गज आय वाले गृह में दक्षिणाभिमुख मुख्यद्वार वाले गृह का निर्माण करना चाहिए।

- सामान्यतः मकान की सिंह, गज, ध्वज और वृष ये ४ आय शुभदायक होती हैं। गज, सिंह और ध्वज आय की दिशाओं में द्वार बनाना उत्तम होते है। ध्वज आय वाले मकान में सिंह आय का द्वार होना चाहिए परन्तु वृष आय वाले मकान में सिंह आय का द्वार बनाना शुभदायक नहीं होता है।

- ध्वज आय वाले मकान का मुख (द्वार) चारों ओर, सिंह आय वाले मकान का मुख पश्चिम दिशा को छोड़कर अन्य तीनों दिशाओं में, गज आय वाले मकान का मुख पूर्व और दक्षिण दिशा में और वृष आय वाले मकान का मुख पूर्व दिशा में बनाना उत्तम होता है।

- इससे यह कह सकतें हैं कि ब्राह्मणों के लिए ध्वज आय, क्षत्रियों के लिए सिंह आय, वैश्यों के लिए वृष आय और शूद्रों के लिए गज आय का मकान बनाना उत्तम होता है। इसी संदर्भ में मुहूर्तचिन्तामणि में रादैवज्ञ ने भी लिखा है–

ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा।
प्राच्यां वृषे प्राच्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः।।[1]

गृहारम्भ मास के आधार पर–

१. कर्क, नक्र, सिंह और कुभ राशि के सूर्य में गृहारम्भ हो तो पूर्व और पश्चिम मुख (द्वार) का मकान बनावाना उत्तम होता है। इससे विपरीत जो व्यक्ति मकान का द्वार बनवाता है वह व्याधि, शोक और धननाश का अनुभव करता है। मीन, धनु, मिथुन और कन्या इन राशियों के सूर्य में कदापि मकान बनवाना अच्छा नहीं है।

२. फाल्गुन मास और कुभ राशि के सूर्य में, श्रावण मास और कर्क या सिंह राशि के सूर्य में, पौष मास और मकर राशि के सूर्य में गृहारम्भ हो तो पूर्वाभिमुखी या

१. मुहूर्त्तचित्तमनि १२.५

पश्चिमा अभिमुखी भवन का निर्माण उत्तम होता है। मार्गशीर्ष मास और तुला या वृश्चिक राशि के सूर्य में, वैशाख मास और वृष या मेष राशि के सूर्य में दक्षिाभिमुख भवन बनवाना श्रेष्ठ होता है। इसके विपरीत नेष्ट होता है।

गृहारम्भ तिथि के आधार पर–

गृहारम्भ का मुहूर्त यदि पूर्णिमा से लेकर कृष्ण पक्ष की अष्टमी के भीतर हो तो मकान का मुख पूर्व दिशा में न बनवाएं। यदि कृष्ण पक्ष की नवमी से चतुद्रशी के भीतर गृहारम्भ का मुहूर्त हो तो उत्तर दिाा की ओर द्वार न बनावें। आमावस्या से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक आरंभ का मुहूर्त हो तो पश्चिम दिशा में द्वार न बनावें। पुनः शुक्लपक्ष की नवमी से चतुद्रशी के अंदर गृहारम्भ का दिन निश्चित हो तो दक्षिण दिशा में मकान का मुख्य द्वार न बनावें।

वास्तुचक्र के आधार पर द्वार निर्णय–

वास्तु चक्र में वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों पर स्वामित्व रखने वाले पैंतालिस देवताओं की स्थापना की गई थी। एकाशीति पद या चतुषयष्टिपद वास्तु मण्डल बनाकर उसके देवताओं के अनुसार द्वार का निर्णय किया जाता है। आवासीय वास्तु में अधिकतर एकाशीति वास्तुमंडल का उपयोग किया जाता है। इसमें भूखण्ड को ९ x ९ पदों में विभक्त किया जाता है। ८१ पदों के इस वास्तु मण्डल को परमशायिका नाम से संबोधित किया जाता है। चारों दिशाआं में द्वार की स्थापना के विशेष शुभ पद हैं। जिस दिशा में भवन का द्वार बनाना हो, उस दिशा को बराबर नौ भागों में बाँट दें, फिर वाएँ से २ भाग और दाएँ से ५ भाग छोड़कर शेष दो भागों में पूर्व और दक्षिण दिशा के मुख्य द्वार बनाएँ। इसी प्रकार पश्चिम में वायें से ३ भाग और दायें से ४ भाग छोड़कर तथा उत्तर में वायें से २ भाग व दायें से ४ भाग छोड़कर शेष २-२ भागों में मुख्यद्वार बनाना चाहिए। भवन से बाहर निकलते समय अपने दायें को भवन का दायां और अपने वाएं को भवन का वायां भाग मानना चाहिए।

वास्तु चक्र की चारों दिशाओं के ३२ कोष्ठकों के अधिष्ठित देवताओं के नाम एवं विभिन्न पदों में द्वार स्थापना के फल भिन्न-भिन्न हैं–

यह फल बृहत् संहिता के आधार पर है। क्योंकि वसिष्ठ संहिता के अनुसार कहे गये फल अन्य प्रमुख आचार्यों के द्वारा कहे गये फलों से कुछ भिन्न है। जबकि बृहत्संहिता में कहे फलों में एकरूपता है।

उत्तर

पश्चिम | | | | | | | | | पूर्व

२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	१
२४								२
२३								३
२२								४
२१				ब्रह्म स्थान				५
२०								६
१९								७
१८								८
१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९

दक्षिण

पूर्व दिशा में द्वार स्थापना का फल–

१. **शिखी**–अग्नि के कारण विस्फोट या गैस रिसाव से जान-माल की हानि।

२. **पर्जन्य**–इस स्थान पर द्वार होने से कन्या संतान की अधिकता या महिला प्रधान विकास।

३. **जयंत**–संपन्नता, धन, लाभ, प्रसिद्धि और उन्नति।

४. **इन्द्र**–शासकीय अनुग्रह, परिवार के लोगों के राजपत्रित अधिकारी बनने या राज-सम्मान की संभावना, पूर्वज संपदा लाभ।

५. **सूर्य**–घर में व्यर्थ के क्रोध की अधिकता से शांति का अभाव, मानसिक तनाव।

६. **सत्य**–गलत दोषारोपण या असत्य भाषण की प्रवृत्ति, महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव।

७. **भृश**–भाव में हिंसात्मक प्रभाव, क्रूरता अथवा दुःखकारक शत्रु भय।

८. **अंतरिक्ष**–चोरी से हानि, चोर पकड़ में नहीं आते, विनम्रता।

दक्षिण दिशा में द्वार स्थापना का फल–

९. **अनिल**–अग्नि से हानि, वित्तीय हानि, पुत्र-संतान की क्षति।

१०. **पूषा**–उच्च परिवार में जन्म के बाद भी दासत्व की प्रवृत्ति, महत्वहीनता, मित्र और परिजन द्वारा यंत्रणा।

११. **वितथ**– दिन-प्रतिदिन समृद्धि बढ़े, अच्छे परिणाम, अर्थपूर्णता।

१२. **बृहत्क्षत**–पुत्रप्राप्ति, कुल दीपक, संपन्नता, आर्थिक लाभ।

१३. **यम**–अशुभ दुर्घटना से मृत्यु या अस्वाभाविक मृत्यु।

१४. **गंधर्व**–सम्मान की हानि, कृतघ्नता।

१५. **भृगराज**–वित्तीय हानि, चोरों से भय, व्याधि का भय

१६. **मृग**–पुत्र क्षमता का भय, यानि संतान कायर व डरपोक हाती है। शोषण, बाधाएँ।

पश्चिम में द्वारा स्थापना का फल

१७. **पितृ**–आय से अधिक व्यय, पुत्र को कष्ट, शत्रुओं की वृद्धि।

१८. **दौवरिक**–शत्रुता, वधिरता, स्त्रियों को कष्ट।

१९. **सुग्रीव**–शारीरिक दु:ख, आर्थिक समस्याएँ

२०. **पुष्यदंत**–वित्तीय और मानव विकास, उन्नति

२१. **वरुण**–उत्तम स्वास्थ्य, आराम, शांति, वित्तीय विकास।

२२. **असुर**–शासकीय उत्पीड़न, पितृशोक, दुर्भाग्य की प्राप्ति।

२३. **शोष**–वित्तीय हानि, शोक की प्राप्ति।

२४. **पापयक्ष्मा**–बीमारियां व दुर्घटनाएं

उत्तर दिशा में द्वार स्थापना का फल

२५. **रोग**–बीमारी, शत्रुओं की वृद्धि, चिंता।

२६. **नाग**–शत्रुता, निर्बलता व स्त्रियों को कष्ट।

२७. **मुख्य**–प्रसन्नता, संपन्नता, स्वास्थ्य वर्धक।

२८. **भल्लाट**–चतुर्दिक उन्नति, वितीय लाभ, मानव विकास।

२९. **कुबेर**–धन संपन्नता का लाभ, चतुर्दिक लाभ।

३०. **भुजङ्ग**–पुत्र से शत्रुता व दुःखो की प्राप्ति, परिजन से विरोध।

३१. **अदिति**–महिलाओं के लिए प्रतिकूल, महिला दोष।

३२. **दिति**–असफलता, कार्य में बिलम्ब के कारण बाधाएं और यंत्रणा।

द्वार स्थापना भूमि की उच्च एवं निम्न कोटि को देखकर उचित निर्णय किया जा सकता है। उच्च एवं निम्न कोटि को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। उच्च कोटि में द्वार स्थापना से शुभ फल की प्राप्ति होती है–

१. **उत्तरी ईशान**–इस उच्चकोटि क्षेत्र में द्वार बनाना शुभ फलदायक होता है।

२. **पूर्वी ईशान**–इस उच्च कोटि क्षेत्र में द्वार बनाना शुभ फलदायक है।

३. **पूर्वी आग्नेय**–इस दिशा में द्वार बनाना शुभ फलदायी नहीं है।

४. **दक्षिण आग्नेय**–इस स्थान में द्वार बनाने से शुभ फल की प्राप्ति होती है।

५. **दक्षिण नैऋत्य**–इस दिशा क्षेत्र में द्वार शुभ फलदायी नहीं है। आर्थिक हानि तथा परिवार की स्त्रियों के स्वास्थ्य प्रायः ठीक नहीं रहते।
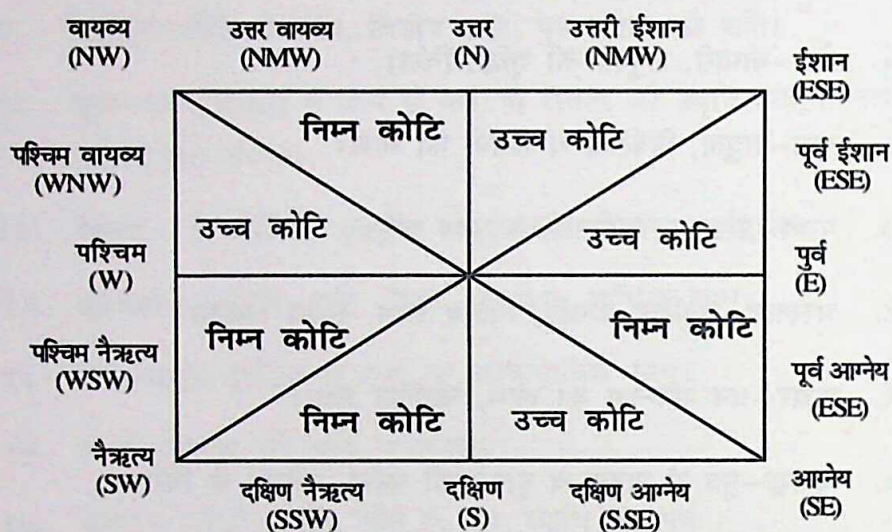
६. **पश्चिम नैऋत्य**–इस दिशा क्षेत्र में भी द्वार शुभ फलदायी नहीं होता है।

७. **पश्चिम वायव्य**–यह क्षेत्र उच्चकोटि में है। इस क्षेत्र में द्वार बनाना शुभ होता है।

८. **उत्तर वायव्य**–यह क्षेत्र निम्न कोटि में है इसमें द्वार बनाना शुभ नहीं है।

द्वारपाल के अनुसार द्वार विचार–

- जिस दिशा में दरवाजा बनाना हो उस दिशा में, दिशा, ग्राम और मकान के स्वामी, इन तीनों के स्वरों का योग करके ८ का भाग देने से यदि १ शेष बचे तो सूर्य, २ शेष बचे तो चंद्रमा, ३ शेष बचे तो मंगल, ४ शेष बचे तो बुध, ५ शेष बचे तो शनि, ६ शेष बचे तो बृहस्पति, ७ शेष बचे तो राहु और ८ अथवा शेष बचे तो शुक्र ये आठ द्वारपाल होते हैं। शुभग्रह द्वारपाल हो तो सर्वदा सुख और पापग्रह द्वारपाल हो तो निरंतर दुःख मिलता है।[1]

---

१. दिशश्च स्वर मादाय ग्रामनामेति गण्यते।
अष्टभिस्तु हरेदभागं शेषं च द्वारपालकाः।।
रविश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः।
शुभग्रहे शुभं नित्यं पापे दुःख प्रजायते।।

- सम्मुख वाली दिशा का स्वर और ग्राम का नामाक्षर जोड़ कर आठ का भाग देने से यदि १ शेष बचे तो निर्धन, २ शेष बचे तो धनवान, ३ शेष बचे तो दाता, ४ शेष बचे तो नपुंसक, ५ शेष बचे तो लक्ष्मीपति, ६ शेष बचे तो धनाढ्य, ७ शेष बचे तो सर्वशून्य और ८ अथवा शेष बचे तो दरिद्र नाम का द्वारपाल होता है। जैसा नाम वैसा ही उसका फल भी समझना चाहिए है।

प्रधान द्वार एवं अन्य द्वारों में अंतर

निर्माण एवं साज-सज्जा की दृष्टि से प्रधान द्वार को अन्य द्वारों की अपेक्षा अधिक बड़ा एवं मांगलिक चिन्हों के द्वारा आकर्षक बनाना चाहिए। शेष सभी दरवाजों को समान रूप से बनाया जा सकता है।

द्वार प्रमाण

उत्तम मुख्य द्वार की ऊँचाई गृह के विस्तार (चौडाई) के तुल्य हस्ताङ्गुल में ७० अंगुल जोड़ने से प्राप्त होती है। इसी प्रकार कनिष्ठ द्वार की ऊँचाई में ६० अंगुल जोड़ पर तथा मध्यम द्वार की ऊँचाई ५० अंगुल जोड़ पर प्राप्त होती है। उत्तमद्वार का विस्तार द्वार की लम्बाई के आध भाग में १६ वें भाग अधिक जोड़ने से प्राप्त होती है। मध्यम द्वार की चौड़ाई लंबाई से ३ भाग कम तथा कनिष्ठ द्वार का विस्तार लम्बाई का आधा होता है।[१]

यदि मकान में एक ही दरवाजा बनाना हो तो पूर्व दिशा में बनाना चाहिए। मंदिरों में चारों ओर द्वारा बनाना श्रेष्ठ होता है। यदि मकान में दोनों ओर द्वार बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम दिशा में एक साथ कदापि दरवाजा नहीं बनाना चाहिए।

द्वार सम्बन्ध

मकान में प्रवेश करने पर बाहरी और भीतरी द्वारों से गुजरना पड़ता है, उन द्वारों का पारस्परिक संबंध व फल निम्नवत् होता है–

उत्संग–एक ही दिशा वाले वास्तु और वेश्म के दरवाजें हो तो यह उत्संग कहलाता है। यह सौभाग्य, संतान, धनधान्य और जय देने वाला होता है।

---

१. राज बल्लभमण्डनम् ५.१३

हीन बाहुक–जहाँ प्रवेश करने पर वास्तु का गृह बाएं होता है, उस वास्तु को हीनबाहुक नाम से निन्दित कहा है। इसमें रहने वाला व्यक्ति अल्प वित्त, स्वल्पमित्र और अल्प बान्धव वाला होता है। वह वहाँ नित्य विविध व्याधियों से पीड़ित रहता है।

पूर्ण बाहुक–यदि द्वार दाएं होता है तो उसका प्रदक्षिण प्रवेश होने के कारण पूर्ण बाहुक होता हैं : इसमें पुत्र, पौत्र, धन-धान्य और सुख की प्राप्ति होती हैं।

प्रत्यक्ष–द्वार के पीछे के भाग का आश्रय लेकर यदि घर द्वार होता है तो बाएं भाग से इसका प्रवेश होने के कारण प्रत्यक्ष नाम निन्दित वास्तु है। इसमें रहने वाले लोगों का धन क्षय होता रहता है।

द्वार दोषावलोकन–

वास्तु शास्त्र में द्वार-संबंधी निम्न-वर्णित प्रमुख दोषों का उल्लेख मिलता है।

- द्वार गृह स्वामी की राशि, वर्ण या ध्वज आदि आय के आधार पर निर्धारित दिशा में स्थापित न करना।
- निर्धारित दिशा वाले गृह पार्श्व में भी उस पार्श्व के द्वार हेतु निर्दिष्ट विशिष्ट पद (भाग) पर द्वार स्थापित न होना।
- द्वार की लंबाई एवं चौड़ाई का वास्तुशास्त्र सम्मत न होना।
- द्वार के ऊपरी या पाश्ववर्ती भाग में झुकाव या वक्रता का होना।
- दरवाजे का स्वयं खुलना या बद होना।
- दरवाजे को खोलते एवं बंद करते समय आवाज का होना।
- द्वार के ऊपर द्वार या द्वार के सामने द्वार का होना।
- भवन के दो पार्श्वों के संधि स्थान पर द्वार का होना।
- भित्ति के ठीक मध्य भाग में द्वार का होना।
- भवन के शीर्ष एवं मर्म स्थानों पर द्वार का होना।

- द्वार के आगे वेधकारक खम्भा, पेड़ आदि का होना।

द्वार दोषों का फल

१. दरवाजा यदि स्वयं खुलता हो तो गृहस्वामी को 'उन्माद' रोग होता है। स्वयं बंद होता है तो कुलनाश, शास्त्रोक्त प्रमाण से अधिक लंबा हो तो राजभय, प्रमाण से न्यून हो तो चोरभय एवं शारीरिक कष्ट होता है। चौड़ाई में भी प्रमाण से अधिक हो तो भूख एवं भयकारक होता है। द्वार शाखा में वक्रता हो तो कुलनाश करता है। गुलर की लड़की से यदि द्वार का निर्माण किया जाए तो गृहपति को कष्टदायक होता है। द्वार में यदि गृह के भीतर की तरफ झुकाव हो तो गृहस्वामी के लिए मृत्यु तुल्य कष्ट देता है।

२. दरवाजे के ऊपर दरवाजा या दरवाजे के सामने दरवाजा हो तो गृह स्वामी को अनावश्यक व्यय संकट तथा दरिद्रता को देने वाला होता है।

३. भवन के ठीक कोने में अगर द्वार स्थापित हो तो गृहपति के लिए कई प्रकार के दुःख, शोक एवं भय को देने वाला होता है।

४. भित्ति के ठीक बीचों बीच अगर द्वार स्थापित हो तो उस घर में वास करने वालों के लिए द्रव्य एवं धान्य का विनाश होने के साथ-साथ कलह एवं शोकप्रद होता है।

५. यदि भवनस्थ वास्तु पुरुष के जिस मर्म स्थान पर द्वार स्थापित किया जाए तो गृह स्वामी के उसी अंग में पीड़ा होती है।

द्वारवेध

द्वार के ठीक सामने मार्ग, वृक्ष, कूप, बावड़ी, स्तंभ, गर्त (गड्डा), व चबूतरा अन्य किसी के घर का कोना, दूसरे घर का द्वार, नाली, वीथि एवं कीचड़ भरा गड्ढा हो तो द्वार वेध दोष होता है। द्वार वेध के इन दोषों का वास्तु ग्रंथों में अलग-अलग प्रकार का अशुभ फल लिखा है यथा- मार्ग से वेधयुक्त गृहद्वार गृह स्वामी का नाश करता है। वृक्ष से वेधयुक्त द्वार बच्चों के लिए अहितकारक होता है। पंक (कीचड़) विद्ध द्वार शोकदायक होता है। नाली से विद्ध द्वार धन का अपव्यय करवाता हैं।

वृक्ष, कोण, कोल्हू इत्यादि भ्रमण शील यंत्र, खंभा, कूप, देवमन्दिर और कील इन वस्तुओं से द्वार वेधित होता है। अर्थात् दरवाजे के सामने ये वस्तुएँ हों तो शुभ नहीं होता है परंतु मकान की ऊँचाई की दूनी जमीन छोड़कर यह वेध हो तो वेध का दोष नहीं होता है।

द्वार स्थापना का मुहूर्त

द्वार स्थापना के लिए मुहूर्त का विचार करने में द्वार शाखा चक्र, नक्षत्र, वार एवं तिथ्यादि के द्वारा निर्णय किया जाता है। द्वारस्थापना चंद्र, बुध, गुरु एवं शुक्रवार, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु मृगशिर्ष, पुष्य, उ.फा. हस्त, चित्रा, स्वाती अनुराधा उ.षा. श्रवण, उ.भा. एव रेवती नक्षत्र तथा नन्दा (१,६,११), जया (३,८,१३) एवं पूर्णा (५,१०,१५) तिथियां ग्राह्य हैं। द्वार स्थापना के समय भद्रादि दोषों का विचार करने के साथ-साथ द्वार चक्र शुद्धि को भी अवश्य देखना चाहिए। द्वार चक्र में सूर्य नक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक गणना करने पर विभिन्न नक्षत्रों में द्वार स्थापना करने से मिलने वाले शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है।

द्वार स्थापना के दिन सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उससे प्रथम चार नक्षत्र सिर पर, अगले आठ नक्षत्र कोणों पर, इससे आगे आठ नक्षत्र बाहुओं पर, अगले तीन नक्षत्र देहली पर और अगले चार नक्षत्र मध्यम में स्थिर रहते हैं शीर्ष भाग में स्थित नक्षत्रों में यदि द्वार स्थापित हो तो घर में लक्ष्मी का वास, देहली में स्थित नक्षत्रों में द्वार स्थापित हो तो स्वामी का नाश, कोण में स्थित नक्षत्रों में द्वार स्थापित हो तो गृह, मध्य में स्थित नक्षत्रों में द्वार स्थापित हो तो सुखशान्ति कारक गृह होता है। इस आधार पर भी द्वार स्थापना का विचार अवश्य करना चाहिए।

द्वार स्थापना सम्बन्धी मुख्य निर्देश

- द्वार की स्थापना वास्तु के अनुरूप शुभ पद विन्यास में करनी चाहिए।
- मुख्य द्वार को कभी भी भूखण्ड के बड़े हुए या कटे हुए भाग में स्थापित न करें।
- दरवाजे और खिड़कियाँ भवन के अनुपात में होनी चाहिए।
- मुख्य द्वार भवन के अन्य द्वारों की अपेक्षा बड़ा होना चाहिए।
- मुख्य प्रवेश द्वार में दहलीज अवश्य होनी चाहिए।

- भवन अथवा घर में पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में द्वार आमने सामने नहीं होने चाहिए।
- मुख्य द्वारा के ठीक सामने किसी सड़क या गली से वेध नहीं होना चाहिए।
- मुख्य द्वार को सदैव सुसज्जित होना चाहिए।
- दरवाजा खोलते या बंद करते समय कोई भी आवाज नहीं होनी चाहिए।
- मुख्य द्वार मुड़ा हुआ, झुका हुआ या टूटा हुआ नहीं होना चाहिए।
- सार्वजनिक स्थलों, स्मारकों, एवं मंदिरों में चारों दिशाओं में द्वार स्थापित किये जा सकते हैं।
- मुख्य द्वार के सामने कोई वेध नहीं होना चाहिए।
- मकान के पिछवाड़े का द्वार मुख्य द्वार के अनुपात में कम होना चाहिए।
- मुख्य द्वार सदैव वास्तु अनुरूप शुभ मुहूर्त में स्थापित करना चाहिए।
- नये मकान में पुराने दरवाजों का प्रयोग नहीं करना चहिए।

द्वार स्थापना-एक सर्वेक्षण

वास्तुशास्त्र के प्रायः सभी शास्त्रीय ग्रन्थों में मुख्य द्वार की शास्त्र सम्मत स्थापना पर विशेष बल दिया गया है। मुख्य-द्वार की स्थापना आवासीय वास्तु में प्रयोग किये जाने वाले 'एकाशीतिपदवास्तुचक्र' के आधार पर ही करनी चाहिए। यथा यदि उत्तर दिशा में मुख्य द्वार की स्थापना करनी है तो हमें उत्तर दिशा के लिए निर्धारित मुख्य, भल्लाट और कुबेर पद पर ही द्वार की स्थापना करनी चाहिए। यहाँ स्थापित करने से सम्पन्नता, स्वास्थ्यवर्धक, चतुर्दिक् उन्नति, वित्तीय लाभ, धन-सम्पन्नता आदि लाभ की प्राप्ति का संकेत हमारे ऋषि मुनियों ने दिया है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में हमने किञ्चित् प्रश्नावली को आधार बनाकर कुल २० गृहों (मकानों) का सर्वेक्षण किया, कुछ मकान दिल्ली तथा कुछ दिल्ली से बाहर के हैं। इस सर्वेक्षण में मुख्यरूप से मुख्य-द्वार को आधार बनाया गया, यद्यपि वास्तु के प्रमुख बिन्दू यथा रसोईघर, पूजाघर, शयनकक्ष आदि के दिशा की भी जानकारी दी गई है किन्तु यहाँ उसकी प्राथमिकता कम

दी गई है। इस सर्वेक्षण में किञ्चित् तथ्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से ठीक मिलते हैं परन्तु कहीं नहीं भी मिलते हैं।

उत्तर, ईशान तथा पूर्व में स्थिति मुख्य द्वार का परिणाम ८० प्रतिशत तक शुभ कहा जा सकता है। यह सर्वेक्षण संख्या-१ से ९ तक के परिणाम से स्पष्ट है। सर्वेक्षण संख्या १ वाला गृह "उत्तर-ईशान" मुखी है। इसके गृहस्वामी के कथनानुसार यह मकान हमारे लिए शुभ है क्योंकि इस घर में कई शुभ कार्य सम्पन्न हुये यथा- स्वयं की शादी, दो पुत्र की प्राप्ति, आर्थिक सम्पन्नता आदि। अशुभ परिणाम में पत्नी से वैचारिक क्लेश है।

सर्वेक्षण संख्या २ वाला गृह "उत्तर-ईशान" मुखी है। इस गृहस्वामी के अनुसार यह भवन उनके लिए शुभ है- पुत्र की शादी, नौकरी, पौत्री की प्राप्ति हुई किन्तु पत्नी का स्वास्थ्य खराब रहता है। सर्वेक्षण संख्या ३ वाले गृह का मुख ईशान में हैं, जातक के लिए यह मकान शुभ और अशुभ दोनों है। जातक को अकस्मात् धन की प्राप्ति हुई वहीं पुत्र का विकास नहीं हो सका, घर में क्लेश तो प्रतिदिन ही दिनचर्या बन गया, महिलायें यहाँ प्रायः रोगग्रस्त रहती है। सर्वेक्षण ४ से ७ के सभी भवन उत्तर मुखी है इनके लिए भवन शुभ हैं। सर्वेक्षण संख्या ८ वाला गृह "ईशान पूर्व" मुखी है इनके लिए शुभ है। सर्वेक्षण संख्या ९ के गृहस्वामी के लिए मकान शुभ है ४ पुत्री एवं १ पुत्र की प्राप्ति हुई, सभी शिक्षित और नौकरी करते हैं, किन्तु पुत्र तथा पुत्रवधू को डिप्रेशन की बीमारी तथा पौत्र को न्यूमोनिया की शिकायत रहती है।

इस प्रकार सर्वेक्षण-१ से ९ तक के सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि इस दिशा में मुख्यद्वार शुभ है हाँ कुछ में स्त्री के लिए कष्टकारी है। उत्तर-ईशान में मुख्य द्वार होने पर ही यह कष्ट की प्रतीत रही है।

पश्चिम वायुकोण तथा उत्तर दिशा में स्थित मुख्य द्वार का परिणाम भी शुभ दृष्टिगोचर हुआ है। जातक के कथनानुसार शुभ तथा अशुभ, लाभ और हानि दोनों की प्राप्ति हुई।

दक्षिण, आग्नेयकोण तथा नैऋत्य कोण में स्थित मुख्य द्वार का परिणाम चौकाने वाला है। सर्वेक्षण संख्या १४ के गृहस्वामी के लिए यह मकान अत्यन्त अशुभ रहा है। मुख्य द्वार अग्निकोण में स्थापित है। यह जातक जो आर्थिक रूप से सुदृढ़ था किन्तु आज अत्यन्त कमजोर स्थिति में हैं शत्रुओं के द्वारा पत्नी की मृत्यु हुई, भाई की मृत्यु हुई। शत्रुभय के साये में जीने के लिए मजबूर है। इनके मकान का विस्तार नैऋत्य-पश्चिम में है। ब्रह्म स्थान खाली नहीं है। चापाकल

(हैण्डपम्प) दक्षिण दिशा में स्थित है जो शास्त्र सम्मत नहीं है। मुख्य द्वार 'भृश' पद पर अवस्थित है जिसका फल है-स्वभाव में हिंसात्मक, क्रूरता अथवा दुःखकारक, शत्रुभय, महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव वाला बताया गया है।

सर्वेक्षण संख्या १५ में घर का मुख्य द्वार पूर्व - ईशान, अग्नि-दक्षिण तथा दक्षिण में है प्रायःतीन द्वार इनके हैं। यह भूखण्ड दण्डाकार है तथा दक्षिण दिशा नीची तथा खुली है। कुँआ ठीक दक्षिण में अवस्थित है। यह मकान वास्तुशास्त्र के अनुसार जातक के लिए शुभ नहीं कहा जा सकता-इस मकान में 'अकालमृत्यु' हुई उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है। एक पुत्र की आंख सम्बन्धी रोग तो दूसरे पुत्र तथा पत्नी को हड्डी सम्बन्धी बीमारी है, अतः स्पष्ट है कि दण्डाकार मकान दण्डाधिकारी बनकर दण्ड प्रदान कर रहा है, तथा 'यम' में स्थित द्वार 'अकाल मृत्यु' देकर ऋषि-मुनि के अनुभवजन्य फल को साकार कर रहा है।

सर्वेक्षण संख्या १६ के भूस्वामी के गृह का मुख्यद्वार 'दक्षिण-नैऋत्य' में स्थित है यह भूखंड विजनाकार है। जातक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वंशवृद्धि की दृष्टिकोण से यह मकान अत्यन्त अशुभ है अब तक पुत्र की प्राप्ति नहीं, पुत्र होने के बाद मर जाता है कहा जाता है कि अब तक इस घर में ग्यारह पुत्रों का जन्म हुआ लेकिन कोई भी नहीं बचा। पुत्री की प्राप्ति हुई तथा पुत्री का बेटा जिंदा है। गृहणी रोगग्रस्त है। यह चन्द्रवेधी मकान है तथा दक्षिण नैऋत्य दिशा में इसका विस्तार हुआ है। ब्रह्म स्थान खाली नहीं है वहाँ पर दीवार स्थित है।

सर्वेक्षण संख्या १७ में घर का मुख्य द्वार प्रारम्भ में दक्षिण में था किन्तु अब पूर्व दिशा में है। यह भूखंड विजनाकार है दक्षिण-नैऋत्य में विस्तार है। यह मकान अत्यन्त ही अशुभ रहा है। प्रारम्भ में आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी उत्तरोत्तर ह्रास हुआ। एक पौत्र की अकाल मृत्यु हुई, एक पुत्र जिसे पैरालाइसिस की बीमारी हुई जो ठीक नहीं हुआ। आजीवन माता को इस पुत्र से कष्ट हुआ। अभी आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब है।

सर्वेक्षण संख्या १८ के घर का मुख्यद्वार दक्षिण दिशा में है, जातक आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ है, मकान खरीदने के बाद से खूब पैसा कमाया साथ ही धन की बर्बादी भी हुई किन्तु पुत्र तथा पत्नी की दृष्टि से अत्यनत अशुभ है। पति-पत्नी में क्लेश रहता है, पत्नी बीमार रहती है। दोनों पुत्र-दो बार घर से भागकर अन्यत्र चले गये लेकिन पुनः वापस आ गये। किरायेदार ने पैसा लेकर मकान खाली किया।

सर्वेक्षण संख्या १९ में घर का मुख्य द्वार आग्नेय कोण तथा उपद्वार नैऋत्य में स्थित है। मकान अत्यन्त अशुभ है। भूस्वीमी की मृत्यु बीमारी से तथा लड़के की अकालमृत्यु हुई, परिवार पूरी तरह से बिखर चुका है।

सर्वेक्षण संख्या २० में घर का मुख्य द्वार अग्निकोण-दक्षिण दिशा में स्थित है तथा पश्चिम दिशा में भी है। सामान्यतः शुभ है। स्त्री कष्ट है। वैचारिकता एवं अनैतिकता का अभाव है। कोई विशेष हानि नहीं हुई है। जिन अन्य सर्वेक्षणें की यहाँ चर्चा नहीं की गयी है वे सभी गृह वास्तु सम्मत है और उनके परिणाम भी वास्तुशास्त्र के अनुकूल ही हैं। अतः कह सवते हैं कि वास्तु के अनुकूल यदि द्वार की स्थापना की जाय तो शुभ फल मिलते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तर, ईशान, पूर्व तथा पश्चिम मुखी द्वार शुभ है तथा आग्नेय, नैऋत्य तथा दक्षिण मुखी मुख्य द्वार अशुभ है। अतएव मुख्य द्वार के चयन में अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए तथा शास्त्र सम्मत, शुभपदों में या राशि के अनुसार दिशा निर्धारण कर या क्षेत्रफल के आधार पर पिण्ड साधन तथा आय साधन कर मुख्य द्वार की स्थापना करनी चाहिए। यहाँ सर्वेक्षणों का विवरण नहीं दिया गया है क्योंकि स्थानाभाव के कारण संक्षिप्त में मात्र सर्वेक्षण परिणाम दिये गये हैं।

घर का मुख्य द्वार न केवल भवन की सुन्दरता को द्योतित करता है अपितु गृहस्वामी की प्रकृति और जीवन के प्रति मुख्य कर्त्तव्यों को भी दर्शाता है। घर का मुख्य द्वार सदैव सुसज्जित, साफ-सुथरा, स्वस्तिक तथा ॐ जैसे शुभ संकेतों से युक्त तथा कूड़ा करकट से मुक्त होना चाहिए। दरवाजा खोलते और बंद करते समय कर्कश ध्वनि नहीं आनी चाहिए। मुख्य द्वार अन्य सभी द्वारों से बड़ा होना चाहिए तथा मजबूत और भव्य होना चाहिए। मुख्य द्वार के सम्मुख कोई वेध नहीं होना चाहिए। वास्तुशास्त्र के नियमानुकूल शुभ पदों में स्थापित किया गया मुख्य द्वार स्वयं तथा परिवार के लिए समृद्धि, सुख एवं खुशहाली प्रदान करता है।

टी-प्वाइंट पर बने घरों की वास्तुस्थिति

(वर्तमान संदर्भ में)

रविशंकर

निवास योग्य भूमि एवं भवन को ही वास्तु कहते हैं। यह भी कह सकते है कि जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन के अधिकतम नियमों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का प्रतिपादन सूरक्षा एवं सुविधा की दृष्टि से किया जाता है, उसे ही वास्तुशास्त्र कहते हैं। आवास प्राणीमात्र की आधारभूत आवश्यकता है। प्राणी चाहे मनुष्य हो या मनुष्येतर रहने के लिए सभी को आवास चाहिए। मनुष्य मकान बना कर रहते हैं और अन्य सभी प्राणी प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था के अनुरूप अपने रहने के लिए स्थान खोज लेते है। मनुष्य एक बुद्धि सम्पन्न प्राणी है जिससे वह अपनी सुख सुबिधाकों का पूर्ण ध्यान रखता है जो कि मनुष्येत्तर प्राणी नहीं कर सकते है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थित जीवन के लिए आवास हमारी पहली आवश्यकता है।

जीवन क्या है? इस प्रश्न का भिन्न-भिन्न विचारकों एवं चिन्तकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से उत्तर दिया है। यदि इस प्रश्न का व्यापक रूप से विचार कर सही और सटीक उत्तर दिया जाय तो कह सकते हैं कि जीवन समस्याओं एवं संकटों एक मिला जुला रूप है। जीवन में ऐसा कोई स्थान या क्षण नहीं है जब प्राणी समस्या एवं संकटो से न घिरा हो। मनुष्येतर प्राणियों में ज्ञान-विज्ञान और सुविधा-सुरक्षा के साधनों का लगभग अभाव है वे समस्याओं से जूझ कर ही जीवन बिताते हैं।

इस ब्रह्माण्ड में सबसे शक्तिशाली प्रकृति है क्योंकि यही सृष्टि का विकास एवं विनाश करती है। प्रकृति की शक्ति उसके वातावरण में विद्यमान तीन प्रकार के बलों से परिलक्षित होती है। ये बल हैं-गुरुत्व बल, चुम्बकीय बल एवं सौर ऊर्जा। इन तीनों प्रकार के बलों का उपयोग कर तन, मन एवं जीवन को सक्षम और सन्तुलित बनाने के लिए आवास के जिन नियमों, सिद्धान्तों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया गया है उनके संकलित स्वरूप को ही वास्तुशास्त्र कहते हैं।

वास्तुशास्त्र के आवासीय, व्यावसायिक एवं धार्मिक दृष्टि से तीन भेद बनते हैं। इसमें आवासीय वास्तु या अन्य किसी भी वास्तु को हम अपनी सामर्थ्यानुसार घास-फूस से बनी पर्णकुटी, झोपड़ी, लकड़ी से बने घर, मिट्टी-खपरैल के बने कच्चे घर, पत्थर से बने भवन, महल, प्रासादादि का रूप दे सकते हैं। इन सभी प्रकार के घरों में आवासीय व्यवस्था चल सकती है किसी भी प्रकार के वास्तु में उसके परितः स्थित वातावरण का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। इस लिए सभी प्रकार के वातावरण का विचार वास्तुशास्त्र में करना चाहिए। वास्तु की दृष्टि में वेध किसी भी प्रकार के वास्तु को प्रभाविक करता है। इस लिए बेध का विचार अवश्य करना चाहिए।

वेध दोष

भूखण्ड एवं मकान के द्वार के सामने मन्दिर, धर्मस्थान, स्तम्भ, कुआँ, जलाशय एवं सड़क होने से वेध दोष होता है। यदि ये मकान की ऊँचाई से दो गुना दूरी पर हों, तो द्वार के लिए वेध दोष नहीं होता किन्तु भूखण्ड के वेध का विचार मुख्य रूप से मार्ग के आधार पर किया जाता है। यदि कोई सड़क इस प्रकार हो कि वह सीधा आकर भूखण्ड को छूती हो, तो वह भूखण्ड के लिए वेध/शूल दोष होता है। यह मार्ग एक तीर की तरह आकर भूखण्ड को वेधता है।

भूखण्ड के पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण दिशा में किसी भी ओर से कोई सड़क भूखण्ड के बीच के भाग को छूती हो तो यह वेध दोष होता है। यदि यह वेध उत्तर और पूर्व दोनों दिशा में हो तो दोष नहीं होता है। किसी गोल चक्कर के पास के भूखण्ड पर एक, दो या तीन ओर से सड़क हो तो वेध-दोष नहीं होता है।

यदि भूखण्ड की सीमा से लगी सड़क पर अन्य सड़क समकोण की सीध में आकर मिलती हो, और वह सड़क जरा सी आगे बढ़ने पर भूखण्ड को छूती हो, तो वेध शूल होता है। वह वेध शूल दिशाओं में अशुभ तथा कोणों में विभिन्न स्थितियों में कभी शुभ और कभी अशुभ होता है, यथा–
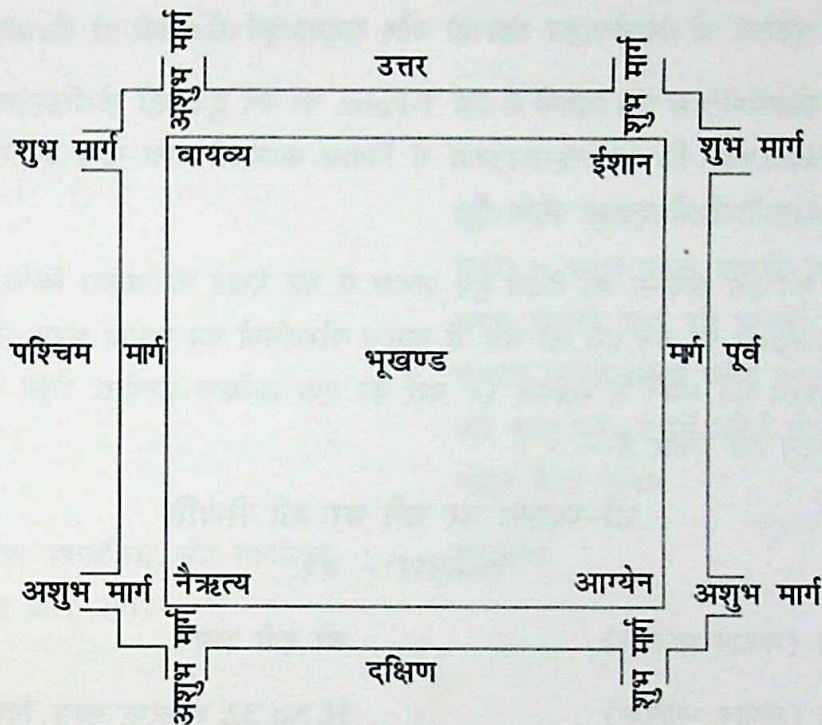
शुभ वेध

१. भूखण्ड के ईशान कोण पर वेध हो और पूर्व या उत्तर या दोनों ओर से आने वाली सड़कें ईशान को छूती हो तो वेध शुभ माना जाता है।

२. भूखण्ड के वायव्य कोण पर वेध हो और सड़क पश्चिम से आकर भूखण्ड को छूती हो तो वेध शुभ माना जाता है।

३. भूखण्ड पर आग्नेय कोण पर वेध हो और सड़क दक्षिण से आकर भूखण्ड को छूती हो तो वेध शुभ माना जाता है।

अशुभ वेध

१. भूखण्ड के नैऋत्य कोण पर वेध हो और सड़क दक्षिण या पश्चिम अथवा दोनों ओर से आती हो तो वेध अशुभ होता है।

२. भूखण्ड के वायव्य कोण पर वेध हो और सड़क उत्तर से आती हो तो वेध अशुभ होता है।

३. भूखण्ड के आग्नेय पर वेध हो और सड़क पूर्व से आती हो तो अशुभ होता है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि T-Point पर बने हुए घरों के लिए सड़क एक वेध (शूल) के जैसा होता है। इसलिए इन घरों में निवास करने से नाना-नाना प्रकार के रोगों एवं अनावश्यक परेशानियों से जूझना पड़ता है।

आज की इस समस्मा को देखते हुए प्रत्यक्ष में यह देखने का प्रयास किया गया कि क्या वास्तव में T. Point पर बने घरों को बेध के कारण परेशानियों का सामना करना पड़ता है अथवा नहीं? इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर २० घरों का एक सर्वेक्षण प्रश्नोत्तर शैली में किया गया। जिसका विवरण इस प्रकार है–

टी-प्वाइंट पर बने घर की स्थिति
सर्वेक्षण - ०१

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री हरी राम
२.	पता (मकान मालिक)	:	H. No. 32, शकरपुर खास, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९४५ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९४५ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	दादा-परदादा के जमाने से था।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था।	:	नहीं, सामने खाली जमीन थी। बाद में टी-प्वाइंट बना।
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	हाँ, मकान १० बार टूटा और बना।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी थोड़े समय पहले।

९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	अच्छा नहीं लगा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	१०-१५ वर्ष से पत्नी बीमार रही। उसके बाद पत्नी एवं माँ की असमय मृत्यु हुई। मेरी एक आँख भी खराब हो गयी। ५ साल पहले लड़के की शादी हुई मगर उसको एक भी बच्चा नहीं हुआ। मकान बनाते समय करैंट लगने से मजदूर की मृत्यु हुई। उसमें कोर्ट केस बना और बहुत पैसा लगा।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	सामान्य

निष्कर्ष :

थोड़ा-बहुत पैसा आया मगर सब बीमारियों में एवं कोर्ट कचहरी में लग गया एवं अत्यन्त परेशान रहे।

सर्वेक्षण - ०२

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री चरन सिंह
२.	पता (मकान मालिक)	:	H. No. 63, शकरपुर खास, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९४५ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९४५ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	दादा-परदादा के जमाने से था।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था।	:	हाँ

७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	हाँ, मकान ४ बार बना।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी थोड़े समय पहले।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	इतना खराब लगा कि उसे बता नहीं सकते। १९ वर्ष से बेरोजगार बैठा हूँ। पिता भी जिन्दगी भर संघर्ष करते रहे। माता एवं पिता की असमय मृत्यु हुई।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	खोया ही खोया है। पाया कुछ भी नहीं। नौकरी तक नहीं लगी।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - खराब,सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - बहुत खराब है।

निष्कर्ष :

बहुत बुरा हाल रहा, बीमारी भी बहुत रही और जब से हमारे पूर्वज यहाँ आये हैं, तब से अब तक परेशानियाँ एवं तंगी के अलावा हमें कुछ भी नहीं मिला।

सर्वेक्षण : ०३

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्रीरूपनारायण वर्मा
२.	पता (मकान मालिक)	:	M- 62, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९७९ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९७८ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	सोहन लाल गुप्ता से खरीदा।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ

७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	**धीरे-धीरे मकान बना सर्वप्रथम एक ही कमरा बनवाया।**
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	**बाद में।**
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	**अच्छा नहीं लगा।**
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	**गृह क्लेश थोड़ा मगर वित्तीय समस्या एवं मानसिक तनाव अधिक रहता है।**
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक	:	**आर्थिक - ठीक-ठाक, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - खराब।**

निष्कर्ष :

गृह-क्लेश एवं मानसिक अशांति तथा सदैव असुरक्षा का भाव मन में बना रहता है।

सर्वेक्षण : ०४

१.	नाम (मकान मालिक)	:	**श्री विजय कुमार गुप्ता**
२.	पता (मकान मालिक)	:	**U-31A, शकरपुर, दिल्ली-११००९२**
३.	कब से रह रहे हैं	:	**१९८० से**
४.	मकान कब खरीदा	:	**१९७९ में खरीदा**
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	**बिल्डर से खरीदा**
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	**हाँ**
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	**हाँ, सिर्फ पहली मंजिल ही बन पाया है।**

८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी हुआ।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	धन का प्राप्ति ठीक है, मगर गृह क्लेश बहुत रहता है।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	रिश्तेदारों से दूर हो गये एवं परेशान रहे। धन खूब पाया मगर बच्चे सब उदण्ड निकले।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - बहुत अच्छी, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक - अशांति पूर्ण।

निष्कर्ष :

गृह-क्लेश एवं मानसिक अशांति तथा इस घर को किराये पर लगाने से थोड़ी शांति रही।

सर्वेक्षण : ०५

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री सत्य नारायण मित्तल
२.	पता (मकान मालिक)	:	यू-१२४, शकरपुर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९६५ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९६५ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	गाँव के जमीनदार से लिया था।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	नहीं
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान	:	नहीं

८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	बाद में।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	हमने टी-प्वाइंट पर नीचे दुकान बनवाया उसके बाद अच्छा लगा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	सारे बच्चों का जन्म यहीं हुआ और उनकी परवरिश भी ठीक-ठाक हुई। छोटी बेटी का वैवाहिक जीवन बहुत खराब रहा। बेटी तलाकशुदा होकर घर पर बैठी है। हम पति-पत्नी दोनों बीमार रहते हैं। हार्ट पेशेंट हैं।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - अच्छी, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक - अशांति पूर्ण।

निष्कर्ष :

आर्थिक ठीक-ठाक, मगर शारीरिक, मानसिक कष्ट एवं बीमारियाँ अधिक रही।

सर्वेक्षण : ०६

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री एम.एल. वर्मा
२.	पता (मकान मालिक)	:	एच-34B, विजय चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९६८ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९६८ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	खूप चंद, बिल्डर से
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ

७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	पहले ग्राउंड फ्लोर बनवाया उसके बाद में फर्स्ट फ्लोर बनवाया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	बढ़िया लगा, प्रापर्टी की ऊँची कीमत हुई।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	एक लड़का और एक लड़की की मौत हुई।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - अच्छी, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - खराब।

निष्कर्ष :

धन की प्राप्ति ठीक-ठाक रही, मगर जान-माल का नुकसान तथा सामाजिक स्तर खराब रहा।

सर्वेक्षण : ०७

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री सुरेन्द्र कुमार
२.	पता (मकान मालिक)	:	H. No. 9, शकरपुर खास, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९४७ से
४.	मकान कब खरीदा	:	पैतृक
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	पैतृक
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	नहीं टी. प्वाइंट इङ्गित करने वाली सड़क बाद में बनी।
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	नहीं आये।

८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी हुआ।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	ठीक-ठाक लगा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	एक बच्चे की असमय मृत्यु हुई।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - अच्छा, सामाजिक - अच्छा, मानसिक स्थिति - खराब।

निष्कर्ष :

एक बच्चे की असमय मृत्यु, जिसकी वजह से मानसिक आघात लगा।

सर्वेक्षण : ०८

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री बी.पी. स्यॉल
२.	पता (मकान मालिक)	:	F-182, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९७३ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९७२ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	श्रीमती लाजवंती देवी से खरीदा
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	एक बार में पहली मंजिल, दूसरी बार में दूसरी मंजिल और अब चौथी बार में पूरा बना और समय-समय पर मरम्मत होती रहती है।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी हुआ।

९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	बढ़िया लगा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	१९७३ में ही दुकान बनवा दिया था तब से अब तक सब कुछ पाया ही पाया है। मगर कोई औलाद नहीं है।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - ठीक-ठाक, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - अच्छी नहीं रहती क्यों सन्तान नहीं है।

निष्कर्ष :

दुकान जबसे बनी है। T-Point का दोष समाप्त हो गया। मगर संतान का सुख नहीं है।

सर्वेक्षण : ०९

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्रीमती कमलेश
२.	पता (मकान मालिक)	:	८७, गुरु अंगद नगर एक्स, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९७७ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९७४ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	श्री जग्गी से, ठीक-ठाक
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	हाँ, प्रशासन ने तंग किया, पुलिस ने और डी.डी.ए. वालों ने भी तंग किया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	२० साल पहले ही पता लग गया था। जब वास्तुदोष का पता चला मकान किराये पर चढ़ा दिया।

९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	बढ़िया नहीं लगा। किरायेदारों से झगड़ा इत्यादि होता रहा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	इस घर में आकर पति से अलग हो गयी। जब मकान किराये पर चढ़ाया तो एक ४२ वर्षीय किरायेदार की मृत्यु हो गयी।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - सामान्य, सामाजिक - सामान्य, मानसिक स्थिति - खराब।

निष्कर्ष :

बहुत बुरा हुआ। किराये पर लगाने से धन की प्राप्ति, मगर किरायेदारों को नुकसान हुआ।

सर्वेक्षण : १०

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री आर.सी. शर्मा
२.	पता (मकान मालिक)	:	F-173, मंगल बाजार, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९७० से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९६९ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	बिल्डर से खरीदा
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	नहीं आये क्योंकि नीचे दुकान मकान के साथ ही बनवा दी थी।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था	:	हाँ

९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	अच्छा लगा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	कुछ भी नहीं खोया।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - अच्छी, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक - शांति पूर्ण।

निष्कर्ष :

घर बनाने से पहले दुकान बनायी। उसके बाद सब ठीक-ठाक रहा मगर संतान का सुख नहीं है।

सर्वेक्षण : ११

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री आनन्द जैन
२.	पता (मकान मालिक)	:	F-183, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९९० से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९९० में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	बिल्डर से खरीदा
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	नहीं एक बार में ही सारा मकान बना।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी थोड़े समय पहले हुआ।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	सब ठीक-ठाक है।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	सब कुछ पाया जब से घर में आया राजनीतिक क्रियाकलाप शुरु किया।

११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - अच्छी, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक - दिमागी परेशानियाँ रहती हैं।

निष्कर्ष :

राजनीतिक क्रिया-कलापों के घर में चलने के बाद से सब कुछ अच्छा है।

सर्वेक्षण : १२

१.	नाम (मकान मालिक)	:	स्व. श्री वैद्यनाथ सिंह
२.	पता (मकान मालिक)	:	H. No. 51, मोहन बिगहा, डेहरी, जिला रोहतास, बिहार
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९५४ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९५३ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	श्री ढ़ोड़ा सिंह
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	धीरे-धीरे बनवाया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था	:	हाँ
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	जब से दुकान खोले तब तक सब कुछ अच्छा चला। दुकान बंद करते ही खाने के लाले पड़ गये।

१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	वित्तीय परेशानियाँ एवं मानसिक तनाव।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - खराब, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - खराब।

निष्कर्ष :

T-Point पर भवन निर्माण निवास के लिए अशुभ होता है तब तक कि उसे Front पर कोई दुकान या उसका व्यवसायीकरण ना किया जाये।

सर्वेक्षण : १३

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री के.सी. शर्मा
२.	पता (मकान मालिक)	:	U-8C, शकरपुर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९७० से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९७० में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	गाँव के जमींदार से
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	पहले कच्चा, फिर बाद में पक्का और तीन मंजिला बनाया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	बाद में।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	जबसे T-Point दोष का पता चला तब से इस मकान को किराये पर चढ़ा दिया, तबसे ठीक-ठाक है।

१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	**किराये पर चढ़ाने से पहले बहुत ही परेशानियाँ थीं।**
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	**आर्थिक - ठीक-ठाक, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - अब ठीक।**

निष्कर्ष :

T-Point पर भवन निर्माण अशुभ रहा पर जब इसका व्यवसायीकरण हुआ तब से सब ठीक-ठाक है।

सर्वेक्षण : १४

१.	नाम (मकान मालिक)	:	**श्री तसलीम**
२.	पता (मकान मालिक)	:	**U-28, शकरपुर, दिल्ली-११००९२**
३.	कब से रह रहे हैं	:	**१९९८ से**
४.	मकान कब खरीदा	:	**१९९८ में खरीदा**
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	**बिल्डर्स से खरीदा**
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	**हाँ**
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	**बना-बनाया खरीदा था।**
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	**बाद में**
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	**छह सात भाई हैं सब मिलकर नहीं रहते हैं।**

१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	पाँचों भाईयों की शादी नहीं हुई है उम्र ज्यादा है। इसी वर्ष एक भाई ने आत्महत्या की है।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रहती है?	:	आर्थिक - ठीक-ठाक, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक - खराब।

निष्कर्ष :

सभी भाईयों का आपस में मन-मुटाव रहता है जिससे मानसिक परेशानियाँ अधिक रहती हैं।

सर्वेक्षण : १५

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री अशोक कुमार
२.	पता (मकान मालिक)	:	U-102, शकरपुर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	२००६ से
४.	मकान कब खरीदा	:	२००६ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	बिल्डर्स से खरीदा
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	बना-बनाया खरीदा था।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	बाद में
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	अभी तक तो ठीक-ठाक लग रहा है लेकिन जब यह सारा मकान बन रहा था तो बनाने में काफी पुलिस और प्रशासन की अड़चने आयीं।

१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	**अभी थोड़े दिन पहले ही खरीदा है।**
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक	:	**आर्थिक - ठीक-ठाक, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक स्थिति - खराब।**

निष्कर्ष :

मकान का निर्माण करना शुभ नहीं रहा तथा बनाने में काफी भी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।

सर्वेक्षण : १६

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री नीरज शर्मा
२.	पता (मकान मालिक)	:	एल-५६, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९८० से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९७८ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	पंजाबी बिल्डर्स से खरीदा
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	पहले Front पर दुकान बनवाया और उसके बाद घर बनवाया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	बाद में
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	अच्छा लगा, बहुत धन कमाया।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	पिता की असमय मृत्यु (अज्ञात बीमारी से)। पैसा बहुत कमाया, मगर उसी अनुपात में उसे गंवाया।

११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - बहुत अच्छी, सामाजिक - बहुत अच्छी, मानसिक - खराब।

निष्कर्ष :

आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी रही, मगर जिस अनुपात में धन कमाया उसी अनुपात में गंवा भी दिया।

सर्वेक्षण : १७

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री वी.एन. दीक्षित
२.	पता (मकान मालिक)	:	यू-8A, शकरपुर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९७५ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९७५ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	गाँव के जमीनदार से खरीदा।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	थोड़ी बहुत, धीरे-धीरे कमरे बनवाये।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी थोड़े समय पहले।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	अच्छा लगा।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	पहली पत्नी एवं माँ की असमय मृत्यु हुई, किराये से अच्छे धन की प्राप्ति होती है।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - उच्छी, सामाजिक - अच्छी, मानसिक - अशांति पूर्ण।

निष्कर्ष :

घर के व्यावसायिक करण की वजह से आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अच्छी रही, मगर मानसिक अशांति एवं बीमारी ज्यादा लगी रहीं।

सर्वेक्षण : १८

१.	नाम (मकान मालिक)	:	**श्री डाल चन्द शर्मा**
२.	पता (मकान मालिक)	:	**H. No. 1, शकरपुर खास, दिल्ली-११००९२**
३.	कब से रह रहे हैं	:	**१९७४ से**
४.	मकान कब खरीदा	:	**१९७४ में खरीदा**
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	**दादा-परदादा के जमाने से था।**
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	**हाँ**
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	**हाँ कमरे एक-एक करके बनवाये।**
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	**अभी थोड़े समय पहले।**
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	**अच्छा लगा।**
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	**बहुत कुछ पाया, क्योंकि सम्पत्ति का भाव बढ़ता गया। मगर बीमारियाँ ज्यादा लगी रहीं, जिसमें धन खर्च होता गया।**
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	**आर्थिक - अच्छी, सामाजिक - अच्छी, मानसिक स्थिति - बीच-बीच में खराब रही।**

निष्कर्ष :

आर्थिक, सामाजिक ठीक-ठाक मगर मानसिक एवं शारीरिक कष्ट।

सर्वेक्षण : १९

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री विनोद कुमार जॉयसवाल
२.	पता (मकान मालिक)	:	H. No. 64, शकरपुर खास, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	२००२ से
४.	मकान कब खरीदा	:	२००२ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	बिल्डर्स से खरीदा, मकान बनाते ही वह जैसे-तैसे भाव में बेचकर भाग गया।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	नहीं, मकान बना-बनाया लिया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी थोड़े समय पहले हुआ, तभी नीचे दुकान बनवायी।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	पहले स्थिति खराब रही, मगर अब सही है।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	बहुत कुछ पाया, अच्छा पैसा कमाया, मगर मानसिक रूप से कष्ट रहता है।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही?	:	आर्थिक - अच्छी, सामाजिक - अच्छी, मानसिक - खराब है।

निष्कर्ष :

जब से मकान के नीचे दुकान बनवायी, तब से कोई परेशानी नहीं है।

सर्वेक्षण : २०

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री गुलशन चावला
२.	पता (मकान मालिक)	:	H. No. 5, शकरपुर खास, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९५८ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९५८ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	गाँव के जमींदार से खरीदा।
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	नहीं सामने खेत थे।
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	आधा बेचकर आगे के हिस्से में मकान बनाया।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी थोड़े समय पहले हुआ।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	ठीक-ठाक ही चल रहा है।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	छोटे-छोटे दो बच्चों की मृत्यु हुई और परेशानियाँ भी रहीं। जिस काम में भी हाथ डालते हैं, उसमें नुकसान होता है। बाकी सब सामान्य है।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक	:	आर्थिक - सामान्य, सामाजिक - सामान्य, मानसिक स्थिति - खराब है।

निष्कर्ष :

जान-माल की हानि हुई एवं अत्यधिक वित्तीय परेशानियाँ रहती हैं।

सर्वेक्षण : २१

१.	नाम (मकान मालिक)	:	श्री बलदेव राज
२.	पता (मकान मालिक)	:	U-28, शकरपुर, दिल्ली-११००९२
३.	कब से रह रहे हैं	:	१९९२ से
४.	मकान कब खरीदा	:	१९९२ में खरीदा
५.	मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति	:	बिल्डर राम अवतार त्यागी से
६.	जब मकान बनवाया था उस समय क्या आपका घर टी-प्वाइंट पर ही था	:	हाँ
७.	यदि हाँ तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये	:	जब मकान बन रहा था उस समय उसे परेशानियाँ आई थीं।
८.	क्या आपको टी-प्वाइंट वास्तुदोष का ज्ञान था नहीं तो कब हुआ?	:	अभी हुआ।
९.	यहाँ आकर आपको कैसा लगा?	:	जब से यहाँ आये हैं तबसे परेशानी में हैं। बहु के साथ बहुत झगड़ा रहता है।
१०.	क्या खोया क्या पाया?	:	एक १२ वर्ष के बेटे को खोया, और हम दोनों पति-पत्नी हमेशा बीमार ही रहते हैं।
११.	आर्थिक सामाजिक और मानसिक	:	आर्थिक - ठीक-ठाक, सामाजिक - ठीक-ठाक, मानसिक - अत्यधिक खराब।

निष्कर्ष :

गृह-क्लेश एवं मानसिक परेशानियाँ अधिक रहती हैं।

विश्लेषण (Analysis) एवं निष्कर्ष (Conclusion)

यूँ तो मैंने बहुत से घरों का सर्वे किया जो टी-प्वाइंट पर स्थित थे और पाया कि लगभग सारे घरों में कुछ ना कुछ परेशानियाँ हैं। बहुत से लोगों ने लोक-लज्जा की वजह से, तो कुछ लोगों ने अपने को ऊँचा दिखाने की होड़ में अपनी परेशानियों को छुपाते रहे परन्तु विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि उनके घरों में जब से वे टी-प्वाइंट पर रह रहे हैं उन्हें पहले की अपेक्षा अनेकानेक बीमारियों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। जबकि वहीं पर उनके भाई-बंधु जो टी-प्वाइंट से ठीक हट कर बसे हैं उनको इस तरह की ना तो वित्तीय समस्या रही और नहीं भयंकर बीमारियों का सामना करना पड़ा।

मैंने सर्वेक्षय के दौरान यह भी पाया कि जो घर टी-प्वाइंट पर बसे हैं उनके बच्चों की हानि अवश्य हुई या तो वे १०-१५ वर्ष के होकर मरे या दुर्घटना में अपाहिज हुए या उनका वैवाहिक जीवन खराब रहा या फिर घर के मालिक की कोई संतान नहीं हुई या हुई भी तो उदण्ड निकली।

सर्वेक्षण के दौरान जो बात सबसे Common निकली वह यह कि सभी लोग जो टी-प्वाइंट पर बसे हैं उनको भयंकर बीमारियाँ विशेषकर हार्ट की शिकायत रही या दिल का दौरा (Heart Attack) आया जिससे उनके जान-माल का काफी नुकसान हुआ।

सर्वेक्षण के दौरान मैंने यह भी पाया कि जिन लोगों का घर टी-प्वाइंट पर हैं उन्होंने जितना भी पैसा कमाया उसी अनुपात में उसे गंवा भी दिया। लेकिन जो same situation में टी-प्वाइंट से ठीक सटे बसे हैं, उनको बहुत ज्यादा मानसिक तनाव यथा का सामना नहीं करना पड़ जबकि टी प्वाइट पर रहते वाले को उनकी अपेक्षा बहुत ज्यादा मानसिक तनाव (Mental Tension) का सामना करना पड़ता है।

सर्वेक्षण के दौरान मैंने यह भी पाया कि जिन लोगों का घर टी-प्वाइंट पर है और जिन्होंने सबसे पहले Front पर दुकान बना ली और उसके बाद भवन का निर्माण कराया। उनको टी-प्वाइंट

का दोष नहीं लगा और लगा भी तो कम दोष लगा और जिन्होंने टी-प्वाइंट पर भवन निर्माण के बाद दुकान खोलीं या व्यवसायिक गतिविधियाँ अपनाईं उनका भी दोष बहुत हद तक कम हो गया।

निष्कर्ष (Conclusion)

टी-प्वाइंट पर बने हुए घरों की वास्तु स्थिति अच्छी नहीं होती क्योंकि यहाँ दुर्घटना होने का सदैव भय बना रहता हैं, चाहे दुर्धटना बिजली इत्यादि के खम्मों के कारण हो या मोटर वाहन के द्वारा। ऐसे घरों में रहने वाले की मानसिक स्थिति सदैव खराव रहती है। विशेषकर गृह स्वामी एवं स्वामिनी को भयंकर विमारियों का सामना करना पड़ता है तथा उनको अपने संतानो का सुख भी कम मिलता है। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं रहती। मगर जिन लोगों ने टी-प्वाइंट पर बने घरों में सबसे पहले दुकान बनायी और उसके बाद रहने के लिए घर बनाया उन्हैं टी-प्वाइंट का दोष कम लगा। अतः यह कह सकते हैं कि टी-प्वाइंट का सदैव विचार करना चाहिए।

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016